महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय

(संसद द्वारा पारित अधिनियम 1997, क्रमांक 3 के अंतर्गत स्थापित केंद्रीय विश्वविद्यालय)

Mahatma Gandhi Antarrashtriya Hindi Vishwavidyalaya

(A Center University Established by Parliament by Act No. 3 of 1997)

ज्ञान शांति मैत्री

एम.ए. समाजशास्त्र

पाठ्यक्रम कोड : एम.ए.एस. - 015

द्वितीय सेमेस्टर

पाठ्यचर्या कोड : 09

पाठ्यचर्या का शीर्षक : शोध प्रविधि का आधारभूत परिचय

दूर शिक्षा निदेशालय

महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय

पोस्ट- हिंदी विश्वविद्यालय, गांधी हिल्स, वर्धा - 442001 (महाराष्ट्र)

मार्गदर्शन समिति

प्रो. गिरीश्वर मिश्र
कुलपति
म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

प्रो. आनंद वर्धन शर्मा
प्रतिकुलपति
म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

प्रो. कृष्ण कुमार सिंह
प्रभारी निदेशक (दूर शिक्षा निदेशालय)
म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

पाठ्यचर्या निर्माण समिति

प्रो. आनंद वर्धन शर्मा
प्रतिकुलपति
म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

प्रो. एस.एन. चौधरी
प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग
बरकतउल्लाह विश्वविद्यालय, भोपाल

प्रो. शैलजा दुबे
प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग उच्च शिक्षा उत्कृष्टता संस्थान, भोपाल

श्री अभिषेक त्रिपाठी
असिस्टेंट प्रोफेसर एवं पाठ्यक्रम संयोजक
दूर शिक्षा निदेशालय, म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

संपादक मंडल

प्रो. एस.एन. चौधरी
प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग
बरकतउल्लाह विश्वविद्यालय, भोपाल

प्रो. मनोज कुमार
निदेशक , म.गां.फ्यू. गु. समाज कार्य अध्ययन केंद्र, म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

डॉ. शंभु जोशी
असिस्टेंट प्रोफेसर
दूर शिक्षा निदेशालय, म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

डॉ. मिथिलेश कुमार
असिस्टेंट प्रोफेसर
म.गां.फ्यू. गु. समाज कार्य अध्ययन केंद्र,
म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

श्री अभिषेक त्रिपाठी
असिस्टेंट प्रोफेसर एवं पाठ्यक्रम संयोजक
दूर शिक्षा निदेशालय, म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

इकाई लेखन

खंड -1
इकाई 1 – श्री ईश शक्ति सिंह
इकाई 2 - श्री अभिषेक त्रिपाठी
इकाई 3 - श्री ईश शक्ति सिंह
इकाई 4 - श्री ईश शक्ति सिंह

खंड - 2
इकाई 1- डॉ. सुषमा मिश्रा
इकाई 2- डॉ. सुषमा मिश्रा
इकाई 3- डॉ. सुषमा मिश्रा
इकाई 4- डॉ. सुषमा मिश्रा

खंड - 3
इकाई 1 – श्री महेश कु. तिवारी
इकाई 2 - श्री महेश कु. तिवारी
इकाई 3 - श्री महेश कु. तिवारी
इकाई 4 - श्री महेश कु. तिवारी

खंड - 4
इकाई 1- श्री ईश शक्ति सिंह
इकाई 2 - श्री ईश शक्ति सिंह
इकाई 3 - श्री ईश शक्ति सिंह
इकाई 4 - श्री ईश शक्ति सिंह

कार्यालयीन एवं संपादकीय सहयोग

श्री विनोद वैद्य
सहायक कुलसचिव, दू.शि. निदेशालय

श्री अरविन्द कुमार
टेक्निकल असिस्टेंट, दू.शि. निदेशालय

सुश्री राधा ठाकरे
टंकण/फार्मेटिंग/इंडिटींग
दू.शि. निदेशालय

श्री सचिन सोनी
सॉफ्टवेयर स्पेशलिस्ट, दू.शि. निदेशालय

श्री गुड्डू यादव
कंप्यूटर ऑपरेटर, दू.शि. निदेशालय

विषय कोड : एमएएस- 09

विषय का नाम : शोध प्रविधि का आधारभूत परिचय

क्रेडिट्स : 04 क्रेडिट

शिक्षण उद्देश्य :

इस पाठ्यक्रम के अध्ययन के उपरांत विद्यार्थी –

- शोध प्रविधि की परिभाषा, प्रकृति, विशेषताएँ एवं उद्देश्यों से छात्र परिचित हो सकेंगे।
- सामाजिक घटनाओं में वैज्ञानिक शोध की आवश्यकता एवं शोधार्थी की नैतिकता से छात्र परिचित होंगे।
- शोध के विभिन्न प्रकारों एवं इनकी अवश्यकताओं से छात्र परिचित होंगे।
- शोध की प्रक्रिया एवं शोध के चरण से छात्र परिचित होंगे।
- शोध सारांश, शोध पत्र एवं शोध आलेख से छात्र परिचित होंगे तथा इनमें अंतर को स्पष्ट कर सकेंगे।
- पुस्तक समीक्षा एवं शोध परियोजना प्रतिवेदन से छात्र परिचित होंगे।
- संदर्भ ग्रंथ सूची के विभिन्न प्रकारों से छात्र अवगत होंगे।

मूल्यांकन के मानदंड :

1. सत्रांत परीक्षा : 70 %
2. सतत आंतरिक मूल्यांकन : 30 %

शोध प्रविधि का आधारभूत परिचय

खण्ड (1) सामाजिक विज्ञान में शोध

इकाई : 1 शोध : अवधारणा, प्रकृति, उद्देश्य एवं विशेषताएं

इकाई : 2 तथ्य, सिद्धांत एवं अवधारणा

इकाई : 3 सामाजिक विज्ञान में शोध एवं शोध की वस्तुनिष्ठता

इकाई : 4 शोध एवं शोधार्थी की नैतिकता एवं आवश्यकताएं

खण्ड (2) शोध प्ररचना/अभिकल्प

इकाई : 1 वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक

इकाई : 2 आनुभविक एवं अन्वेषणात्मक

इकाई : 3 मात्रात्मक एवं गुणात्मक

इकाई : 4 निदानात्मक एवं परीक्षणात्मक

खण्ड (3) शोध पद्धतियां

इकाई : 1 व्यक्तिक अध्ययन एवं व्यक्तिक वृत्त/इतिहास पद्धति

इकाई : 2 अंतर्वस्तु विश्लेषण

इकाई : 3 समाजमिति एवं प्रक्षेपी प्रविधि

इकाई : 4 नृजाति अध्ययन एवं क्यू पद्धति

खण्ड (3) शोध के चरण

इकाई : 1 सामाजिक शोध के चरण

इकाई : 2 साहित्य पुनरावलोकन

इकाई : 3 परिकल्पना/उपकल्पना

इकाई : 4 निदर्शन/प्रतिचयन

अनुक्रम

क्र.सं.	खंड का नाम	पृष्ठ संख्या
1	**खंड - 1 – सामाजिक मनोविज्ञान का परिचय -**	
	इकाई –1 शोध : अवधारणा, प्रकृति, उद्देश्य एवं विशेषताएं -	4-18
	इकाई –2 तथ्य, सिद्धांत एवं अवधारणा	19-30
	इकाई –3 सामाजिक विज्ञान में शोध एवं शोध की वस्तुनिष्ठता	31-49
	इकाई –4 शोध एवं शोधार्थी की नैतिकता एवं गुण	50-61
2	**खंड - 2 शोध प्रचना/अभिकल्प**	
	इकाई -1 वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक	62-69
	इकाई -2 आनुभविक एवं अन्वेषणात्मक	70-79
	इकाई -3 मात्रात्मक एवं गुणात्मक	80-90
	इकाई –4 निदानात्मक एवं परीक्षणात्मक	91-100
3	**खंड - 3 – शोध पद्धतियां**	
	इकाई -1 व्यक्तिक अध्ययन एवं व्यक्तिक वृत्त/इतिहास पद्धति	101-121
	इकाई -2 अंतर्वस्तु विश्लेषण	122-136
	इकाई –3 समाजमिति एवं प्रक्षेपी प्रविधि	137-154
	इकाई –4 नृजाति अध्ययन एवं क्यू पद्धति	155-166
4	**खंड - 4 – शोध के चरण**	
	इकाई –1 सामाजिक शोध के चरण	167-181
	इकाई –2 साहित्य पुनरावलोकन	182-189
	इकाई –3 परिकल्पना/उपकल्पना	190-204
	इकाई –4 निदर्शन/प्रतिचयन	205-224

खंड-1 सामाजिक विज्ञान में शोध

इकाई-1 शोध : अवधारणा, प्रकृति, उद्देश्य एवं विशेषताएं

Research : Concept, Nature, Purpose and Characteristics

इकाई की रूपरेखा

1.1.0 उद्देश्य

1.1.1. प्रस्तावना

1.1.2. शोध की अवधारणा एवं परिभाषाएं

1.1.3. शोध की प्रकृति

1.1.4. शोध का उद्देश्य

1.1.5. शोध की विशेषताएं

1.1.6. शोध की उपयोगिता

1.1.7. सारांश

1.1.8. बोध प्रश्न

1.1.9. संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

1.1.0. उद्देश्य (Purpose)

इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप-

- सामाजिक शोध क्या है समझ सकेंगे।
- सामाजिक शोध की प्रकृति किस प्रकार की है समझ सकेंगे।
- सामाजिक शोध की विशेषता क्या है और साथ ही इसकी उपयोगिता कैसे है समझ पाएँगे।

इन सामान्य चरणों के साथ आप विद्यार्थियों की सामाजिक शोध के प्रति एक बोध विकसित हो सकेगी, जो यह समझ सकेंगे की शोध है क्या और इसे समाज के विकास हेतु क्यों महत्वपूर्ण माना जाता है?

1.1.1. प्रस्तावना (Introduction)

मानव ने अपने प्रयत्नों से समस्त प्राकृतिक घटनाओं, अज्ञात तथ्यों, मानव व्यवहारों एवं व्यवहार के प्रेरक कारकों के बारें में सब कुछ ज्ञात कर लिया हो, ऐसी बात नहीं है। अपने सभी प्रयत्नों के बाद भी मानव की खोजमूलक प्रवृति आज भी जारी है। सच तो यह है कि अपने जीवन के चारों ओर की घटनाओं को समझने का हम जितना अधिक प्रयत्न करते हैं, हमारी जिज्ञासाएं उतनी ही अधिक बढ़ती जाती हैं। मानव केवल एक जिज्ञासु प्राणी ही नहीं है बल्कि एक खोजमूलक प्राणी भी है। मानव ही एक ऐसा प्राणी है जो अपने चारों ओर की सभी घटनाओं का कारण जानने का प्रयत्न करता है एवं उन नियमों को ढूंढने में व्यस्त रहता है जो हमारी सभी प्रेरणाओं एवं मनोवृत्तियों का वास्तविक आधार हैं। **मानव की**

जिज्ञासा का आधार चाहे प्राकृतिक दशाएँ हों या सामाजिक जटिलताएँ, इनमें संबंधित ज्ञान का स्पष्टीकरण करना एवं प्राप्त ज्ञान का सत्यापन करना ही शोध है। यह प्रक्रिया जब सामाजिक घटनाओं से सम्बद्ध हो जाती है, तब इसी को हम सामाजिक शोध कहते है। वास्तव में, शोध का तात्पर्य किसी विशेष जिज्ञासा के संदर्भ में इस प्रकार गहन अध्ययन करना है जिससे नए सिद्धांतों का निर्माण किया जा सके या वर्तमान दशाओं के अंतर्गत प्राचीन सिद्धांतों की सत्यता का मूल्यांकन किया जा सके। यह सच है कि एक विज्ञान के रूप में समाजशास्त्र का इतिहास अधिक प्राचीन नहीं है लेकिन तो भी आज जिन विकसित पद्धतियों एवं प्रविधियों की सहायता से सामाजिक घटनाओं में व्याप्त आधारभूत नियमों को जानने का प्रयत्न किया जा रहा है, वह विज्ञान के रूप में समाजशास्त्र की परिपक्वता का परिचायक है।

1.1.2. शोध की अवधारणा एवं परिभाषाएं (Definition & Concept of Research)

सामाजिक शोध क्या है? इस विषय का विश्लेषण करते समय हमारे सामने अनेक प्रश्न उठ खड़े होते हैं। कुछ विद्वान यह मानते हैं कि सामाजिक शोध का तात्पर्य मानवीय क्रियाओं के सभी पक्षों से संबंधित यथार्थ ज्ञान का निरंतर संग्रह करना है। यदि हम इस व्याख्या को स्वीकार कर लें तो हमारे सामने तुरंत एक दूसरा प्रश्न यह उत्पन्न हो जाता है कि मानवीय क्रियाओं का यथार्थ ज्ञान किस प्रकार प्राप्त किया जा सकता है? इस संबंध में एक सरल तरीका यह हो सकता है कि विभिन्न विचारक जिन सैद्धांतिक मान्यताओं के आधार पर मानवीय क्रियाओं एवं व्यवहारों की व्याख्या करते रहे हैं, उन्हीं की सहायता से हम कुछ सामान्य सिद्धांतों का प्रतिपादन करने का प्रयत्न करें। ऐसा करने में सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि हमारा ज्ञान एक संकुचित दायरे में ही सिमित रहेगा और हम नए ज्ञान का सृजन नहीं कर सकेंगे। इसके निराकरण के रूप में कुछ विद्वान यह मानते हैं कि वैज्ञानिक शोध का तात्पर्य अनुभवसिद्ध तथ्यों को ज्ञात करके निरीक्षण, परीक्षण और सत्यापन के आधार पर मानव व्यवहार से संबंधित सामान्य नियमों को ढूँढना है। इसका तात्पर्य यह है कि शोध का संबंध सैद्धांतिक विश्लेषण से न होकर अनुभवसिद्ध ज्ञान से है।

सामाजिक शोध सामाजिक जीवन की खोज, विश्लेषण और सत्यापन करने की एक व्यवस्थित पद्धति है, जिसका उद्देश्य सदैव ज्ञान का विस्तार एवं प्रमाणीकरण करना और मानव व्यवहार से संबंधित सामान्य नियमों का पता लगाना है। सामाजिक शोध का तात्पर्य वैज्ञानिक विधि की सहायता से मानवीय समाज से संबंधित प्रश्नों के हल निकलना है। इसमें व्यवस्थित अवलोकन, निरीक्षण, परीक्षण एवं विश्लेषण व सामान्यीकरण की पद्धति पर जोर दिया जाता है। संक्षेप में, यह कहा जा सकता है कि सामाजिक शोध में वैज्ञानिक विधि का प्रयोग करते हुए किसी विषय का व्यवस्थित अवलोकन एवं सत्यापन का विशेष रूप से सहारा लिया जाता है। पूर्व में सामाजिक घटनाओं को समझने के लिए अनुमान, तर्क एवं कल्पना आदि का सहारा लिया जाता था जिससे प्राप्त निष्कर्ष प्रायः विश्वसनीय नहीं माने जा सकते थे और उनकी सत्यता की जाँच संभव नहीं होती थी। इसलिए इनके स्थान पर वैज्ञानिक विधि की सहायता से सामाजिक तथ्यों को ज्ञात किया जाने लगा। वैज्ञानिक विधि कल्पना, तर्क एवं अनुमान से परे, निरीक्षण, परीक्षण और विश्लेषण व सामान्यीकरण के चरणों से होकर गुजरने वाली पद्धति

है, जो इन चरणों से होकर सत्यता की जाँच को संभव बनाने का प्रयास करती है। इस प्रकार वैज्ञानिक पद्धति से प्राप्त तथ्य सत्यापन एवं विश्वसनीयता की कसौटी पर खरे उतरते हैं। केवल कल्पना के आधार पर प्राप्त निष्कर्षों को ज्ञान की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता हैं।

सूक्ष्म स्तर पर यदि सामाजिक शोध के अर्थ को समझने का प्रयास किया जाए तो यह देखा जाता है कि सामाजिक शोध दो शब्दों से मिलकर बना है- प्रथम समाजिक, जिसका अर्थ है समाज से संबंधित तथा द्वितीय शोध, जिसका अर्थ है पूर्वज्ञान का परिमार्जन अथवा नए तथ्यों की खोज। संक्षेप में, हम यह कह सकते हैं कि जब भी सामाजिक घटनाओं तथा सामाजिक जीवन के विभिन्न क्रियाकलापों से संबंधित उपलब्ध ज्ञान का परिमार्जन अथवा उनसे संबंधित नए तथ्यों की खोज का कार्य किया जाता है, इस क्रिया विधि को हम सामाजिक शोध कहते हैं। सामाजिक शोध पूर्ण रुप से सामाजिक जीवन, सामाजिक समस्याओं, सामाजिक घटनाओं, सामाजिक संरचना और सामाजिक जटिलताओं से संबंधित होता है। सामाजिक शोध एक ऐसी वैज्ञानिक प्रक्रिया है जिसके माध्यम से सामाजिक घटनाओं से संबंधित कार्य-कारण संबंधों को जानने व समझने का न केवल प्रयास किया जाता है बल्कि उनकी खोज व व्याख्या भी की जाती है। साथ ही, कार्य-कारण संबंधों के फलस्वरुप प्राप्त होने वाले परिणामों की भी व्याख्या वैज्ञानिक रूप से की जाती है। अंततः यह कहा जा सकता है कि सामाजिक शोध सामाजिक घटनाओं के संबंध में विद्यमान पुराने ज्ञान का परिमार्जन या सत्यापन तथा नवीन ज्ञान व तथ्यों को प्राप्त करने अथवा खोज निकालने की एक वैज्ञानिक प्रक्रिया है।

पी. वी. यंग के अनुसार, "सामाजिक अनुसंधान तार्किक एवं क्रमबद्ध पद्धतियों द्वारा नवीन तथ्यों के अन्वेषण अथवा पुराने तथ्यों के पुनः परीक्षण एवं उनके क्रमों, आपस के पारस्परिक संबंधों, कार्य-कारण की व्याख्याओं एवं उनको संचालित करने वाले स्वाभाविक नियमों का विश्लेषण करने के उद्देश्य को ध्यान में रखकर बनाई गई एक वैज्ञानिक योजना है।"

बोगाडर्स कहते हैं, "एक साथ रहने वाले लोगों के जीवन में क्रियाशील अंतर्निहित प्रक्रियाओं की खोज करना ही सामाजिक अनुसंधान कहलाता है।"

फिशर के अनुसार, "किसी समस्या को हल करने, एक उपकल्पना की परीक्षा करने एवं नवीन घटना व नए संबंधों की खोज करने के उद्देश्य से सामाजिक परिस्थिति में सुनिश्चित कार्य-प्रणालियों का प्रयोग ही सामाजिक अनुसंधान है।"

मोज़र के विचार में, "सामाजिक घटनाओं एवं सामाजिक समस्याओं के विषय में नूतन या नवीन ज्ञान की प्राप्ति के लिए किए गए एक व्यवस्थित अनुसंधान कार्य को ही हम सामाजिक अनुसंधान कहते हैं।"

समाजशास्त्रीय शब्दकोश के अनुसार, "सामाजिक परिस्थिति से संबंधित किसी समस्या को हल करने, किसी उपकल्पना का परीक्षण करने, नई घटनाओं की खोज करने एवं विभिन्न घटनाओं के मध्य नवीन संबंधों का पता लगाने के उद्देश्य के लिए उपयुक्त पद्धतियों का प्रयोग करना ही सामाजिक अनुसंधान है।"

उपर्युक्त परिभाषाओं के माध्यम से यह स्पष्ट होता है कि सामाजिक अनुसंधान का संबंध सामाजिक घटनाओं एवं सामाजिक संरचना के अध्ययन से है। इसके माध्यम से सामाजिक घटनाओं से संबंधित नवीन तथ्यों की खोज की जाती है, जिसके लिए वैज्ञानिक पद्धति का उपयोग अत्यंत आवश्यक

माना गया है। सामाजिक शोध के माध्यम से न केवल नए ज्ञान एवं नए तथ्यों की खोज व उनका पता लगाया जाता है, बल्कि सामाजिक जीवन से संबंधित विभिन्न विषयों के संबंध में जितनी भी जानकारी पहले से उपलब्ध है उसकी सत्यता का परीक्षण भी किया जा सकता है। सामाजिक शोध विभिन्न सामाजिक घटनाओं के मध्य पाए जाने वाले कार्य-कारण संबंधों का पता लगाने एवं उनकी व्याख्या करने की एक वैज्ञानिक पद्धति है। सामाजिक शोध न केवल सामाजिक जीवन से संबंधित जानकारी एकत्र करने की विधि है बल्कि सामाजिक घटनाओं को नियंत्रित व निर्देशित करने वाले कारणों को खोजने, नियमों का पता लगाने, उन्हें स्थापित करने और उनके प्रभावों की विवेचना और व्याख्या करने का भी कार्य करता है। संक्षेप में, सामाजिक शोध सामाजिक घटनाओं व तथ्यों के संबंध में नवीन ज्ञान की प्राप्ति तथा पुराने ज्ञान के सत्यापन या परिमार्जन की विधि है, वैज्ञानिक विधि के प्रयोग द्वारा सामाजिक जीवन की घटनाओं समस्याओं के कार्य-कारणों, उन को संचालित करने वाले नियमों को खोजने, उनका अध्ययन करने व विश्लेषण करने का प्रयास किया जाता है।

1.1.3. शोध की प्रकृति (Nature of Research)

सामाजिक शोध की प्रकृति वैज्ञानिक है। सामाजिक तथ्यों, घटनाओं एवं सामाजिक जीवन के अध्ययन एवं विश्लेषण कि यह एक वैज्ञानिक विधि है। सामाजिक शोध का संबंध मुख्य रूप से यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति है। यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति के लिए वैज्ञानिक विधियों का प्रयोग किया जाता है। निरीक्षण, परीक्षण, तथ्यों का संकलन, वर्गीकरण, विश्लेषण आदि के द्वारा सामाजिक घटनाएं एवं समस्याओं के विषय में व्यवस्थित एवं क्रमबद्ध ज्ञान प्राप्त करना तथा सिद्धांतों का निर्माण करना सामाजिक शोध का प्रमुख उद्देश्य है। मूलतः इसकी प्रकृति सामाजिक घटनाओं तथा समस्याओं को सही परिप्रेक्ष्य में समझने की है। इस अर्थ में इसकी प्रकृति वैज्ञानिक है। सामाजिक जीवन को समझना इसका प्रमुख कार्य है। एक वैज्ञानिक पद्धति होने के नाते सामाजिक शोधकर्ता निरीक्षण, परीक्षण, तथ्यों का संकलन, वर्गीकरण व विश्लेषण की व्यवस्थित विधि को अपनाता है। इसी से इसकी वैज्ञानिक प्रकृति का स्पष्टीकरण मिलता है। सामाजिक अनुसंधान की एक प्रमुख विशेषता यह भी है कि यह सामाजिक घटनाओं तथा घटनाओं के मध्य पाए जाने वाले संबंधों को खोज निकालने पर बल देता है। सामाजिक जीवन में सभी स्थानों पर अंतःसंबद्धता एवं अंतःनिर्भरता पाई जाती है। सामाजिक जीवन के सभी पक्ष एक दूसरे के साथ घनिष्ठ रूप से अंतर्संबंधित हैं। सामाजिक जीवन को भली-भांति समझने के लिए इन संबंधों का ज्ञान होना नितांत आवश्यक है। यही कार्य सामाजिक शोध द्वारा किया जाता है।

सामाजिक शोध तथ्यों तक पहुंचने के लिए कल्पना, अनुमान, पक्षपात, पूर्वाग्रह से परे निरीक्षण, परीक्षण, प्रयोग, विश्लेषण और सामान्यीकरण पर आधारित वैज्ञानिक पद्धति का अनुसरण करता है। इसलिए सामाजिक शोध की प्रकृति वैज्ञानिक है। वैज्ञानिक शोधों की भांति ही सामाजिक अनुसंधानकर्ता भी कल्पना, तर्क, अनुमान से स्वयं को दूर रखता है। वैज्ञानिक शोध के ही समान सामाजिक शोध भी अध्ययनकर्ता द्वारा स्वयं संपादित किया जाता है। इस प्रकार, सामाजिक शोध प्रयोग सिद्ध अनुभव पर आधारित होता है। समाजिक शोधकर्ता यद्यपि उस समाज और समुदाय का सदस्य होता है जिसका कि

वह अध्ययन कर रहा है इसके बावजूद वह पक्षपात व पूर्वाग्रह से स्वयं को मुक्त रखकर तटस्थ रहते हुए सामाजिक घटनाओं का अध्ययन करता है, जैसे की एक वैज्ञानिक पक्षपात और पूर्वाग्रह से परे रहकर तटस्थता पूर्वक अपनी विषय वस्तु का अध्ययन करता है। सामाजिक शोध में वैज्ञानिक शोध की ही तरह विषय वस्तु या सामग्री का अध्ययन उसकी पूर्णता में नहीं, बल्कि सूक्ष्म रूप में किया जाता है। अर्थात सामाजिक घटनाओं का सामान्य अध्ययन न कर विशेष दृष्टिकोण से एवं विशेष लक्ष्य को ध्यान में रखकर सूक्ष्म अध्ययन किया जाता है। वैज्ञानिक शोध के समान ही सामाजिक शोध भी पूर्व निश्चित, पूर्वनियोजित विभिन्न चरणों में संपन्न होता है जो की क्रमबद्ध रूप में किए जाते हैं। वैज्ञानिक शोध की भांति सामाजिक शोध को संपादित करने के लिए विभिन्न उपकरणों, पद्धतियों का सहारा लिया जाता है। वैज्ञानिक शोध के समान ही सामाजिक शोध में नवीन तथ्यों की खोज व पूर्व से ज्ञात तथ्यों की पुनर्परीक्षा का सत्यापन किया जाता है। वैज्ञानिक शोध के माध्यम से प्राप्त निष्कर्ष सत्यापनशील होते हैं। ऐसी ही सत्यापनशीलता सामाजिक शोधों में भी पाई जाती है। वैज्ञानिक शोध में जिस प्रकार से तथ्यों के संकलन वह विश्लेषण के लिए सांख्यिकी पद्धति का उपयोग किया जाता है, उसी प्रकार सामाजिक शोध में भी सांख्यकीय पद्धति का चलन अब काफी प्रचलित हो गया है एवं कई प्रकार की नई पद्धतियां उपलब्ध होने लगी हैं जिसकी सहायता से तथ्यों का विश्लेषण व सामान्यीकरण अत्यंत सरल हो गया है।

उपरोक्त तथ्यों के आधार पर यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि वैज्ञानिक शोध की ही भांति सामाजिक शोध की प्रकृति भी पूरी तरह वैज्ञानिक है एवं सामाजिक शोध या अनुसंधान से प्राप्त ज्ञान, नियम व सिद्धांत वैज्ञानिकता से परिपूर्ण होते हैं।

1.1.4. शोध का उद्देश्य (Purpose of Research)

मनुष्य द्वारा जब कोई भी कार्य किया जाता है तो वह अवश्य ही किसी न किसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर किया जाता है। चाहे उस उद्देश्य का रूप प्रत्यक्ष हो या फिर अप्रत्यक्ष। उस कार्य को करने में व्यक्ति का कोई निजी स्वार्थ व समूह हित जैसा कोई ना कोई उद्देश्य अवश्य निहित होता है जो उसके संपन्न होने में प्रेरक की भूमिका निभाता है। अब यह प्रश्न अवश्य उठता है कि सामाजिक शोध किस उद्देश्य से प्रेरित होकर किए जा रहे हैं। सामाजिक शोध की प्रकृति से यह स्पष्ट होता है कि सामाजिक शोध नए ज्ञान की प्राप्ति व पुराने ज्ञान के परिमार्जन संबंधी उद्देश्यों से प्रेरित होकर किए जाते हैं। यही वास्तविकता है कि समाज से संबंधित नवीन तथ्यों वह परिस्थितियों की खोज करने, सामाजिक घटनाओं की प्रकृति को समझने, उनके कार्य कारण और संबंधों को ढूंढने के लिए सामाजिक शोध कार्य किए जाते हैं। प्रत्येक मानवीय प्रयास के मूल में कोई न कोई प्रयोजन अथवा उद्देश्य अवश्य निहित होता है। सामाजिक शोध भी एक ऐसा ही प्रयास है जिसका उद्देश्य सामाजिक घटनाओं पर आधारित तथ्यों का संकलन, विश्लेषण, निर्वाचन, सामान्यीकरण एवं नियमों का प्रतिपादन करना है। यदि व्यापक दृष्टिकोण से देखा जाए तो **पी. वी. यंग** के शब्दों में कहा जा सकता है कि सामाजिक अनुसंधान का प्राथमिक उद्देश्य तत्कालीन या दीर्घकालीन सामाजिक जीवन को समझ कर उस पर अपेक्षाकृत अधिक नियंत्रण स्थापित करना है। **पी. वी. यंग** के अनुसार, "सामाजिक अनुसंधान का उद्देश्य अस्पष्ट सामाजिक घटनाओं को

स्पष्ट रूप देना, अनिश्चित तथ्यों को निश्चित रूप प्रदान करना एवं सामाजिक जीवन की भ्रांत धारणाओं से संबंधित तथ्यों को संशोधित करना है।" **सेलटिज, जहोदा** एवं **उनके सहयोगी** के अनुसार सामाजिक शोध के दो प्रमुख उद्देश्य है- बौद्धिक तथा व्यवहारिक।

अब्दुल मातीन (2004) ने **सरनताकोश** की पुस्तक **सोशल रिसर्च (1998)** को अनुसरित करते हुए किसी सामाजिक शोध के दो प्रमुख उद्देश्य बताए हैं :-

(1) सैद्धांतिक उद्देश्य (Theoretical Purpose): इसका तात्पर्य नए सिद्धांतों की खोज करना व नए सिद्धांतों का प्रमाणीकरण एवं पुराने ज्ञान का परिमार्जन व सत्यापन करना है।

(2) व्यावहारिक उद्देश्य (Prectical Purpose): इससे तात्पर्य है सामाजिक शोध द्वारा सामाजिक व्याधिकीय समस्या का समाधान व निदान ढूंढना। सामाजिक व्यवहार एवं सामाजिक जीवन में कई ऐसी समस्याएं हैं जो समाज में विघटनकारी परिस्थितियां उत्पन्न कर देती हैं। इन समस्याओं का समाधान व निदान ढूंढना ही सामाजिक शोध का व्यावहारिक उद्देश्य है।

इसके अलावा **मातीन** ने सामाजिक शोध का तीसरा लक्ष्य बताया है :-

(3) राजनीतिक उद्देश्य (Political Purpose): इससे तात्पर्य है सामाजिक शोध का उद्देश्य, प्रायः सामाजिक प्रगति व विकास में सहायक योजनाओं के निर्माण एवं उनके क्रियान्वयन में सहायता करना है। इसके माध्यम से योजनाओं व कार्यक्रमों का मूल्यांकन, नियोजन व पुनर्निर्माण किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, नारी सशक्तिकरण, नारी मुक्ति, बाल अपराध, गरीबी, धर्मांधता, बेकारी, बीमारी आदि जो भी समस्याएं समाज में व्याप्त हैं उनकी वास्तविक स्थिति का आंकलन कर उनसे संबंधित योजनाओं का क्रियान्वयन किस प्रकार हो रहा है, जैसे बातों का समाधान ढूंढ निकालना इस शोध का तीसरा व महत्वपूर्ण उद्देश्य है।

इस प्रकार **मातीन** ने सामाजिक शोध के निम्नलिखित लक्ष्य बताए हैं :-

(1) तथ्यों का वर्गीकरण;
(2) मानवीयता का कल्याण करना;
(3) सामाजिक जीवन का वैज्ञानिक अध्ययन करना;
(4) सामाजिक नियंत्रण को बढ़ावा देना और भविष्यवाणी करना;
(5) ज्ञान का विकास करना;

उपरोक्त उद्देश्यों के अतिरिक्त सामाजिक शोध के निम्नलिखित उद्देश्य हैं :-

(1) नवीन तथ्यों की खोज करना व पुराने ज्ञान का पुनः परीक्षण करना है;
(2) सामाजिक घटनाओं के कार्यक्रम संबंधों की खोज करना;
(3) सामाजिक घटनाओं से संबंधित परिस्थितियों का पता लगाना;
(4) सामाजिक तथ्यों व घटनाओं का वैज्ञानिक अध्ययन कर उनका सामान्यीकरण करना एवं वैज्ञानिक सिद्धांतों का निर्माण करना;
(5) सामाजिक समस्याओं का समाधान ढूंढना;
(6) सामाजिक तथ्यों से संबंधित भ्रांतियों को जड़ से मिटाना;

(7) सामाजिक प्रगति एवं विकास हेतु योजनाओं के निर्माण उनके क्रियान्वयन में सहयोग करना;

(8) सामाजिक नियंत्रण को बढ़ावा देना;

(9) सामाजिक संगठन दृढ़ता और स्थिरता प्रदान करना;

(10) नई-नई तकनीकी और पद्धतियों के निर्माण में सहायता प्रदान करना;

इस आधार पर सामाजिक अनुसंधान के उद्देश्यों को मोटे तौर पर दो भागों में विभाजित किया जा सकता है :

(1) सैद्धांतिक अथवा बौद्धिक उद्देश्य

(2) व्यवहारिक अथवा उपयोगितावादी उद्देश्य

(1) सैद्धांतिक अथवा बौद्धिक उद्देश्य :

सभी शोध कार्यों का मूल उद्देश्य ज्ञान की वृद्धि करना अथवा अज्ञान की जानकारी प्राप्त करना होता है। सामाजिक शोध का उद्देश्य इस दृष्टिकोण से उन सिद्धांतों का प्रतिपादन करना है जिनके द्वारा सामाजिक घटनाओं की आंतरिक प्रकृति को समझा जा सके। एक सामाजिक शोधकर्ता मुख्यतः इसलिए शोध कार्य करता है जिससे वह सामाजिक जीवन, सामाजिक घटनाओं, तथ्यों एवं समस्याओं से संबंधित वास्तविकताओं का ज्ञान प्राप्त कर सके। ऐसा करते समय वह यह नहीं देखता कि किसी विशेष तथ्य से समाज को लाभ हो रहा है अथवा हानि। उसका उद्देश्य इस अर्थ में केवल वैज्ञानिक होता है कि वह निष्कर्षों की चिंता किए बिना केवल ज्ञान के संचय के प्रयास में लगा रहता है। ऐसा करते समय शोधकर्ता के सामने तीन लक्ष्य प्रमुख होते हैं :

(1) अज्ञात तथ्यों की वास्तविक जानकारी प्राप्त करना,

(2) शोध द्वारा उन तथ्यों के विभिन्न पक्षों का सूक्ष्म अवलोकन करना एवं

(3) विभिन्न तथ्यों के बीच पाए जाने वाले सामान्य तत्त्वों को ढूंढकर उनकी व्यवस्थित रूप से व्याख्या करना।

इसका तात्पर्य यह है कि सामाजिक शोध का उद्देश्य केवल नए सिद्धांतों का निर्माण करना ही नहीं होता बल्कि पुराने सिद्धांतों का नई परिस्थितियों में सत्यापन करना भी होता है। इसके अतिरिक्त, सैद्धांतिक उद्देश्य का तात्पर्य यह भी है कि शोधकर्ता द्वारा विभिन्न सामाजिक घटनाओं और तथ्यों के बीच पाए जाने वाले प्रकार्यात्मक संबंधों की खोज की जाए और उन स्वाभाविक नियमों को ढूंढ निकाला जाए जिनके द्वारा सामाजिक घटनाएं निर्देशित एवं नियंत्रित होती हैं। इस दृष्टिकोण से यह नहीं लिखा है कि सामाजिक शोध का एक उद्देश्य अनुभव सिद्ध तथ्यों के आधार पर वैज्ञानिक अवधारणाओं को प्रस्तुत करना और उन्हें विकसित करना है। उदाहरण के लिए, जब हम जाति व्यवस्था से संबंधित वर्तमान प्रक्रियाओं का अध्ययन करके उन के आधार पर संस्कृतिकरण, आधुनिकीकरण तथा प्रभु जाति जैसी अवधारणाओं को प्रस्तुत करते हैं तो यह कार्य सामाजिक शोध के सैद्धांतिक उद्देश्य को ही स्पष्ट करता है।

(2) व्यवहारिक अथवा उपयोगितावादी उद्देश्य :

सामाजिक शोध का दूसरा प्रमुख उद्देश्य व्यवहारिक अथवा उपयोगितावादी है। इस उद्देश्य का संबंध मनुष्य की उस स्वाभाविक इच्छा से है जिसके द्वारा वह उपयोगी ज्ञान का संचय करके अपने कार्यों को अधिक कुशलता पूर्वक पूरा कर सके। इसका तात्पर्य है कि एक शोधकर्ता सामाजिक जीवन और सामाजिक घटनाओं को समझने के लिए केवल सिद्धांत ही प्रस्तुत नहीं करता बल्कि इसे सुझाव भी प्रस्तुत करता है जिनके द्वारा सामाजिक जीवन को अधिक स्वस्थ बनाया जा सके। वास्तविकता यह है कि कोई भी वह ज्ञान व्यर्थ है जिसका व्यवहारिक उपयोग न किया जा सके। **एकॉफ** ने लिखा है कि जो व्यक्ति शोध से प्राप्त निष्कर्षों को अपने तक ही सीमित रखता है, वास्तव में वैज्ञानिक नहीं होता। विज्ञान अनिवार्य रूप से सार्वजनिक होता है। इसका तात्पर्य यह है कि वैज्ञानिक ज्ञान केवल तभी सार्थक हो सकता है जब वह उपयोगितावादी हो अथवा इससे दूसरे लोग लाभ उठा सकें। आधुनिक समय में जबकि सामाजिक परिवर्तन की त्रीवता के कारण अधिकांश समाजों में विघटनकारी प्रक्रियाएं क्रियाशील हो रही हैं, यह आवश्यक हो गया है कि शोध के द्वारा उन तथ्यों की खोज की जाए जिनकी सहायता से सामाजिक समस्याओं का निराकरण किया जा सके। इस दृष्टिकोण से सामाजिक शोध का उद्देश्य विभिन्न सामाजिक समस्याओं की विस्तृत जानकारी प्राप्त करके उनके निराकरण के लिए उपयोगी सुझाव प्रस्तुत करना है। केवल इसी दृष्टिकोण से सामाजिक शोध के द्वारा विभिन्न प्रकार के सामाजिक संघर्षों, तनावों, अपराधों एवं अन्य समस्याओं को सुलझाने में सहायता मिल सकती है। एक शोधकर्ता ग्रामीण विकास कार्यक्रमों से संबंधित समस्याओं को समझ कर ही ऐसे सुझाव दे सकता है जिनसे विभिन्न कार्यक्रमों को अधिक प्रभावशाली बनाया जा सके। इसी प्रकार सामाजिक शोध के द्वारा अपराध संबंधी उपयोगी सिद्धांतों का निर्माण करके जेल व्यवस्था, कानूनी एवं दंड व्यवस्था में सुधार किया जा सकता है। सामाजिक शोध द्वारा सामाजिक घटनाओं में व्याप्त कार्य-कारण संबंध को ज्ञात करके यह पता लगाया जा सकता है कि किसी विशेष घटना के घटित होने का वास्तविक कारण क्या है। यह ज्ञान समाज सुधारकों एवं प्रशासकों को कार्य करने की एक नई दिशा दे सकता है। इस दृष्टिकोण से **"एक सामाजिक शोधकर्ता का प्राथमिक उद्देश्य, चाहे वह दूरदर्शी हो अथवा तत्कालिक, सामाजिक व्यवहारों और सामाजिक जीवन को समझ कर उन पर अधिक से अधिक नियंत्रण स्थापित करना है।"**

वास्तव में, सामाजिक शोध के सैद्धांतिक तथा व्यवहारिक उद्देश्य एक दूसरे से पृथक ना होकर एक दूसरे से घनिष्ठ रूप से संबंधित हैं। इसका तात्पर्य है कि शोध का उद्देश्य चाहे सैद्धांतिक हो अथवा व्यवहारिक, प्रत्येक शोध कार्य मानव कल्याण में वृद्धि करता है। **पी. वी. यंग** ने लिखा है कि जीवशास्त्री जो सैद्धांतिक उद्देश्य को लेकर किसी औषधी की खोज नहीं करता बल्कि केवल मानव कोशाणुओं की संरचना, इनके संवर्धन के नियमों, स्वास्थ्य तथा रोग से संबंधित नियमों की व्याख्या करता है, वह भी उन व्यक्तियों के कार्य में अत्यधिक सहायक होता है जो स्वास्थ्य में वृद्धि करने के लिए उपयोगी औषधियों का निर्माण करने में रूचि रखते हैं। इसी तरह प्रत्येक सामाजिक शोध के द्वारा आधारभूत नियमों एवं प्रक्रियाओं को समझा जा सकता है जिनका सामाजिक जीवन को स्वस्थ बनाने में विशेष योगदान है। दूसरे शब्दों में, व्यवहारिक उद्देश्य की पूर्ति भी सैद्धांतिक उद्देश्यों में ही निहित रहती हैं। इस प्रकार स्पष्ट

होता है कि सामाजिक शोध के सैद्धांतिक तथा व्यवहारिक उद्देश्यों में से किसी को भी दूसरे की अपेक्षा अधिक अथवा कम महत्वपूर्ण नहीं कहा जा सकता।

1.1.5. शोध की विशेषताएं (Characteristics of Research)

सामान्य रूप से सामाजिक शोध की विभिन्न विशेषताएं परिलक्षित होती हैं :

(1) सामाजिक शोध की प्रकृति वैज्ञानिक है :

सामाजिक शोध में समाज से संबंधित विभिन्न तथ्य चाहे वे नवीन तथ्यों की खोज करने के संबंध में हो अथवा पुराने ज्ञात तथ्यों को सत्यापित करने के लिए, केवल तर्क, अनुमान या दर्शन का सहारा ना लेकर निरीक्षण, परीक्षण, प्रयोग, विश्लेषण और सामान्यीकरण पर आधारित वैज्ञानिक पद्धति का सहारा लिया जाता है। अतः यह कहा जा सकता है कि सामाजिक शोध की प्रकृति पूर्ण रूप से वैज्ञानिक है।

(2) सामाजिक घटनाओं से संबंधित :

समाजशास्त्र समाज का विज्ञान है। समाजशास्त्र में सामाजिक संबंधों, सामाजिक समस्याओं, घटनाओं, सामाजिक यथार्थ आदि के संबंध में जानकारी प्राप्त की जाती है। सामाजिक शोध के माध्यम से ही समाज के विभिन्न पक्षों के संबंध में विस्तृत व वैज्ञानिक ज्ञान उपलब्ध हो पाता है।

(3) नवीन तथ्यों की खोज व पुराने ज्ञान का परिमार्जन :

समाजशास्त्र समाज के अध्ययन का विषय है इसलिए इसकी रूचि न केवल नवीन तथ्यों की खोज में है, बल्कि सामाजिक शोध की सहायता से यह पुराने ज्ञान के सत्यापन में भी उपयोगी है। सामाजिक शोध द्वारा समाज से संबंधित उन तथ्यों का भी समय-समय पर पुनर्स्थापन किया जाता है जो हमें पहले से ही ज्ञात हैं। ऐसा करने से हमें यह ज्ञात होता है कि उन तथ्यों की वर्तमान स्थिति क्या है एवं पहले की तुलना में उसमें क्या परिवर्तन घटित हुए हैं। इसे यह सुनिश्चित करने में भी सहायता मिलती है कि वर्तमान आवश्यकताओं के संदर्भ में यह तथ्य कहां तक उपयोगी हैं अथवा उनके पक्ष में क्या परिवर्तन अपेक्षित है।

(4) सामाजिक शोध अनुभवपरक है :

सामाजिक शोध काल्पनिक या सुनी-सुनाई बातों पर आधारित ना होकर अध्ययनकर्ता द्वारा श्रम अनुभव द्वारा किए जाने वाले अथवा ज्ञात किए जाने वाले तथ्यों पर आधारित होता है।

(5) विभिन्न सामाजिक घटनाओं के मध्य संबंध स्थापित करना :

समाज में घटने वाली कोई भी सामाजिक घटना अन्य विभिन्न घटनाओं से पूरी तरह असंबद्ध, पृथक या स्वतंत्र नहीं होती है। समाज में घटने वाली विभिन्न घटनाओं के बीच आवश्यक रूप से संबंध पाया जाता हैं। वे एक दूसरे को प्रभावित करती हैं। उदाहरण के लिए, गरीबी की समस्या अन्य कई समस्याओं जैसे- अशिक्षा, बेरोजगारी, भुखमरी आदि समस्याओं को जन्म देती हैं। या कह सकते हैं कि अशिक्षा, बेरोजगारी इत्यादि गरीबी को बढ़ावा देते हैं। अतः यह सभी कारक परस्पर संबंधित हैं। इन्हें

ध्यान में रखते हुए समाज की संरचना को समझा जा सकता है। अतः सामाजिक शोध के माध्यम से विभिन्न सामाजिक घटनाओं के बीच अंतर्सम्बन्ध को ज्ञात किया जाता है।

(6) सामाजिक घटनाओं के संबंध में कार्य-कारणात्मक विवेचना :

समाज में विभिन्न प्रकार की सामाजिक घटनाएं होती हैं। सामाजिक शोध इन सामाजिक घटनाओं और तथ्यों के बीच पाए जाने वाले कार्य कारण संबंधों का अध्ययन करता है। कोई भी सामाजिक घटना ना तो बिना किसी कारण से घटित होती है और ना ही कोई घटना परिणाम रहित होती है। सामाजिक शोध के माध्यम से किसी सामाजिक घटना के उत्तरदायी कारणों और उनके परिणामों के विषय में तथ्यात्मक जानकारी मिलती है।

(7) सामाजिक नियमों का पता लगाने व सिद्धांतों के निर्माण में सहायक :

सामाजिक शोध के माध्यम से सामाजिक नियमों का पता लगाया जाता है एवं सिद्धांतों का निर्माण भी किया जाता है।

(8) सामाजिक शोध की तकनीक व यंत्रों के विकास में सहायक :

सामाजिक शोध नवीन पद्धतियों, प्रविधियों एवं अन्वेषण के लिए उपयुक्त उपकरणों के विकास में सहायक होता है।

(9) व्यवहारिक समस्याओं को हल करने में सहायक :

सामाजिक शोध का प्रयोग व्यवहारिक समस्याओं को हल करने में भी किया जाता है।

(10) उपकल्पना की जांच व परीक्षण में सहायक :

सामाजिक शोध एक ऐसी विधि है जिसमें उपकल्पना की उपयोगिता की जांच व परीक्षण किया जा सकता है।

1.1.6. शोध की उपयोगिता (Usability of Research)

वर्तमान युग परिवर्तन और नियोजन का युग है। परिवर्तन ने जहां एक ओर मानवीय मूल्यों एवं सामाजिक संरचना को नवीन रुप दिया है, वहीं इसके फलस्वरुप समाज में अनेक नवीन समस्याओं का भी प्रादुर्भाव हुआ है। वास्तविकता तो यह है कि हमारा सामाजिक जीवन जैसे-जैसे जटिल होता जा रहा है, उस का वैज्ञानिक अध्ययन करना उतना ही आवश्यक हो गया है। सामाजिक शोध की उपयोगिताएं इसी तथ्य से स्पष्ट हो जाती है कि शोध के द्वारा ही विभिन्न प्रकार की समस्याओं का निष्पक्ष रूप से वैज्ञानिक अध्ययन करके प्रमाणिक तथ्यों को प्राप्त किया जा सकता है। यही तथ्य सिद्धांतों का निर्माण कर के भावी प्रवृतियों को स्पष्ट करने में सहायक होते हैं। आज जैसे-जैसे सामाजिक नियोजन के प्रति हमारी जागरूकता बढ़ रही है, सामाजिक शोध के द्वारा ही उपयोगी ज्ञान प्राप्त करके कल्याण में वृद्धि करना संभव है। सामाजिक शोध का मुख्य उद्देश्य सामाजिक जीवन, सामाजिक प्रक्रियाओं, प्रतिमानों एवं सामाजिक व्यवहारों को यथार्थ रूप में समझना है। सामाजिक शोध के उद्देश्य को हमने दो रूपों में या परिप्रेक्ष में समझा है- सैद्धांतिक और व्यावहारिक। सामाजिक शोध से प्राप्त ज्ञान के आधार पर समाज की

समस्याओं का एक रुप से समाधान ढूंढा जा सकता है इस दृष्टिकोण से विभिन्न क्षेत्रों में सामाजिक शोध की उपयोगिता को निम्नांकित रूप से समझा जा सकता है :

(1) सामाजिक घटनाओं के विषय में वास्तविक जानकारी एवं नवीन ज्ञान की प्राप्ति करने में सहायक :

सामाजिक शोध का प्रमुख उद्देश्य ज्ञान की प्राप्ति विज्ञान की खोज है। सामाजिक शोध सामाजिक जीवन के विभिन्न पक्षों के संबंध में नवीन व वैज्ञानिक जानकारी प्रदान करता है। नवीन ज्ञान से केवल मनुष्य की जिज्ञासाओं का ही समाधान नहीं होता बल्कि इसके द्वारा हमें उपयोगी ज्ञान भी प्राप्त होता है। जिसकी सहायता से प्रगति के मार्ग पर आगे बढ़ा जा सके। नवीन ज्ञान समाज का नए सिरे से पुनः निर्माण करने में भी सहायक होता है। सामाजिक शोध सामाजिक घटनाओं के संबंध में हमारी अज्ञानता को दूर कर घटना के विषय में यथार्थ की वास्तविक जानकारी उपलब्ध कराता है।

(2) पूर्व ज्ञात तथ्यों के पुनर्परीक्षण में सहायक :

सामाजिक शोध न केवल नवीन ज्ञान उपलब्ध कराने का कार्य करता है, बल्कि पूर्व अज्ञात तथ्यों के सत्यापन का भी कार्य करता है। अर्थात यह पहले से प्राप्त ज्ञान में वृद्धि का कार्य करता है। मानव समाज एक जटिल व गतिशील समाज है, इसमें परिस्थितियां हमेशा बदलती रहती हैं। समय के परिवर्तन के साथ समाज में भी परिवर्तन होते रहते हैं। अतएव ऐसी स्थिति में ज्ञान के प्रासंगिकता को बनाए रखने के लिए सामाजिक शोध पूर्व में स्थापित ज्ञान व सिद्धांत के पुनर्परीक्षण में सहायता प्रदान करता है ताकि उन सिद्धांतों व नियमों को वर्तमान रूप में परिवर्तित किया जा सके।

(3) सामाजिक जीवन से संबंधित नए नियमों व सिद्धांतों के निर्माण में सहायक :

सामाजिक शोध, सामाजिक जीवन, सामाजिक घटनाओं, प्रक्रियाओं एवं व्यवहार प्रतिमानों का अध्ययन कर उनका सामान्यीकरण करता है। जिसके आधार पर नए सिद्धांतों एवं नियमों का निर्माण संभव होता है। इस प्रकार सामाजिक शोध सामाजिक नियमों एवं सिद्धांतों के निर्माण में सहायता प्रदान करता है।

(4) सामाजिक घटनाओं के कार्य-कारण संबंधों का विश्लेषण करने में सहायक :

सामाजिक शोध, वास्तव में समाज विज्ञानों का आधार है। आज विभिन्न विज्ञानों के लिए अधिकाधिक प्रमाणित सामग्री सामाजिक शोध के माध्यम से ही प्राप्त होती है। सामाजिक शोध द्वारा सामाजिक घटनाओं का वैज्ञानिक विधि से अध्ययन किया जाता है। वैज्ञानिक शोध में प्रायः कार्य-कारण संबंधों का पता लगाने का प्रयास किया जाता है। कार्य-कारण संबंधों की खोज विज्ञान की प्रमुख विशेषता है। इसी प्रकार सामाजिक शोध का मानना है कि जो भी सामाजिक घटना घटित होती है वह किसी न किसी कारण से प्रेरित होकर होती है। सामाजिक शोध इन्हीं घटनाओं के पीछे छिपे कारणों का पता लगाने में उनका विश्लेषण करने का एक प्रयास करता है।

(5) सामाजिक नियंत्रण में सहायक :

जब कभी भी कोई समाज परिवर्तन की प्रक्रिया में होता है तो अक्सर सामाजिक विघटन को प्रोत्साहन देता है। सामाजिक शोध द्वारा विभिन्न क्षेत्रों में उत्पन्न असंतुलन की जानकारी प्राप्त करके सामाजिक जीवन को अधिक स्वस्थ बनाया जा सकता है। सामाजिक नियंत्रण सामाजिक संगठन की सुदृढ़ता एवं सामाजिक संबंधों को सुचारु व्यवस्था एवं गतिशीलता के लिए आवश्यक है। सामाजिक शोध समाज को सुचारु रुप से चलाने में सहायक होता है क्योंकि इसके द्वारा सामाजिक जीवन के संबंध में सही तथ्यों की जानकारी प्रदान की जाती है और मनुष्य के विरोधी कार्यों एवं व्यवहारों पर नियंत्रण प्राप्त करने में सहायता मिलती है।

(6) सामाजिक समस्याओं के निराकरण में सहायक :

वर्तमान समय में समाज में कई प्रकार की समस्याएं मुख बाए खड़ी हैं जैसे- बेरोजगारी, गरीबी, वेश्यावृत्ति, बाल अपराध, भ्रष्टाचार, अपराध, दहेज समस्या आदि। अनेक विघटनकारी समस्याओं का सामना समाज में व्यक्ति को करना पड़ रहा है। इन समस्याओं के रहते हुए देश का सर्वागींण विकास संभव नहीं हो पा रहा है। सामाजिक शोध इन समस्याओं के संबंध में यथार्थ व वास्तविक जानकारी प्रदान कर उनके समाधान व निराकरण में सहायक होता है।

(7) सामाजिक संघर्ष व तनाव को कम करने में सहायक :

वर्तमान समाज में विभिन्न मुद्दों को लेकर तनाव व संघर्ष की स्थिति उत्पन्न होना आम बात हो गई है। समाज में कई तथ्यों के संबंध में अवैज्ञानिक व भ्रांत धारणा व्याप्त हैं। रूढ़िवादिता, अंधविश्वास के कारण ऐसी कई मान्यताएं फैली हुई हैं जिनके कारण आज समाज में जब तब संघर्ष व तनाव के हालात उत्पन्न हो जाते हैं। सांप्रदायिक दंगे, जातीय संघर्ष, भाषाई तनाव ऐसी कई तनावपूर्ण स्थितियां पैदा हो जाती हैं जिससे समाज के संगठनात्मक स्वरूप को क्षति पहुंचती है। सामाजिक शोध इन सब के संबंध में वैज्ञानिक ज्ञान उपलब्ध कराकर समाज में उत्पन्न संघर्ष व तनाव की स्थिति को कम करने में प्रदान करता है।

(8) सामाजिक कल्याण के कार्यों में सहायक :

भारत देश में कई प्रकार की सामाजिक-आर्थिक समस्याएं हैं। यहां ऐसे कई वर्ग हैं जिनकी सामाजिक व आर्थिक दशा अत्यंत कमजोर है जैसे कि महिला वर्ग, अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, श्रमिक वर्ग, पिछड़ा वर्ग आदि कि अपनी कई समस्याएं हैं जिनसे उन्हें जूझना पड़ता है। क्योंकि भारत एक कल्याणकारी राज्य है। जिसकी सहायता से सुविधाओं से वंचित वर्ग को समाज की मुख्यधारा से जोड़ा जा सके। सामाजिक शोध द्वारा इन योजनाओं के सही क्रियान्वयन का मूल्यांकन किया जा सकता है। सामाजिक शोध के द्वारा इन कल्याणकारी कार्यक्रमों के संबंध में वैज्ञानिक ज्ञान उपलब्ध करा कर योजनाओं की सही क्रियान्वयन में सहायता प्रदान की जाती है।

(9) सामाजिक विज्ञान के विकास में सहायक :

सामाजिक शोध एक वैज्ञानिक विधि है। इसके माध्यम से समाज व सामाजिक जीवन के संबंध में वैज्ञानिक ज्ञान की प्राप्ति होती है। अपनी इसी वैज्ञानिक प्रवृत्ति के कारण ही सामाजिक शोध, सामाजिक विज्ञानों की प्रगति में सहायक हुआ है। सामाजिक शोध की सहायता से समाज के अध्ययन के लिए नित नए उपकरणों वह तकनीकों का विकास संभव हो पाया है। समाज के विभिन्न पक्षों का वैज्ञानिक ज्ञान प्राप्त कर सामाजिक जीवन का अध्ययन करने वाले विषय आज अपने को विज्ञान के रूप में स्थापित करने में समर्थ हो सके हैं।

(10) समाज सुधार में सहायक :

सामाजिक शोध द्वारा प्राप्त ज्ञान से समाज की व्याधिकीय समस्याओं एवं गतिविधियों पर रोकथाम के हल प्राप्त होते हैं और समाज में उच्च पदों पर आसीन पदाधिकारियों को समाज की वास्तविक परिस्थिति को समझने में सहायता प्राप्त होती है। वे अपनी भूमिका का सही तरीके से निर्वाह तभी कर पाते हैं, जब सामाजिक शोध द्वारा समाज सुधार के लिए सुझाव उन तक पहुंचाए जाते हैं।

(11) सामाजिक भविष्यवाणी करने में सहायक :

सामाजिक शोध कई व्यवहारिक दृष्टिकोणों से अत्यंत उपयोगी हैं। वैसे तो सामाजिक शोध का मुख्य उद्देश्य ज्ञान की प्राप्ति का परिमार्जन है। परंतु सामाजिक शोध से प्राप्त ज्ञान का अन्य लोग व्यवहारिक उपयोग भी करते हैं। सामाजिक शोध से प्राप्त ज्ञान के द्वारा वर्तमान समाज की स्थिति को समझकर भविष्य के संबंध में अनुमान लगाया जा सकता है। भविष्य में होने वाली या घटने वाली घटनाओं के संबंध में पूर्व जानकारी प्रदान की जा सकती है जिसकी सहायता से समाज में वर्तमान व भविष्य के मध्य संतुलन स्थापित करने में सहायता मिलती है।

सामाजिक शोध के इस संपूर्ण विवेचन से स्पष्ट होता है कि सामाजिक जीवन का आज कोई भी पक्ष ऐसा नहीं है जिसे शोध के अभाव में समुचित रुप से समझा जा सके। सामाजिक शोध का उद्देश्य केवल सैद्धांतिक ज्ञान में वृद्धि करना ही नहीं होता बल्कि मानवीय समस्याओं का समाधान खोजने एवं भावी चुनौतियों का प्रत्युत्तर देने में भी यह उतना ही अधिक सहायक है। आज यह कल्पना भी नहीं की जा सकती की सामाजिक शोध के बिना सामाजिक जीवन को संगठित और प्रगतिशील बनाया जा सकता है। इस दृष्टिकोण से सामाजिक शोध की प्रकृति एवं इससे संबंधित विभिन्न पक्षों को समझना समाज के प्रत्येक वर्ग के लिए उतना ही अधिक आवश्यक है जितना कि बौद्धिक निपुणता प्राप्त करने के लिए विद्यार्थियों का जागरूक होना आवश्यक है।

1.1.7. सारांश (Summary)

मानव की जिज्ञासा का आधार चाहे प्राकृतिक दशाएँ हों या सामाजिक जटिलताएँ, इनमें संबंधित ज्ञान का स्पष्टीकरण करना एवं प्राप्त ज्ञान का सत्यापन करना ही शोध है। सामाजिक शोध सामाजिक जीवन की खोज, विश्लेषण और सत्यापन करने की एक व्यवस्थित पद्धति है, जिसका उद्देश्य सदैव ज्ञान का विस्तार एवं प्रमाणीकरण करना और मानव व्यवहार से संबंधित सामान्य नियमों का पता लगाना है। सामाजिक शोध का तात्पर्य वैज्ञानिक विधि की सहायता से मानवीय समाज से संबंधित प्रश्नों के हल निकलना है। इसमें व्यवस्थित अवलोकन, निरीक्षण, परीक्षण एवं विश्लेषण व सामान्यीकरण की पद्धति पर जोर दिया जाता है। सामाजिक शोध तथ्यों तक पहुंचने के लिए कल्पना, अनुमान, पक्षपात, पूर्वाग्रह से परे निरीक्षण, परीक्षण, प्रयोग, विश्लेषण और सामान्यीकरण पर आधारित वैज्ञानिक पद्धति का अनुसरण करता है। इस आधार पर सामाजिक अनुसंधान के उद्देश्यों को मोटे तौर पर दो भागों में विभाजित किया जा सकता है, सैद्धांतिक अथवा बौद्धिक उद्देश्य, व्यवहारिक अथवा उपयोगितावादी उद्देश्य। सामाजिक शोध के इस संपूर्ण विवेचन से स्पष्ट होता है कि सामाजिक जीवन का आज कोई भी पक्ष ऐसा नहीं है जिसे शोध के अभाव में समुचित रुप से समझा जा सके। सामाजिक शोध का उद्देश्य केवल सैद्धांतिक ज्ञान में वृद्धि करना ही नहीं होता बल्कि मानवीय समस्याओं का समाधान खोजने एवं भावी चुनौतियों का प्रत्युत्तर देने में भी यह उतना ही अधिक सहायक है।

1.1.8. बोध प्रश्न (Perception Questions)

प्रश्न 1 : सामाजिक शोध से आप क्या समझते है ?

प्रश्न 2 : किसी एक परिभाषा के आधार पर सामाजिक शोध की प्रकृति को स्पष्ट कीजिए।

प्रश्न 3 : सामाजिक शोध के उद्देश्यों को विस्तृत रूप में स्पष्ट करें।

प्रश्न 4 : सामाजिक शोध क्या है ? सामाजिक घटनाओं के अध्ययन में इसका महत्त्व (उपयोगिता) स्पष्ट कीजिए।

प्रश्न 5 : सामाजिक शोध को समझाते हुए इसकी प्रकृति एवं उपयोगिता पर प्रकाश डालिए।

1.1.9. संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ (References and Useful Texts)

- आहूजा, राम. (2005). *रिसर्च मैथड्स*. जयपुर : रावत पब्लिकेशन.
- गुडे, डब्लू., जे., हॉट, एवं पी. के. (2006). *मैथड्स इन सोशल रिसर्च*. दिल्ली : सुरजीत पब्लिकेशन.
- मतीन, ए. (2004). *रिसर्च मैथड्स, स्टैटिस्टिक्स, आई.टी., एंड ई-मैथड्स*. नई दिल्ली : आईकान पब्लिकेशन.
- मुकर्जी, आर.एन. (1969). *सामाजिक शोध एवं सांखियकी*. दिल्ली : सरस्वती सदन.
- यंग, पी.वी. (1960). *साइंटिफिक सोशल सर्वे एंड रिसर्च*. मुंबई : एशिया पब्लिशिंग हॉउस.
- यादव, आर.जी. (2014). *सामाजिक अनुसन्धान पद्धतियां*. नई दिल्ली : ओरिएंट ब्लैकस्वान.
- सरनताकोश, एस. (1998). *सोशल रिसर्च (सेकंड एडीशन)*. लन्दन : मैकमिलन प्रेस.

इकाई – 2 तथ्य, सिद्धांत एवं अवधारणा

इकाई की रूपरेखा

1.2.0 उद्देश्य

1.2.1. प्रस्तावना

1.2.2. तथ्य की परिभाषा

1.2.3. तथ्य का महत्व

1.2.4. सिद्धांत की परिभाषा

1.2.5. सिद्धांत का महत्त्व

1.2.6. सिद्धांत के प्रकार

1.2.7. तथ्य तथा सिद्धांत का अंतरसंबंध

1.2.8. समाजशास्त्रीय सिद्धांत की परिभाषा

1.2.9. अवधारणा की परिभाषाएं

1.2.10. सारांश

1.2.11. बोध प्रश्न

1.2.12. संदर्भ ग्रंथ

1.2.0. उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत विद्यार्थी निम्नलिखित में सक्षम हो सकेंगे-

1. आप सामाजिक शोध में तथ्य, सिद्धांत एवं अवधारणा से परिचित होंगे।
2. विद्यार्थी तथ्य को परिभाषित कर सकेंगे एवं सामाजिक शोध में तथ्य की उपयोगिता से परिचित हो सकेंगे।
3. विद्यार्थी तथ्य एवं सिद्धांत में अंतर को स्पष्ट कर सकेंगे।
4. विद्यार्थी अवधारणा से परिचित होंगे एवं इनकी विस्तृत व्याख्या लिखने में सक्षम होंगे।

1.2.1. प्रस्तावना

सामाजिक शोध तथा सर्वेक्षण में सामाजिक घटनाओं का अध्ययन किया जाता है। सामाजिक घटनाओं का अध्ययन मनमाने ढंग से नहीं, अपितु वैज्ञानिक पद्धति के आधार पर किया जाता है। हम यह जानते हैं कि वैज्ञानिक पद्धति नियमों की खोज करने के लिए अपनाई गई प्रविधि की एक व्यवस्था है। इस व्यवस्था या वैज्ञानिक पद्धति का उद्देश्य किसी भी घटना के संबंध में सत्य की खोज करना है। इस सत्य की खोज कल्पना के आधार पर संभव नहीं है। इसके लिए तो घटना से संबंधित वास्तविक तथ्यों का संकलन आवश्यक होता है। एकत्रित तथ्यों का उचित व व्यवस्थित वर्गीकरण कर लेने के पश्चात अध्ययन

विषय से संबंधित अवधारणाओं का निर्माण आवश्यक हो जाता है। सही अवधारणाओं के आधार पर ही सिद्धांतों का प्रतिपादन करना सरल हो जाता है। शोधकर्ता सामाजिक घटनाओं के अंतिम निष्कर्ष तक पहुंचने के लिए तथ्य, अवधारणा तथा सिद्धांत निर्माण की प्रक्रिया को अपनाता है।

इस प्रकार तथ्य, अवधारणा तथा सिद्धांत विज्ञान की आत्मा के तीन आवश्यक अंग हैं। विज्ञान चाहे प्राकृतिक हो या सामाजिक, दोनों में इन तीनों अंगों का प्रयोग किया जाता है। इनके बिना अध्ययन से प्राप्त निष्कर्षों में वैज्ञानिकता का विकास संभव नहीं है। समाज विज्ञानों में प्रयुक्त किए जाने वाले इन्हीं तीनों अंगों की विवेचना विस्तृत रूप में आगे की जाएगी।

तथ्य का अर्थ

तथ्य वैज्ञानिक अध्ययन की आधारशिला है। वैज्ञानिक अध्ययनों में तथ्य शब्द का प्रयोग बहुत ही अधिक किया जाता है। तथ्य का सामान्य अर्थ ऐसी घटना या वस्तु से होता है, जिसका स्वरूप पर्याप्त निश्चित और स्पष्ट होता है। जिसकी सत्यता एवं विश्वसनीयता के बारे में किसी भी प्रकार का संदेह उत्पन्न नहीं होता। वैज्ञानिक, तथ्य एवं विज्ञान में कोई फर्क नहीं करते। उनका कहना है कि जिस प्रकार विज्ञान सत्य, निश्चित और सही होते हैं, ठीक उसी प्रकार तथ्यों में काफी निश्चितता, सहीपन, और सत्यता की क्षमता पाई जाती है। विज्ञान की विषय-वस्तु का निर्माण तथ्यों की सहायता से होता है। तथ्यों को संकलित करना ही विज्ञान की विषय-वस्तु और उद्देश्य है। तथ्य क्या है? तथ्य की व्याख्या कैसे की जाए? आदि को समझने के लिए तथ्य की परिभाषा को समझना आवश्यक है।

1.2.2. तथ्य की परिभाषा

विभिन्न विद्वानों ने तथ्य की निम्नलिखित परिभाषाएं इस प्रकार दी हैं -

गुडे एवं हॉट के अनुसार, "एक अनुभव सिद्ध सत्यापनीय अवलोकन ही तथ्य है।"

फेयरचाइल्ड के अनुसार, "कोई प्रदर्शित की गई या प्रकाशित की जा सकने योग्य वास्तविकता की मद, पद या विषय ही तथ्य है।"

ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी के अनुसार, "तथ्य किसी कार्य का घटित होना, अवश्य ही घटित या सही मायने वाली वस्तु, अनुभव की सही बात, एक स्थिति की वास्तविकताएं, किसी निष्कर्ष का आधार मानी जाने वाली वस्तु, सही या विद्यमान वास्तविकता है"।

थॉमस एवं जैविकी के अनुसार, "तथ्य स्वयं मैं एक अमूर्तिकरण ही है"।

तथ्य की विशेषताएं

तथ्य की निम्नलिखित विशेषताएं इस प्रकार हैं -

1. तथ्य एक ऐसी घटना है जो कि वास्तविक रूप में घटित हुई हो या जो वास्तविक रूप में विद्यमान है।
2. तथ्यों को भौतिक शारीरिक, मानसिक या उद्वेगात्मक घटनाओं के रूप में देखा जा सकता है।

3. घटना को सभी लोग सच मान सकते हैं और अगर किसी को भी संदेह है तो वह स्वयं वास्तविकता की पुनर्परीक्षा या जांच कर सकता है। इस अर्थ में जिस घटना की पुनर्परीक्षा या सत्यापन की जांच संभव नहीं है वह तथ्य नहीं है।
4. घटना का निरीक्षण, अवलोकन एवं अनुभव संभव है। वह चीज या घटना घटित हुई है, इस बात की पुष्टि निश्चयपूर्वक अवलोकन या अनुभव द्वारा ही की जा सकती है।
5. घटना को दुनिया में सच कह कर स्वीकार किया जाता है। इसके अवलोकनों व मापों के संबंध में सभी लोगों का सामान मत होता है।
6. सभी सत्यों को प्रत्यक्ष रूप में देखा जा सके यह एक आवश्यक शर्त है। साथ ही, किसी न किसी प्रकार के अनुभव द्वारा इस बात की पुष्टि होना भी जरूरी है कि वह तथ्य वास्तव में विद्यमान है, वह घटना घटित हुई है।
7. तथ्यों के सामाजिक स्वरूप को स्पष्ट करते हुए **दुर्खीम** ने लिखा है कि "सामाजिक तथ्य व्यवहार (विचार, अनुभव या क्रिया) का वह है पक्ष है जिसका निरीक्षण वस्तुनिष्ठ रूप में संभव है, जोकि एक विशेष ढंग से व्यवहार करने को बाध्य करता है"।

दुर्खीम के अनुसार तथ्य की दो प्रमुख विशेषताएं हैं - बाह्यता और बाध्यता। सामाजिक तथ्य एक वस्तु की भांति है, इस कारण वह सदस्यों के मस्तिष्क के विचार के बाहर है, साथ ही इसका प्रभाव समाज के सदस्यों पर बाध्यतामूलक होता है।

1.2.3. तथ्य का महत्व

व्यक्ति और समाज के जीवन में तथ्यों का अत्यधिक महत्व होता है। इसका कारण यह है कि तथ्य व्यक्ति और समाज के लिए अनेक महत्वपूर्ण कार्यों का संपादन करते हैं, तथ्य के निम्नलिखित महत्व इस प्रकार हैं -

1. सिद्धांत का निर्माण- तथ्य सिद्धांतों की आधारशिला होते हैं। तथ्यों के अभाव में सिद्धांतों का निर्माण करना अत्यंत ही कठिन कार्य होता है। इसका मौलिक कारण यह है कि सिद्धांत तथ्यों की सहायता से ही बनते हैं। **मर्टन** इसी आशय के साथ लिखते हैं कि "ठीक सिद्धांत संबंधित तथ्यों के उत्तम भोजन पर ही पनपता है"। अविष्कारों के मूल में तथ्य विद्यमान होते हैं। गुरुत्वाकर्षण एक तथ्य है। **न्यूटन** ने इस तथ्य का निर्माण तथ्य के रूप में फल को पेड़ से नीचे गिरते देख कर किया था। वैसे तो संपूर्ण मानव जीवन ही अनेक तथ्यों से भरा पड़ा है। इन तथ्यों का तब तक कोई महत्व नहीं है, जब तक की कोई वैज्ञानिक इन्हें न देख ले और उसके आधार पर सिद्धांतों का निर्माण न कर दे। जब वैज्ञानिक तथ्यों को देख कर उसी के अनुरूप अपने विचारों को परिपक्वता प्रदान करता है, तो इसे ही सिद्धांत के नाम से जाना जाता है।

2. सैद्धांतिक पुनर्निर्माण- तथ्य का दूसरा महत्वपूर्ण कार्य किसी विद्यमान तथ्य को अस्वीकार करना और उसका पुनर्निर्माण करना है। जब नवीन तथ्य सामने आते हैं, वैज्ञानिक प्राचीन तथ्यों पर आधारित सिद्धांतों की पुनर्परीक्षा करते हैं। उन्हें ऐसा प्रतीत होता है कि इससे समय पहले उन्होंने जिस सिद्धांत का

निर्माण किया था, वह अपना प्रभाव खो चुका है या उसके प्रभावों में कमी हो गई है। प्रजाति अपराध, आत्महत्या से संबंधित सिद्धांतों का पुनर्निर्माण इसलिए हो रहा है, क्योंकि आज नवीन तथ्य प्रकाश में आ रहे हैं।

3. सिद्धांत की पुनः व्याख्या- तथ्यों का महत्वपूर्ण कार्य है पुनःनिर्मित सिद्धांतों की नवीन सिरे से व्याख्या करना और उसे एक नई परिभाषा देना। नवीन तथ्यों के आ जाने से पुनःनिर्मित सिद्धांत स्पष्ट हो जाते हैं, संबंधित घटना की अवधारणा को स्पष्ट नहीं कर पाते हैं। इसके लिए पुराने सिद्धांतों का नवीनीकरण करके उसको पुनःपरिभाषित करने की आवश्यकता होती है।

सिद्धांत का अर्थ- सिद्धांत वैज्ञानिक अनुसंधान का एक महत्वपूर्ण चरण है। **गुडे** तथा **हॉट** ने सिद्धांतों को विज्ञान का उपकरण माना है। इसमें हमें वैज्ञानिक दृष्टिकोड का पता चलता है, तथ्यों को सुव्यवस्थित करने, वर्गीकृत करने तथा परस्पर संबंधित करने के लिए इसमें अवधारणात्मक प्रारूप होता है। इसमें तथ्यों का सामान्यीकरण के रूप में संक्षिप्तकरण होता है। इसमें तथ्यों के बारे में भविष्यवाणी करने एवं ज्ञान में पाई जाने वाली त्रुटियों का पता चलता है।

1.2.4. सिद्धांत की परिभाषा

प्रमुख विद्वानों ने सिद्धांत को निम्नलिखित रुप में परिभाषित किया है--

राज के अनुसार, "एक सिद्धांत में एक विषय की विषय-वस्तु की वास्तविकता का प्रतिबिंब होता है”।

फेयरचाइल्ड के अनुसार, "सामाजिक घटना के बारे में ऐसा सामान्यीकरण जो पर्याप्त रूप में वैज्ञानिकता पूर्वक स्थापित हो चुका है तथा समाजशास्त्रीय व्याख्या के लिए एक विश्वसनीय आधार बन सकता है"।

मर्टन के अनुसार, "एक वैज्ञानिक द्वारा अपने परीक्षणों के आधार पर तर्क वाक्य के रूप में सुझाए गए तार्किक परस्पर संबंधित प्रत्यय ही एक सिद्धांत को बनाते हैं"।

गुडे तथा हॉट के अनुसार, "सिद्धांत तथ्यों के परस्पर संबंधी अथवा उनको किसी अर्थ पूर्ण विधि से व्यवस्थित करने का नाम ही सिद्धांत है"।

पारसन्स के अनुसार, "एक वैज्ञानिक सिद्धांत को अनुभवाश्रित के संदर्भ में तार्किक रूप में परस्पर संबंधित सामान्य अवधारणाओं के समूह के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।”

इस प्रकार सिद्धांत तथ्यों की वह तार्किक संरचना है, जिसमें वास्तविकता प्रतिबंधित होती है।

सिद्धांत की विशेषताएं

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर सिद्धांत की निम्नलिखित विशेषताएं इस प्रकार हैं -

1. सिद्धांत का पहला मौलिक तत्व तथ्य है। तथ्य के द्वारा ही सिद्धांत का निर्माण होता है। इस प्रकार सिद्धांत तथ्यों का ही व्यवस्थित स्वरूप है।
2. जब तथ्यों में तार्किक अनुक्रम को जोड़कर इसे व्यवस्थित कर दिया जाता है, तो सिद्धांत का निर्माण हो जाता है।
3. सिद्धांत एक प्रकार का सामान्यीकरण होता है, जो तथ्यों के आधार पर बनाया जाता है।
4. सिद्धांत को निर्मित करने में अनेक विचारों और अवधारणाओं का स्थान होता है।

5. सिद्धांत का स्वरूप अमूर्त होता है।
6. सिद्धांत का कार्य सामाजिक घटनाएं एवं क्रिया को समझाने में अभिव्यक्ति की मदद करना होता है। यह तो एक साधन मात्र है, साध्य नहीं।
7. सिद्धांत अनेक विस्तृत तथ्यों का संक्षिप्त स्वरूप है।
8. तथ्यों की सहायता से जिन सिद्धांतों का निर्माण होता है, वह विचारक के हाथ में है। वह अपनी इच्छा और रुचि के आधार पर जैसा चाहे, वैसा सिद्धांत बना सकता है। वह अच्छा और उपयोगी सिद्धांत बना सकता है एवं गलत तथा निरर्थक भी।
9. सिद्धांतों का निर्माण करने में अनुसंधानों का महत्वपूर्ण स्थान होता है। अनुसंधान के द्वारा नवीन तथ्यों का ज्ञान होता है, जिससे नवीन सिद्धांत निर्मित हो जाते हैं।
10. जैसा कि ऊपर कहा गया है की सिद्धांतों का निर्माण तथ्यों की सहायता से होता है। फिर भी ऐसे अनेक सिद्धांत हैं, जिनका निर्माण तथ्यों के अभाव में भी हुआ है।

1.2.5. सिद्धांत का महत्त्व

वैज्ञानिक कार्य को संपादित करने और नवीन ज्ञान को प्राप्त करने की दृष्टि से सिद्धांतों का अत्यंत ही महत्व है। सिद्धांतों के निम्नलिखित महत्व इस प्रकार हैं-

1. सिद्धांतों की सहायता से व्यक्ति जिन तथ्यों का संकलन करता है, उनके सत्यापन की जांच करने में समर्थ होता है,।
2. सिद्धांतों की सहायता से व्यक्ति का अधिक समय नष्ट नहीं होता है और उसे अधिक प्रयास भी नहीं करना पड़ता है।
3. सिद्धांत वे आधार हैं जिनकी सहायता से सामग्री को संकलित, वर्गीकृत एवं सामान्यीकृत करने में मदद मिलती है।
4. सिद्धांतों की सहायता से मानव अपने विस्तृत अनुभव को अत्यंत ही संक्षेप में प्रस्तुत करने में समर्थ होता है।
5. सिद्धांतों की सहायता से किसी वस्तु या घटना की समीक्षा करने में सुविधा होती है। सिद्धांत की सहायता से किसी वस्तु या घटना में विद्यमान कमियों को जानने में मदद मिलती है।
6. सिद्धांत वे आधार हैं, जिनकी सहायता से तत्वों की व्याख्या की जाती है।
7. सिद्धांत मानव ज्ञान में वृद्धि करते हैं, इसके साथ ही नवीन ज्ञान को प्रोत्साहित भी करते हैं।
8. सिद्धांतों की सहायता से सामाजिक जीवन और घटनाओं के बारे में भविष्यवाणी करने में मदद मिलती।

1.2.6. सिद्धांत के प्रकार

परसी एस. कोहेन के अनुसार, सिद्धांत को निम्नलिखित चार भागों में बांटा जा सकता है-

1. **विश्लेषणात्मक सिद्धांत**

विश्लेषणात्मक सिद्धांत वास्तविक दुनिया के संबंध में कुछ नहीं कहते अपितु कुछ ऐसे स्वयं सिद्ध कथनों से बनते हैं जो की परिभाषा से बनते हैं। जिनसे दूसरे कथनों को निकाला जाता है, जैसे- तर्कशास्त्र एवं गणित के सिद्धांत।

2. **आदर्शात्मक सिद्धांत**

आदर्शात्मक सिद्धांत ऐसे आदर्श अवस्थाओं की समूह का विस्तार करते हैं, जिनकी हम आकांक्षा करते हैं। इस प्रकार के सिद्धांत जैसा की नीतिशास्त्र के एवं सौंदर्य बोधी सिद्धांत, अक्सर गैर आदर्शात्मक प्रकृति के सिद्धांतों के साथ जुड़ जाते हैं। कलात्मक सिद्धांतों एवं वैचारिकियों आदि के रूप में जाना जाता है।

3. **वैज्ञानिक सिद्धांत**

आदर्श रूप में एक सर्वव्यापी अनुभवी कथन होता है, जो कि घटना के दो या अधिक प्रकारों के बीच एक करणात्मक संबंध को बतलाता है। वैज्ञानिक सिद्धांत सार्वभौमिक एवं सर्वव्यापी होते हैं। वैज्ञानिक सिद्धांत निश्चय ही आनुभविक या प्रयोग सिद्ध भी होते हैं। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि केवल मात्र आनुभविक निरीक्षण के परिणाम हैं। आनुभविक निरीक्षण किन्ही विशिष्ट घटनाओं का होता है। पर चूंकि सिद्धांत सर्वव्यापी होते हैं, इस कारण वे किन्ही विशिष्ट घटनाओं के बारे में कथन नहीं हो सकते। वैज्ञानिक सिद्धांत इस अर्थ में आनुभविक होते हैं कि उनसे ऐसे कथनों का निर्गमन किया जा सकता है जो की किन्ही विशिष्ट घटनाओं के बारे में हैं और जिनकी जांच पड़ताल निरीक्षण के द्वारा ही की जा सकती है।

4. **तात्विक सिद्धांत**

यह चौथा एवं अंतिम प्रकार का सिद्धांत है। तात्विक एवं वैज्ञानिक सिद्धांतों की मुख्य भेद या अंतर यह है कि तात्विक सिद्धांत वस्तुतः परीक्षण योग्य नहीं होते यद्यपि उनका तात्विक मूल्यांकन किया जा सकता है।

1.2.7. तथ्य तथा सिद्धांत का अंतरसंबंध

क्र.सं.	संबंध का आधार	तथ्य	सिद्धांत
1.	नींव रखने के आधार पर	तथ्य सिद्धांतों की नींव रखने का कार्य करते हैं।	तथ्यों के अभाव में सिद्धांतों का निर्माण बहुत मुश्किल होता है।
2.	उत्तमता के आधार पर	तथ्य सिद्धांत का उत्तम भोजन हैं।	सिद्धांत तथ्यों के उत्तम भोजन पर पनपते हैं।
3.	निर्माण के आधार पर	तथ्यों की सहायता से सिद्धांतों का निर्माण होता है।	सिद्धांतों का पुनर्निर्माण तथ्यों की सहायता से होता है।
4.	व्याख्या के आधार पर	तथ्यों की सहायता से निर्मित सिद्धांतों की व्याख्या की जाती है।	निर्मित सिद्धांतों की व्याख्या तथ्यों के आधार पर होती है।
5.	लघु रूप के आधार पर	सिद्धांत अनेक विस्तृत तथ्यों के लघु रूप हैं।	सिद्धांतों के निर्माण में विस्तृत तथ्य सम्मिलित हैं।
6.	तथ्य संग्रह के आधार पर	व्यक्ति तथ्यों को संग्रहीत करता है।	सिद्धांतों की सहायता से ही संग्रहीत तथ्यों की परख होती है।
7.	एक-दूसरे के पूरक के आधार पर	तथ्य और सिद्धांत एक-दूसरे के पूरक हैं।	सिद्धांत केवल काल्पनिक नहीं होते हैं, वे तथ्य पर आधारित होते हैं।

समाजशास्त्रीय सिद्धांत

प्रत्येक विषय वैज्ञानिक अनुसंधान द्वारा अपनी विषय-वस्तु से संबंधित तथ्यों को यथार्थ रूप में समझने का प्रयास करता है। इन तथ्यों को परस्पर संबंधित करके सार्वभौमिक नियम या सिद्धांतों के निर्माण करने का प्रयास किया जाता है। समाजशास्त्र भी इसमें कोई अपवाद नहीं है।

समाजशास्त्रीय सिद्धांत समाज, सामाजिक संबंधों तथा सामाजिक व्यवहार से संबंधित तथ्यों के अंतर संबंधित व्यवस्था है। समाजशास्त्रीय शोध या अनुसंधान में तथ्यों को आनुभविक रूप से एकत्रित किया जाता है तथा फिर एक ही पहलू या विषय से संबंधित अनेक तथ्यों को मिलाकर सिद्धांतों का निर्माण किया जाता है। समाजशास्त्र का एक भाग श्रेणियों में क्रमबद्ध ढांचे की इसी वर्णन से मिलकर बना है। जिसमें केवल साधारण सिद्धांत-निरूपण ही महत्वपूर्ण है।

1.2.8. समाजशास्त्रीय सिद्धांत की परिभाषा

प्रमुख विद्वानों ने समाजशास्त्रीय सिद्धांत को निम्नलिखित रूप से परिभाषित किया है--

फेयरचाइल्ड के अनुसार, "सामाजिक घटना के बारे में ऐसा सामान्यीकरण जो पर्याप्त रूप में वैज्ञानिकता पूर्वक स्थापित हो चुका है तथा समाजशास्त्रीय व्यवस्था के लिए आधार बन सकता है"।

मर्टन के अनुसार, "आज जिसे समाजशास्त्रीय सिद्धांत कहा जाता है, उसके अंतर्गत आंकड़ों के प्रति सामान्य उन्मेष सम्मिलित है जिन पर किसी-न-किसी प्रकार से सोच-विचार करने की आवश्यकता पड़ती है। इसके अंतर्गत स्पष्ट तथा विशिष्ट चारों के बीच प्रमाण योग्य प्रस्तावनाओं की गणना नहीं की जाती है।"

एबल के अनुसार, "सिद्धांत नियमों की व्याख्या करने के लिए निर्मित अवधारणात्मक योजनाएं हैं। सभी सिद्धांतों का सामान्य कार्य अवलोकित नियमतताओं की व्याख्या करना है। "

कैम्प बैल के अनुसार, "एक उपयोगी सिद्धांत में दो गुण होते हैं। यह ऐसा होना चाहिए कि इसमें नियमों का पूर्वानुमान लगाया जा सके तथा यह इन नियमों की व्याख्या कुछ ऐसी उपमाओं द्वारा कर सके जो ऐसे नियमों पर आधारित है जो व्याख्या किए जा रहे नियमों से अधिक सामान्य है।"

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर हम यह कर सकते हैं कि समाजशास्त्रीय सिद्धांत सामाजिक तथ्यों पर आधारित सामान्यीकरण ही है। यह समाज, सामाजिक जीवन व व्यवहार और सामाजिक घटनाओं से संबंधित तथ्यों की वह बौद्धिक व्यवस्था है, जिससे इनकी यथार्थ का ज्ञान होता है।

समाजशास्त्रीय सिद्धांत की विशेषताएं

समाजशास्त्रीय सिद्धांत की विभिन्न परिभाषाओं के आधार पर इसकी प्रमुख विशेषताएं इस प्रकार हैं-

1. वैज्ञानिक आधार- अन्य सिद्धांतों की तरह समाजशास्त्रीय सिद्धांत के निर्धारक तत्व भी सामाजिक तथ्य होते हैं। इसलिए इनका वैज्ञानिक आधार होता है। यह वैज्ञानिक पद्धति द्वारा प्राप्त तथ्यों पर ही आधारित होते हैं।

2. तार्किक- समाजशास्त्रीय सिद्धांत आनुभविक तथ्यों की एक तार्किक या बौद्धिक व्यवस्था है। जब एक ही विषय से संबंधित विभिन्न तथ्य संकलित कर लिए जाते हैं तो उनको तार्किक रूप में परस्पर संबंधित करके सिद्धांत का निर्माण किया जाता है।

3. अमूर्त- अन्य सिद्धांतों की तरह समाजशास्त्रीय सिद्धांत भी अमूर्त होते हैं तथा प्रस्तावनाएं में परस्पर एक दूसरे से संबंधित होती हैं।

4. अनुभवसिद्ध- समाजशास्त्रीय सिद्धांत सामाजिक अनुसंधान का आधार है जिससे प्राकल्पनाओं का परीक्षण तथा निरीक्षण किया जाता है।

5. यथार्थता की व्याख्या के साधन- समाजशास्त्री सिद्धांतों का उद्देश्य समाज सामाजिक जीवन तथा सामाजिक घटनाओं को समझकर उनकी व्याख्या करना है। इसीलिए यह साधन है साध्य नहीं।

6. सामान्य प्रकृति- समाजशास्त्रीय समाज, सामाजिक जीवन व व्यवहार तथा सामाजिक घटनाओं के बारे में सामान्यीकरण होते हैं। जो सामाजिक तत्वों द्वारा निर्मित होते हैं। इसीलिए सामान्य होते हैं।

7. सार्वभौमिकता- समाजशास्त्रीय सिद्धांत सार्वभौमिक प्रकृति के होते हैं। उदाहरणार्थ, कार्ल मार्क्स का अतिरिक्त मूल्य का सिद्धांत एक सार्वभौमिक सिद्धांत कहा जाता है।

8. मूल्यों की दृष्टि से तटस्थ- समाजशास्त्रीय सिद्धांत मूल्य से मुक्त होते हैं। क्योंकि अच्छे या बुरे का वर्णन नहीं करते। इनका उद्देश्य तो मात्र सामाजिक यथार्थ को समझाना तथा इसकी व्याख्या करना है।

अवधारणा का अर्थ

तथ्य एवं सिद्धांत की तरह किसी भी वैज्ञानिक अध्ययन में अवधारणा का अपना अलग ही महत्व है। जब शोधकर्ता तथ्यों में अंतर्संबंध को देखता है या एक निश्चित घटना या व्यवहार प्रतिमान को अलग करने में सफल होता है तो वह उस संपूर्ण स्थिति को एक दो शब्दों की सहायता से अभिव्यक्त करने का प्रयास करता है। तथ्यों के एक वर्ग की इस संक्षिप्त स्थिति अभिव्यक्ति को ही विज्ञान में अवधारणा कहा जाता है।

1.2.9. अवधारणा की परिभाषाएं

विभिन्न विद्वानों ने अपनी-अपनी परिभाषाओं के माध्यम से अवधारणा की विवेचना करने का प्रयास किया है। इनमें से कुछ परिभाषाएं निम्नलिखित इस प्रकार हैं-

गुडे तथा **हॉट** के अनुसार, "अवधारणा अमूर्त स्वरुप की होती है और वास्तविकता के कुछ ही विशेष पक्षों का प्रतिनिधित्व करती हैं।"

फेयरचाइल्ड के अनुसार, "यह विशेष मौलिक संकेत, जोकि समाज के वैज्ञानिक अवलोकन व चिंतन से निकाले गए सामान्यीकृत विचारों को दिए जाते हैं, अवधारणा कहलाते हैं।"

मिचेल के अनुसार, "अवधारणा एक विवरणात्मक गुण या संबंध की ओर संकेत करने वाला एक पद है।"

पी.वी. यंग के अनुसार, "सामाजिक विश्लेषण की प्रक्रिया में अन्य तथ्यों से पृथक किए गए तथ्यों के एक वर्ग को एक अवधारणा का नाम दिया जा सकता है।"

ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी के अनुसार, "अवधारणा वस्तु के एक वर्ग का विचार अथवा सामान विचार होता है।"

इस प्रकार वस्तुओं और घटनाओं को समझने के लिए प्रयुक्त किए जाने वाले पदों को ही अवधारणा कहा जाता है।

अवधारणा की विशेषताएं

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर अवधारणा की निम्नलिखित विशेषताएं निर्धारित की जा सकती हैं-

1. अवधारणा के एक वर्ग या समूह की एक ऐसी संक्षिप्त परिभाषा होती है जिसे कि एक-दो शब्दों में व्यक्त किया जाता है।
2. अवधारणा किसी घटना या व्यवहार प्रतिमान की संपूर्ण व्याख्या नहीं अपितु उसका एक संकेत मात्र होती है।
3. अवधारणा का निर्माण वैज्ञानिक निरीक्षण या चिंतन के आधार पर होता है। यह अनुमान मात्र नहीं है।
4. अवधारणा का अर्थ एक तार्किक आधार होता है और उसका निर्माण प्रत्यक्ष ज्ञान वास्तविक निरीक्षण व यथार्थ अनुभव के बल पर होता है।

5. अवधारणा अपने में अर्थयुक्त होती है क्योंकि यह तथ्यों के एक निश्चित समूह या वर्ग में पाए जाने वाली विलक्षणताओं की दोतक होती है।
6. अवधारणा स्वयं सिद्धांत का संक्षिप्त रूप नहीं होती अपितु तथ्यों के एक वर्ग की विशेषताओं को संक्षेप में बताने वाली होती हैं।
7. अवधारणा में आवश्यकतानुसार परिवर्तन भी होता रहता है। नए ज्ञान के संचय होने, वैज्ञानिक विशेष के दृष्टिकोण में परिवर्तन होने अथवा तथ्यों के पारस्परिक संबंधों का कोई नया स्वरूप प्रकट होने पर अवधारणाओं में परिवर्तन हो जाता है।

अवधारणा का महत्व

अवधारणा का महत्व इसी स्पष्ट हो जाता है कि तथ्यों के एक वर्ग या समूह की एक संक्षिप्त परिभाषा होती है। अवधारणा के माध्यम से एक घटना या प्रक्रिया को केवल एक शब्दों द्वारा सफलतापूर्वक समझाया जा सकता है। उदाहरणार्थ- यदि विद्यार्थियों के एक वर्ग में कक्षा से भाग जाने की प्रवृत्ति सामान्य रूप से पाई जाती है, तो इस संपूर्ण स्थिति को पलायन की अवधारणा द्वारा समझाया जा सकता है।

अवधारणाओं के महत्व को समझाते हुए **गुड़े** तथा **हॉट** ने लिखा है की अवधारणा को विकसित करने की प्रक्रिया इंद्रियजनित बोध को प्राप्त करने व उससे निष्कर्ष निकालने में सहायक सिद्ध होती है। इस प्रकार तथ्यों के एक वर्ग या समूह के गुणों को समझना, उनका अध्ययन करना, उन्हें व्यवस्थित व अलग करना संभव होता है। इस प्रकार तथ्यों के एक वर्ग या समूह में पाए जाने वाले गुणों को एक नाम दे देने से विचार आगे बढ़ सकता है। अतः विचारों को पनपाने के लिए अवधारणाओं का निर्माण आवश्यक है।

1.2.10. सारांश

तथ्य सामाजिक शोध में महत्वपूर्ण अवलोकित की जा सकने वाली वस्तु है। तथ्यों के सहयोग से ही सिद्धांत का निर्माण होता है। अवधारणा परिस्थितियां घटना-विशेष का एक संक्षिप्त परिचय होती है। अवधारणा का प्रयोग सुविचार के दृष्टिकोण से तथा कुछ परिस्थितियां घटना विशेष के संबंध में एक सामान्य विचार श्रृंखला को पनपाने के लिए उपयोगी सिद्ध होता है।

1.2.11. बोध प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न संख्या 01. तथ्य की परिभाषा लिखते हुए इसकी विशेषताओं को स्पष्ट कीजिए।

प्रश्न संख्या 02. सिद्धांत क्या हैं? विस्तृत व्याख्या कीजिए।

प्रश्न संख्या 03. समाजशास्त्रीय सिद्धांत की परिभाषा देते हुए इसकी प्रमुख विशेषताओं की व्याख्या कीजिए।

प्रश्न संख्या 04. अवधारणा किसे कहते हैं? इसकी विस्तृत व्याख्या कीजिए।

प्रश्न संख्या 05. सामाजिक तथ्य की विशेषताओं की विवेचना कीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न संख्या 01. तथ्य की परिभाषा लिखिए।

प्रश्न संख्या 02. तथ्य के महत्त्व पर टिप्पणी लिखिए।

प्रश्न संख्या 03. सिद्धांत से आप क्या समझते हैं?

प्रश्न संख्या 04. अवधारणा को परिभाषित कीजिए।

प्रश्न संख्या 05. तथ्य एवं सिद्धांत में अंतर-संबंध को बताएं।

बहुविकल्पीय प्रश्न

प्रश्न संख्या 01. तथ्य के संबंध में निम्न में से कौन सा कथन गलत है-

(क) वास्तविक घटना है (ख) मूर्त रूप होता है

(ग) सत्यापनीय होता है (घ) धारणाओं पर आधारित होता है

प्रश्न संख्या 02. 'डिक्शनरी ऑफ सोशियोलॉजी' पुस्तक के लेखक हैं -

(क) फेयरचाइल्ड (ख) गुडे एवं हॉट

(ग) रुसो (घ) पी. वी. यंग

प्रश्न संख्या 03. "ठीक सिद्धांत संबंधित तथ्यों के उत्तम भोजन पर ही पनपता है।" यह कथन है -

(क) कोहेन (ख) वाल्टर

(ग) मर्टन (घ) न्यूटन

प्रश्न संख्या 04. "एक अनुभवसिद्ध सत्यापनीय अवलोकन ही तथ्य है"। या किसका कथन है -

(क) रैडफील्ड (ख) गुडे एवं हॉट

(ग) टायनबी (घ) पियर्सन

प्रश्न संख्या 05. सिद्धांत के संबंध में सही है -

(क) इसका संबंध कुछ घटना विशेष से होता है।

(ख) यह तथ्यों का संग्रह है।

(ग) इसका संबंध घटनाओं की सम्पूर्ण शृंखला से होता है।

(घ) यह तथ्यों पर आधारित परिकल्पना है।

प्रश्नोत्तर –

1. (घ)
2. (क)
3. (ख)
4. (ख)
5. (ग)

1.2.13. संदर्भ ग्रंथ

1. मुकर्जी, नाथ. रवींद्र. (2016). *सामाजिक शोध व सांखियकीय*. दिल्ली: विवेक प्रकाशन.
2. श्रीवास्तव, एन.आर.ए. एवं सिन्हा, कुमार. आनंद. (2008). *सामाजिक अनुसंधान*. इलाहाबाद: शेखर प्रकाशन.
3. सिंह, कुमार. अरुण. (2017). *मनोविज्ञान, समाजशास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियाँ*. वाराणसी: मोतीलाल बनारसीदास.

इकाई-3 : सामाजिक विज्ञान में शोध एवं शोध की वस्तुनिष्ठता

Research in social sciences and Objectivity of research

इकाई की रूपरेखा

1.3.0. उद्देश्य

1.3.1. प्रस्तावना

1.3.2. सामाजिक विज्ञान में शोध

1.3.3. शोध की वस्तुनिष्ठता

1.3.4. सारांश

1.3.5. बोध प्रश्न

1.3.6. संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

1.3.0. उद्देश्य (Purpose)

इस इकाई के अध्ययन पश्चात् आप-

- सामाजिक विज्ञान क्या है एवं उसके विषय क्षेत्र को समझ सकेंगे।
- सामाजिक विज्ञान में शोध की प्रकृति किस प्रकार की है समझ सकेंगे।
- सामाजिक शोध की वस्तुनिष्ठता क्या है समझ पाएँगे।

सामाजिक विज्ञान में शोध एवं शोध की वस्तुनिष्ठता के मूलभूत आधारों से आप विद्यार्थियों की सामाजिक शोध के प्रति एक बोध विकसित हो सकेगी, जो यह समझ सकेंगे की सामाजिक विज्ञान में शोध का आधार क्या और किस प्रकार है?

1.3.1. प्रस्तावना (Introduction)

सामाजिक शोध में समाज के विभिन्न तत्व जैसे की सामाजिक संरचना, सामाजिक प्रकार्य, सामाजिक तथ्य, सामाजिक संघर्ष, सामाजिक सहयोग, सामाजिक समूह, सामाजिक प्रक्रियाएं, संस्कृति एवं वे समस्त तथ्य जो मानव जीवन से जुड़े हुए हैं, आदि का विश्लेषण एवं वर्णन होता है। सामाजिक शोध का उद्देश्य सामाजिक तथ्यों की खोजबीन एवं विश्लेषण एवं वर्णन तक ही सिमित नहीं है, बल्कि यह शोध कार्य को अग्रसरित करने व नए तथ्यों को ढूंढ निकलने से संबंधित है। हर विषय-वस्तु में एक निश्चित एवं अनोखा पद्धतिशास्त्र होता है। वास्तविक रूप से पद्धतिशास्त्र का अनोखापन उस विषय की पहचान के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। समाजशास्त्र का भी अपना एक अनोखा पद्धतिशास्त्र है।

सामाजिक संरचना के विश्लेषण द्वारा सामाजिक घटनाओं, तथ्यों एवं समस्याओं का पता चलता है। सामाजिक शोध में सामाजिक समस्याओं का निराकरण एवं उनके कार्य-कारण संबंधों का पता लगाना एवं सामाजिक घटनाओं एवं तथ्यों का विश्लेषण आदि शामिल है। शोधकर्ता के मन में विभिन्न प्रकार के

प्रश्नों का उठना और उन्हीं प्रश्नों के उत्तर खोज निकालने की विधि को ही सामाजिक शोध की संज्ञा दी जाती है। यदि देखा जाए तो मानव शैशवावस्था से ही अपने चारों ओर घटने वाली घटनाओं का अवलोकन करता है एवं उनके संबंध में जानकारी एकत्र करने का इच्छुक रहता है। यही जिज्ञासा उसे निरंतर शोध कार्य को प्रेरित करती है।

आधुनिक समाज का स्वरूप आदिम समाज व परम्परागत समाज की तुलना में और भी जटिल होता जा रहा है। अतएव, आज के संदर्भ में सामाजिक शोध की प्रासंगिकता और भी बढ़ जाती है। वर्तमान में न केवल प्राकृतिक विज्ञान के क्षेत्र में बल्कि सामाजिक विज्ञान के क्षेत्र में भी निरंतर नए-नए शोध कार्य हो रहे हैं जो कि मानव समाज में होने वाले परिवर्तनों को समझने की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण नजर आते हैं। अब प्राकृतिक एवं सामाजिक घटनाओं को समझने के लिए अनुमान, मान्यताओं एवं कल्पनाओं का सहारा न लेकर निरीक्षण, परीक्षण, प्रयोग एवं विश्लेषण के चरणों से होकर गुजरने वाली वैज्ञानिक पद्धति का उपयोग सामान्य हो गया है। प्रारंभ में, यह माना जाता था कि वैज्ञानिक विधि जो कि निरीक्षण, परीक्षण एवं विश्लेषण जैसे विभिन्न चरणों से होकर गुजरती है, का प्रयोग केवल प्राकृतिक घटनाओं को समझने या उनका अध्ययन करने के लिए किया जा सकता है। किंतु धीर-धीरे इस धारणा में परिवर्तन आया। सामाजिक वैज्ञानिकों ने विभिन्न क्षेत्रों में किए गए शोध कार्यों से यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि न केवल प्राकृतिक विज्ञानों में, बल्कि सामाजिक विज्ञान के अध्ययन में भी वैज्ञानिक पद्धति का उपयोग किया जा सकता है और बेहतर सामाजिक निष्कर्ष प्राप्त किए जा सकते हैं। आज सामाजिक शोध का प्रयोग करते हुए मनुष्य अनेक नवीन तथ्यों की खोज करने में लगा है। आज समाज में अनेक प्रकार की समस्याओं के कारणों का पता लगाने के लिए शोध के विभिन्न प्रकारों का उपयोग किया जा रहा है।

1.3.2. सामाजिक विज्ञान में शोध (Research in Social Science)

सामाजिक विज्ञान में शोध की प्रक्रिया भी विज्ञान की तरह ही होती हैं। किसी भी घटना का कार्य-कारण, घटित घटना के पीछे के तथ्य, परिणाम इत्यादि को जानने हेतु चाहे विज्ञान हो अथवा सामाजिक विज्ञान, शोध प्रक्रिया का स्वरूप एक सा ही होता है। मूलभूत अंतर केवल विषय क्षेत्र का रहता है। सामाजिक विज्ञान में शोध के मूलभूत आधारों से निम्न प्रकार अवगत हुआ जा सकता है।

सामाजिक शोध का विषय क्षेत्र (Area of Social Research):

सामाजिक शोध का विषय एवं विषय क्षेत्र का निर्धारण करना एक कठिन कार्य है। यदि हम सामाजिक शोध के विभिन्न प्रकारों को सम्मुख रखें, तो स्पष्टत: यह कहा जा सकता है कि इसकी विषय वस्तु एवं विषय क्षेत्र अत्यंत विस्तृत है। सामाजिक वास्तविकता को जानने के लिए किए जाने वाले मौलिक या विशुद्ध शोध सामाजिक व्याधिकी से संबंधित विविध शोध तथा सुधार हेतु किए जाने वाले क्रिया शोध इस तथ्य की पुष्टि करते हैं। वास्तव में सामाजिक घटना, विशिष्ट सामाजिक व्यवहार के किसी भी पहलू के अध्ययन को सामाजिक शोध के अंतर्गत रखने के पक्ष में हैं तथा इस नाते अर्थशास्त्र,

राजनीतिशास्त्र, सामाजिक इतिहास, सामाजिक मानवशास्त्र, अपराधशास्त्र, तथा समाजकार्य में होने वाले शोधों को भी हम सामाजिक शोध के अंतर्गत ही रख सकते हैं। इसके विषय क्षेत्र की विस्तृतता का अनुमान इस तथ्य से भी लगाया जा सकता है कि आज संचार एवं पात्रता इत्यादि में भी सामाजिक शोध का अत्यधिक प्रयोग किया जाने लगा है। भौगोलिक क्षेत्र की दृष्टि से भी आज अंतरराष्ट्रीय स्तर पर शोध किए जाने लगे हैं, इसके विपरीत कुछ विद्वान सामाजिक शोध को समाजशास्त्र की विषय वस्तु तक ही सीमित रखना चाहते हैं जो ना तो आज ज्यादा उचित लगता है और ना ही अधिकतर तर्कसंगत।

सामाजिक घटनाओं में वैज्ञानिक प्रक्रिया का अनुप्रयोग (Use of Scientific Process in Social Events):

वैज्ञानिक प्रक्रिया का उपयोग सामाजिक घटनाओं में हो या नहीं, यह भी एक विचारणीय प्रश्न है। सामाजिक घटनाओं की प्रकृति असाधारण होती है इसलिए अनेक विद्वानों का मत है कि सामाजिक घटनाओं के अध्ययन में वैज्ञानिक प्रक्रिया का उपयोग नहीं किया जा सकता है। परंतु बहुत से विद्वानों का विचार है कि सामाजिक घटनाओं के अध्ययन में वैज्ञानिक प्रक्रिया का उपयोग किया जा सकता है। सामाजिक घटनाओं में वैज्ञानिकता का प्रयोग किस सीमा तक किया जा सकता है, या नहीं, इसके लिए घटनाओं की प्रकृति को समझना जरूरी है। घटनाओं की प्रकृति के मूल में जाने पर ही यह ज्ञात होता है कि इसमें वैज्ञानिक पद्धति का इस्तेमाल संभव है या नहीं। सामाजिक घटनाओं की बनावट की कुछ विशेषताएं निम्नलिखित हैं-

सामाजिक घटनाओं में समरूपता नहीं पाई जाती है, सामाजिक घटनाएं गुणात्मक होती हैं, गणनात्मक नहीं होती, सामाजिक घटनाओं में वस्तुनिष्ठता नहीं पाई जाती है, सामाजिक घटनाओं में सार्वभौमिकता की कमी पाई जाती है, सामाजिक घटनाएं मुश्किल होती हैं, सामाजिक घटनाएं अमूर्त होती हैं, सामाजिक घटनाएं स्थिर नहीं होती हैं अपितु गतिशील होती हैं तथा सामाजिक घटनाओं के संदर्भ में भविष्यवाणी नहीं की जा सकती।

उपरोक्त विशेषताओं के आधार पर सामाजिक घटनाओं की प्रकृति के विषय में कहा जा सकता है कि वे भौतिक व प्राकृतिक घटनाओं से भिन्न होते हैं। साथ ही जितनी आसानी से भौतिक घटनाओं में वैज्ञानिक प्रक्रिया का उपयोग किया जा सकता है उतनी आसानी के साथ सामाजिक घटनाओं में उपयोग नहीं किया जा सकता है। परंतु इस आधार पर यह नहीं कहा जा सकता है कि सामाजिक घटनाओं के अध्ययन में वैज्ञानिक प्रक्रिया का उपयोग नहीं किया जा सकता है। इतना अवश्य है कि तुलनात्मक रूप से इसमें थोड़ी कठिनाई जरूर है। सामाजिक घटनाओं की प्रकृति उलझी हुई होती है, परंतु जैसे-जैसे घटनाओं का गहराई से अध्ययन किया जाता है वैसे-वैसे जटिलताएं समाप्त हो जाती हैं। गहराई में जाने पर मानव व्यवहार को समझना सरल हो जाता है। जिस प्रकार कोई व्यक्ति यंत्र की बनावट से अनभिज्ञ रहने के कारण उस यंत्र की संरचना को कठिन समझता है और प्रशिक्षण लेने पर उसकी संरचना को कठिन नहीं समझता है उसी तरह मानव व्यवहार भी समझ लेने पर मुश्किल नहीं रह जाता है। इस प्रकार यह पता

चलता है कि जटिलता के पश्चात सामाजिक घटनाओं के अध्ययन में वैज्ञानिक प्रक्रिया का उपयोग किया जा सकता है।

सामाजिक घटनाओं की संरचना अमूर्त होती है परंतु इसके अतिरिक्त वैज्ञानिक प्रक्रिया से पूर्वाग्रह रहित अध्ययन संभव हो सकता है। जैसे-जैसे समाज में विज्ञान की तकनीक विकसित होती जाती है वैसे-वैसे सामाजिक घटनाओं में वैज्ञानिक प्रक्रिया का उपयोग बढ़ता जाता है। किसी भी समाज के व्यवहार प्रणालियों व परंपराओं का अध्ययन वस्तुनिष्ठ रूप में किया जा सकता है। इस प्रकार यह पता चलता है कि सामाजिक घटनाओं का वैज्ञानिक अध्ययन अमूर्तता में किसी भी तरह अवरोधक नहीं है। सामाजिक घटनाओं की बनावट वस्तुनिष्ठ नहीं होती है। इस प्रकार का विचार भी ठीक नहीं प्रतीत होता है। कई सामाजिक घटनाओं का अध्ययन वस्तुनिष्ठता के आधार पर किया जाता है। अतः यह कहना गलत प्रतीत होता है कि सामाजिक घटनाओं में वस्तुनिष्ठता की कमी होने के कारण उसका वैज्ञानिक प्रक्रिया से अध्ययन नहीं किया जा सकता है। सामाजिक घटनाओं में समता नहीं पाई जाती है।परंतु उनमें भी कुछ सामान तत्व पाए जाते हैं। उन्हें समान तत्वों के आधार पर सामाजिक घटनाओं का वैज्ञानिक ढंग से अध्ययन किया जा सकता है।

सामाजिक घटनाओं के संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि इसकी भविष्यवाणी नहीं की जा सकती है। परंतु यह कहना भी सही प्रतीत नहीं होता है। वर्तमान सामाजिक विज्ञान के जगत में बहुत से ऐसे अध्ययन हो रहे हैं जिन के संदर्भ में भविष्यवाणी की जा सकती है। सामाजिक घटनाओं की प्रकृति सार्वभौमिक नहीं होती है। भिन्न-भिन्न स्थानों पर इसकी बनावट में असमानता पाई जाती है। इन भिन्न-भिन्न स्वरूपों को भी वास्तविक रूप में जाना जा सकता है। अतः यह कहना कि इस कारण से सामाजिक घटनाओं का वैज्ञानिक प्रक्रिया से अध्ययन नहीं किया जा सकता है उचित नहीं प्रतीत होता है। सामाजिक घटनाओं की प्रकृति स्थिर नहीं होती है अपितु परिवर्तनशील या गतिशील होती है। सिर्फ सामाजिक घटनाएं गतिशील नहीं होती हैं बल्कि भौतिक घटनाएं भी गतिशील होती हैं। गतिशीलता या बदलाव, नियम है। जब भौतिक घटनाओं की परिवर्तनशील प्रकृति के रहते इसका अध्ययन वैज्ञानिक प्रक्रिया से किया जा सकता है तब सामाजिक घटनाओं का भी जरूर किया जा सकता है। सामाजिक घटनाओं की प्रकृति गुणात्मक होती है। परंतु ऐसा कोई भी विज्ञान नहीं है जिसमें सिर्फ गणनात्मकता पाई जाए और गुणात्मकता नहीं पाई जाए। जब दूसरी घटनाओं का इस प्रकृति के बावजूद विज्ञान प्रक्रिया से अध्ययन किया जा सकता है तब सामाजिक घटनाओं का भी इस प्रक्रिया से अध्ययन किया जा सकता है।

उपरोक्त पहलुओं से पता चलता है कि सामाजिक घटनाओं का अध्ययन भी अवलोकन, परीक्षण, विवेचना व विभाजन के आधार पर किया जा सकता है। वैज्ञानिक प्रक्रिया के चरणों के अनुसार सामाजिक घटनाओं का अध्ययन भी किया जा सकता है। सामाजिक विज्ञान के क्षेत्र में ऐसे शोध कम हुए हैं जिनसे यह ज्ञात होता है कि सामाजिक घटनाओं के अध्ययन में भी वैज्ञानिक प्रक्रिया का उपयोग किया जा सकता है। **लुंडबर्ग** इत्यादि विद्वानों ने भी इस बात की पुष्टि की है कि अनेक सामाजिक घटनाओं का वैज्ञानिक प्रक्रिया से अध्ययन किया जा सकता है। उनका कथन है कि प्रथाएं, परंपराएं व मानव व्यवहार निरीक्षण योग्य तथ्य हैं, तथा इनका अध्ययन वैज्ञानिक प्रक्रिया द्वारा किया जा सकता है। इस प्रकार

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि सामाजिक घटनाओं व सामाजिक अनुसंधान के क्षेत्र में वैज्ञानिक प्रक्रिया का उपयोग किया जा सकता है।

समाजशास्त्र के वैज्ञानिक प्रक्रिया के मुख्य आधार (Mainstay of Scientific Processes of Sociology)

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में समाजशास्त्र विषय के समाजशास्त्रीय गुणों से यह प्रत्यक्ष हो जाता है कि समाजशास्त्र की प्रकृति और विज्ञान में अन्योन्याश्रय संबंध है। इसे निम्न आधार पर सिद्ध किया जा सकता है-

(1) वैज्ञानिक कार्य प्रणाली का उपयोग :

वैज्ञानिक कार्य प्रक्रिया का समाजशास्त्र में उपयोग किया जाता है। सामाजिक संबंधों, समाज, सामाजिक घटनाओं व व्यवस्थाओं इत्यादि का अध्ययन वैज्ञानिक कार्य प्रक्रिया के अंतर्गत किया जाता है। समाजशास्त्रीय अध्ययन में वैज्ञानिक प्रक्रिया के समस्त चरणों का उपयोग किया जाता है। कई विद्वानों जैसे **लुंडबर्ग**, **पी.वी. यंग**, **गुडे व हॉट** तथा **कुक** इत्यादि ने भी यह विचार प्रकट किया है कि समाजशास्त्र में न सिर्फ समस्या का व्यवस्थित व क्रमबद्ध अध्ययन किया जाता है अपितु समाजशास्त्रीय सिद्धांतों का गठन भी किया जाता है। समाजशास्त्री अध्ययनों में बहुत से वैज्ञानिक यंत्रों व प्रक्रियाओं का उपयोग किया जाता है। समाजशास्त्रीय विचारकों द्वारा समाजशास्त्र में वैज्ञानिक कार्यप्रणाली का इस्तेमाल किए जाने के कारण इसकी प्रकृति वैज्ञानिक मानी जाती है।

(2) सिद्धांतों का निर्माण :

समाजशास्त्री अध्ययनों में भी पहलुओं का एकत्रण, परिकल्पना का निर्माण, वर्गीकरण, सारणीयन, विश्लेषण, संगठन व व्याख्या की जाती है। अंततः इस आधार पर सिद्धांत का निर्माण किया जाता है। **कोहन** का कहना है कि समाजशास्त्र में वैज्ञानिक सिद्धांतों का गठन किया जाता है। वैज्ञानिक सिद्धांत की तीन विशेषताएं होती हैं –

(A) आनुभविकता,

(B) कार्य-कारण संबंध, व

(C) सार्वभौमिकता।

समाजशास्त्र में वैज्ञानिक सिद्धांत बनाने का प्रयत्न समय-समय पर किया जाता रहा है। कई विद्वानों जैसे **कार्ल मार्क्स** व **सोरोकिन** इत्यादि के सामाजिक बदलाव के सिद्धांत व्यवस्थित सिद्धांत हैं। प्रख्यात समाजशास्त्री विचारकों द्वारा प्रतिपादित सिद्धांतों के सम्यक अवलोकन से यह ज्ञात होता है कि समाजशास्त्र में वैज्ञानिक नियमों का निर्माण होता है।

(3) पहलुओं का विश्लेषण :

इसके अवलोकन के माध्यम से तथ्य इकट्ठा करने के पश्चात उनको कार्यकारण के आधार पर भिन्न-भिन्न समूहों में विभाजन किया जाता है। इसे वैज्ञानिक भाषा में विभाजन एवं सारणीयन कहा जाता है। विभाजन के समय उनके परस्पर गुण संबंध का उल्लेख किया जाता है। वैज्ञानिक अध्ययनों की तरह

समाजशास्त्रीय अध्ययनों में भी पहलुओं का विश्लेषण, वर्गीकरण व सारणीयन किया जाता है। चूंकि समाजशास्त्रीय शोधों में वैज्ञानिक अध्ययन की ही भांति समस्त नियमों का प्रतिपादन किया जाता है, अतएव समाजशास्त्रीय शोध की संरचना वैज्ञानिक बन जाती है।

(4) क्या है? का अध्ययन :

जिस प्रकार विज्ञान में क्या है की खोज की जाती है उसी प्रकार समाजशास्त्र में भी क्या है? क्यों है? एवं क्या होगा? आदि को ध्यान में रखते हुए घटना का उल्लेख, अध्ययन व व्याख्या की जाती है। दूसरे शब्दों में समाजशास्त्र में विज्ञान की तरह पहलुओं का पूरी तरह विश्लेषण किया जाता है। इस संदर्भ में समाजशास्त्रीय **रामकृष्ण मुखर्जी** ने **'sociology of Indian sociology'** में लिखा है, समाजशास्त्र में सत्यता को जानने हेतु शोध में निम्नलिखित 5 मौलिक सवालों का घटना के अध्ययन में जवाब देना चाहिए- क्या है? कैसे हैं? क्यों है? क्या होगा? और क्या होना चाहिए? इस तरह यह पता चलता है कि समाजशास्त्रीय अध्ययन भी वैज्ञानिक अध्ययन का ही प्रकार है।

(5) सामान्यीकरण :

समाजशास्त्र में वैज्ञानिक अध्ययन का मुख्य व अंतिम चरण सामान्यीकरण होता है। प्रथम चरण में जिस पर प्राकल्पना का निर्माण किया जाता है उसकी सत्यता की जांच अंतिम चरण में की जाती है। वैज्ञानिक अध्ययन की तरह समाजशास्त्रीय अध्ययन में भी आखिरी चरण सामान्यीकरण होता है। समाजशास्त्र में भी संकलन, पहलुओं का सारणीयन, विभाजन इत्यादि करने के पश्चात निष्कर्ष निकाला जाता है तथा प्राकल्पना से उसे मिलाया जाता है। यदि प्राकल्पना से निष्कर्ष मिल जाता है तो उसे समाजशास्त्रीय सिद्धांत का रूप दे दिया जाता है। प्राकल्पना से निष्कर्ष की प्राप्ति नहीं होने की स्थिति में प्राकल्पना को अमान्य करार दे कर समाप्त मान लिया जाता है और इसके स्थान पर नूतन सिद्धांत स्थापित कर दिया जाता है। अनुसंधान और अध्ययन की इस चरणबद्ध प्रक्रिया के फलस्वरुप ही समाजशास्त्र को एक विज्ञान का दर्जा प्राप्त होता है।

(6) सिद्धांत की सार्वभौमिकता :

वैज्ञानिक सिद्धांतों की तरह समाजशास्त्रीय सिद्धांत सार्वभौमिक होते हैं। समाजशास्त्रीय सिद्धांत निश्चित परिस्थिति में कारको की आपसी कार्य-कारण प्रभाव संबंधों का विश्लेषण करते हैं। यदि कारणों व परिस्थितियों के गुण नहीं बदलते हैं तो समाजशास्त्रीय सिद्धांत सच और प्रमाणित साबित होता है। वैज्ञानिक प्रक्रिया के अनेक चरणों के अनुरूप समाजशास्त्र में भी पहलुओं का अध्ययन करके सिद्धांतों का गठन किया जाता है। इसकी जांच करना भी संभव होता है। **मैकाइवर एवं पेज** ने भी इसके संदर्भ में **'Society'** में लिखा है, "समाज सहयोग है जो संघर्ष से गुजरता है।" **मैकाईवर एवं पेज** द्वारा प्रतिपादित इस समाजशास्त्रीय सिद्धांत को सार्वभौमिक नियम का समाजशास्त्रीय रूप माना जा सकता है।

(7) कार्य-कारण संबंधों की विवेचना :

समाजशास्त्रीय अध्ययनों में भी वैज्ञानिक अध्ययनों की तरह ही कारको का अध्ययन किया जाता है। कार्य-कारण संबंधों के संचय व अवलोकन की व्याख्या की जाती है। साथ ही कोई भी घटना किन कारणों से घटित होती है, इसका उल्लेख किया जाता है। घटना के परिणामों के कारणों की खोज की

जाती है। प्रख्यात साम्यवादी विचारक **कार्ल मार्क्स** ने वर्ग संघर्ष के माध्यम से समाज में परिवर्तन लाने की वकालत की। इनका सूत्र वाक्य था- दुनिया के मजदूरों एक हो, पूंजीपतियों का नाश हो। इस वर्ग संघर्ष में वर्णित आर्थिक शोषण, उत्पादन के संदर्भ और साधन आदि के विषय वस्तु की वैज्ञानिक व्याख्या करके सामाजिक परिवर्तन को समझने की कोशिश की गई है।

(8) सिद्धांतों की जांच :

समाजशास्त्रीय सिद्धांतों के अध्ययन उपरांत जांच किया जाता है। समाजशास्त्रीय इतिहास का दृश्यावलोकन करने पर इस प्रकार के कई उदाहरण प्राप्त होते हैं। **दुर्खीम** ने आत्महत्या के भौगोलिक सिद्धांत और प्रजातीय सिद्धांत इत्यादि का परीक्षण करके निष्कर्ष निकाला कि वे गलत थे चूंकि पहलुओं के आधार पर वे प्रमाणित साबित नहीं हुए। बहुत सी प्रचलित आत्महत्या के सिद्धांतों का परीक्षण करने के पश्चात **दुर्खीम** ने आत्महत्या का समाजशास्त्रीय सिद्धांत निरूपित किया। इसी तरह **कार्ल मार्क्स** ने अपने कई नियमों का परीक्षण किया अतएव सिद्धांतों की परीक्षण के आधार पर वैज्ञानिक अध्ययन प्रक्रिया व समाजशास्त्रीय अध्ययन प्रक्रिया एक समान है।

(9) भविष्यवाणी की क्षमता :

समाजशास्त्र में समाज की वर्तमान दशा और दिशा का अध्ययन किया जाता है और इसी के आधार पर आने वाले समय में इसमें क्या होगा? की परिकल्पना की जाती है। अतएव समाजशास्त्र की संरचना वैज्ञानिक बन जाती है, चूंकि विज्ञान का भी यही मानना है। समाजशास्त्र में सामाजिक बदलाव के संदर्भ में कई भविष्यवाणियां की गई हैं। उनमें से ज्यादातर सच भी हुई हैं। समाज, ग्राम नगर में विकसित हुए तथा संयुक्त परिवार एकांकी परिवार में बदलते गए। इसी प्रकार और भी कई सामाजिक परिवर्तन समाज में हुए हैं जिनके संदर्भ में समाजशास्त्रियों ने भविष्यवाणियां की थीं। इस प्रकार यह पता चलता है कि समाजशास्त्र में भी विज्ञान की तरह भविष्यवाणी करने की योग्यता पाई जाती है। **मैक्स वेबर** के अनुसार समाजशास्त्र में घटना का अध्ययन करके आगे आने वाली परिस्थितियों के संबंध में भविष्यवाणी की जा सकती है। इस बात की पुष्टि करते हुए **कोहेन** ने भी **'Modern Social Theory'** में स्पष्ट किया है कि समाजशास्त्र भी कुछ सीमा तक भविष्यवाणी करने की योग्यता रखता है। उपर्युक्त तथ्यों से ज्ञात होता है कि समाजशास्त्र की प्रकृति भी वैज्ञानिक होती है। जबकि इसमें वैज्ञानिक अध्ययन प्रक्रिया की ही तरह पहलुओं का एकत्रण, विवेचन, विभाजन व सामान्यीकरण किया जाता है अतः समाजशास्त्र की प्रकृति को वैज्ञानिक माना जा सकता है।

(10) अवलोकन :

तथ्य एकत्रण हेतु वैज्ञानिक अध्ययन प्रक्रिया में अवलोकन प्रक्रिया का उपयोग किया जाता है। ना केवल सामाजिक विज्ञानों में अवलोकन प्रक्रिया की सहायता से तथ्य इकट्ठे किए जाते हैं अपितु प्राकृतिक विज्ञानों में भी तथ्य एकत्रण हेतु इस प्रक्रिया का उपयोग किया जाता है। प्राकृतिक विज्ञानों में सिर्फ असहभागी अवलोकन का उपयोग किया जाता है। समाजशास्त्रीय अध्ययन में किस प्रकार की अवलोकन प्रक्रिया का उपयोग किया जाए यह इस बात पर निर्भर है कि अध्ययन समस्या कैसी है।

समाजशास्त्रीय संरचना की वैज्ञानिकता ज्ञात करने के लिए अवलोकन पद्धति के माध्यम से चरणबद्ध एवं व्यवस्थित तौर पर संग्रहित पहलुओं का विभक्तिकरण किया जाता है।

सामाजिक शोध की आधारभूत मान्यताएं (Basic Beliefs of Social Research):

सामाजिक शोध की आधारभूत मान्यताएं निम्नलिखित हैं :-

(1) सामाजिक घटनाओं में कार्य-कारण का संबंध :

सामाजिक शोध की यह प्रमुख मान्यता है कि विभिन्न सामाजिक क्रियाओं के बीच कार्य-कारण का संबंध होता है। इन कारकों का एक निश्चित फल होता है। अतः यदि इन कारकों को ज्ञात कर लिया जाए तो उसके द्वारा उत्पन्न होने वाले बुरे प्रभावों को रोका जा सकता है। उदाहरणार्थ गरीबी अपराधों को जन्म देती है। अतः गरीबी को दूर करने के लिए उपाय किए जा सकते है। इस प्रकार सामाजिक शोध द्वारा उन तत्वों को ज्ञात किया जाता है जो सामाजिक घटनाओं को प्रभावित करते हैं।

(2) सामाजिक घटनाओं में क्रम नियम :

सामाजिक शोध की द्वितीय मान्यता यह है कि सामाजिक घटनाएं अनायास अथवा बिना किसी क्रम के नहीं होती। इनके पीछे नियम तथा क्रम होता है। अतः इस क्रम के आधार पर किसी घटना के बारे में पूर्व अनुमान लगा सकते हैं। सामाजिक विकास का नियम इसी क्रम के ऊपर आधारित है।

(3) तटस्थ अध्ययन :

सामाजिक शोध में समाज वैज्ञानिक स्वयं भी उस समाज का सदस्य होता है, जिसका वह अध्ययन करता है। सामाजिक शोध की यह मान्यता है कि अनुसंधानकर्ता को विषय वस्तु के प्रभाव से तटस्थ रहना चाहिए।

(4) प्रतिनिधि पूर्व निदर्शन :

अध्ययन की इकाइयों को विभिन्न आदर्श प्रारूपों में विभाजित करने के अतिरिक्त एक मान्यता यह भी है कि समूह में से कुछ प्रतिनिधित्वपूर्ण इकाइयों को अध्ययन के लिए निकाला जा सकता है। इन इकाइयों के अध्ययन से प्राप्त निष्कर्षों को समय पर लागू किया जा सकता है। वास्तव में मानव समाज अत्यधिक व्यापक है। इसमें प्रत्येक व्यक्ति का पृथक अध्यन करना संभव नहीं है। अतः निदर्शन प्रणाली द्वारा समय का सही अध्ययन किया जा सकता है।

(5) आदर्श प्रारूपों का अध्ययन :

सामाजिक शोध की मान्यता है कि विभिन्न सामाजिक तथ्य एक दूसरे जैसे बिलकुल भी नहीं होते। इन्हें कुछ आदर्श प्रारूपों में बांटा जा सकता है। ये प्रारूप विशेष गुणों समूह के घोतक होते हैं। एक वर्ग की सभी इकाइयों में उनके गुण पाए जाते हैं। अतः किसी भी सजातीय समूह के कुछ हिस्से के अध्ययन द्वारा प्राप्त परिणामों को संपूर्ण सजातीय समूह में लागू किया जा सकता है।

सामाजिक शोध की समस्याएं (Problems of Social Research):

सामाजिक शोध एक जटिल प्रक्रिया है। ऐसा प्रतीत होता है शोध सरल कार्य है, परंतु जब हम सामाजिक शोध की प्ररचना बनाना प्रारंभ करते हैं तो हमें पता चलता है कि यह कार्य कितना कठिन है। सामाजिक शोध में कई प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ता है। **पहली** समस्या यह है कि शोध समस्या का प्रतिपादन ठीक प्रकार से किया जा सके। ऐसा माना जाता है कि यदि शोध समस्या का निरूपण ठीक प्रकार से हो गया है तो यह आधे शोध के बराबर है। समस्या का सावधानीपूर्वक निर्माण हमें शोध के अगले चरणों में आने वाली अनेक बाधाओं से बचा सकता है। **दूसरी** समस्या निदर्शन के चयन से संबंधित है। सामान्यतया जिन सूचनादाताओं का चयन किया जाता है उनमें से बहुत से मिलते ही नहीं हैं। इससे निदर्शन की विश्वसनीयता प्रभावित होती हैं। **तीसरी** समस्या विश्वसनीय सामग्री के एकत्रण से संबंधित है। अधिक सूचनादाता सही सूचनाएं नहीं देते हैं जिसके कारण भ्रामक निष्कर्ष निकल सकते है। एक से अधिक शोध प्रविधियों का प्रयोग करके संकलित आंकड़ों की विश्वसनीयता की जांच की जाती है। **चौथी** प्रमुख समस्या शोध में वस्तुनिष्ठता बनाए रखने की है। अधिकांश विद्वान इस बात पर जोर देते हैं कि सामाजिक शोध में प्राकृतिक विज्ञानों की भाँति प्रमाणिकता लाना कठिन है। समाज विज्ञानों के नियम प्राकृतिक विज्ञानों के नियमों की भांति अटल नहीं होते, वे तो सामाजिक व्यवहार के संदर्भ में संभावित प्रवृत्ति को प्रदान करते है। ऐसी स्थिति के लिए अनेक कारक उत्तरदाई है सामाजिक घटना का स्वभाव, ठोस मापदंडों का विकसित ना होना आदि। वस्तुनिष्ठ अध्ययन से संबंधित पांच प्रमुख समस्याएं हैं -

1. शोधकर्ता के बाह्य हित व्यक्तिनिष्ठता को प्रोत्साहन देते हैं।
2. समस्या का चयन सदैव मूल्य निर्णयों द्वारा प्रभावित होता है।
3. सामाजिक शोध में तटस्थता रख पाना संभव नहीं है।
4. सामाजिक घटनाओं की गुणात्मक प्रकृति शुद्ध रूप से घटनाओं के अध्ययन में एक बाधा है।
5. शोधकर्ता के नैतिक मूल्य संजाति केंद्रवाद शोध को अत्यधिक प्रभावित करते हैं।

सामाजिक शोध की **पांचवी** और **अंतिम** समस्या अंतःविषयक दृष्टिकोण की है जो ज्यादातर शोधकर्ताओं में नहीं पाया जाता है। इससे सामाजिक घटनाओं की सत्यता का पूरा पता नहीं चल पाता है।

शोध समस्या की परख (Assay of Research Problems):

शोध समस्या को चयनित करने के उपरांत उसके निर्वचन की समस्या सम्मुख आती है। शोधकर्ता समस्या के निरूपण से पूर्व तक इस बात से अनजान रहता है कि वस्तुतः उसे क्या करना है एवं किन तथ्यों को खोजना है। **डॉ सुरेंद्र सिंह** द्वारा रचित पुस्तक **'सामाजिक अनुसंधान'** में शोधकर्ता को निम्न प्रश्न स्वयं से पूछने के लिए कहा गया है-

1. जिस तरह की जानकारी हम प्राप्त करना चाहते हैं इसकी प्राप्ति किन-किन साधनों, स्रोतों एवं तरीकों का उपयोग करते हुए हो सकती है?
2. इस जानकारी से, जिसे हम उपलब्ध कराना चाहते हैं, कितने लोग लाभान्वित हो सकते हैं? क्या यह ज्ञान प्राप्त करना इस पर होने वाले की नजर से ठीक है?

3. इस जानकारी की पृष्ठभूमि में, अगर कोई हो, क्या जानकारी और अर्जित करना चाहते हैं तथा क्यों यह जानकारी प्राप्त करना चाहते हैं?
4. इस जानकारी के अलग-अलग स्रोत क्या हैं तथा उनकी विश्वसनीयता एवं प्रमाणिकता की हद क्या है?
5. क्या इन परिकल्पनाओं के अंदर प्रयुक्त किए जाने वाले अवधारणाओं, चरों, वाक्य-विन्यासों इत्यादि की स्पष्ट परिभाषाएं प्राप्त हो सकेंगी तथा क्या ये प्रायोगिक नजरिए से उपयुक्त होंगी?
6. जो जानकारी हम प्राप्त करना चाहते हैं उसकी प्राप्ति के लिए किए जाने वाले प्रयासों का पथ प्रदर्शन किस तरह की मान्यताओं एवं परिकल्पनाओं द्वारा किया जाएगा?
7. शोध समस्या के संबंध में उसकी जानकारी कितनी है?
8. जिस तरह की जानकारी हम प्राप्त करना चाहते हैं इस पर कितने धन, समय एवं प्रयासों के व्यय की आवश्यकता होगी तथा क्या व्यय के अनुसार हमें परिणाम मिलेंगे?

1.3.3. शोध की वस्तुनिष्ठता (Objectivity of Research)

प्रत्येक अध्ययन का उद्देश्य किसी विषय का यथार्थ ज्ञान प्राप्त करना होता है। अध्ययनों में दो प्रकार के दृष्टिकोण अपनाए जा सकते हैं- प्रथम वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण और दूसरा व्यक्तिनिष्ठ। इन दोनों दृष्टिकोण में पर्याप्त अंतर है। वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण में अध्ययन करते समय वस्तु या अध्ययन के विषय को महत्व दिया जाता है। यह वस्तु केंद्रित अध्ययन है। इसके विपरीत व्यक्तिनिष्ठ दृष्टिकोण में अध्ययनकर्ता के अपने विचार, भावनाएं और पूर्वधारणाएं विशेष मत रखती हैं। इस दृष्टिकोण के अंतर्गत अध्ययनकर्ता के पूर्वाग्रह, अध्ययन के निष्कर्षों को प्रभावित करते हैं। वस्तुनिष्ठ अध्ययन प्राय: विश्लेषणात्मक होता है और व्यक्तिनिष्ठ अध्ययन प्राय: वर्णात्मक होता है। वस्तुनिष्ठ अध्ययन सदा क्रमबद्ध एवं व्यवस्थित होता है, उसके द्वारा प्राप्त परिणाम तथ्यों के अवलोकन, परीक्षण एवं विश्लेषण पर आधारित होते हैं। इसके विपरीत व्यक्तिनिष्ठ अध्ययन में प्राप्त परिणाम प्राय: अध्ययनकर्ता की भावनाओं एवं कल्पना से मिश्रित होता है।

वैज्ञानिक अध्ययनों की प्रथम शर्त यथार्थता है। यथार्थ अध्ययन के लिए वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण अपनाना आवश्यक है। प्राकृतिक विज्ञानों में वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण अपनाना सरल होता है। इसलिए उनमें प्राय: तब कहीं वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण ही अपनाया जाता है। इसके विपरीत सामाजिक अध्ययनों में वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण अपनाना अपेक्षाकृत कठिन होता है। इसका मुख्य कारण सामाजिक घटनाओं की जटिल प्रकृति है। सामाजिक घटनाओं के अध्ययन में अध्ययनकर्ता स्वयं भी उसी समूह अथवा समाज का अंग होता है, जिसका अध्यन करना होता है। सामाजिक घटनाओं में समानता एवं सार्वभौमिकता का भी अभाव होता है। इस कारण भी उनके अध्ययन में वस्तुनिष्ठता को बनाए रखना कठिन होता है।

वस्तुनिष्ठता का अर्थ (Meaning of Objectivity)

वस्तुओं के अध्ययन के विषय को महत्वपूर्ण मानकर तथा अपने पूर्वाग्रहों से मुक्त होकर किया गया अध्ययन वस्तुनिष्ठ अध्ययन कहलाता है। पक्षपातों एवं लगावों के बिना किया गया निरीक्षण और तथ्यों का वैज्ञानिक संकलन एवं विश्लेषण ही वस्तुनिष्ठता है। वस्तुनिष्ठ अध्ययन में, संबंधित वस्तु जैसी वास्तव में होती है, वैसा ही उसका वर्णन किया जाता है। उसके गुण दोषों को बढ़ाकर या घटाकर नहीं मापा जाता। वस्तुनिष्ट अध्ययन करते समय अध्ययनकर्ता को केवल अपनी इंद्रियों और मस्तिष्क को कार्य में लाना चाहिए, हृदय और भावनाओं को अध्ययन क्रिया से अलग रखना चाहिए। भले ही अध्ययनकर्ता का हृदय एवं भावनाएं उस के परिणामों को नापसंद करें, और भले ही प्रत्येक परिणाम उसकी अपनी धारणाओं के विरुद्ध हो, तो भी उन परिणामों को स्वीकार कर लेना होगा जो परिणाम वैज्ञानिक पद्धति से प्राप्त हुए हों। वस्तुनिष्ठ अध्ययन में विश्वास और आस्था की अपेक्षा तर्क एवं बुद्धि का महत्व प्रधान होता है। कल्पनाओं की अपेक्षा तथ्यों को प्राथमिकता दी जाती है।

श्री कार ने वस्तुनिष्ठता की परिभाषा इस प्रकार की है, "सत्य की वस्तुनिष्ठता का अर्थ है कि घटनामय संसार में किसी व्यक्ति के विश्वासों, आशाओं अथवा भय से स्वतंत्र एक वास्तविकता है जिसका सब कुछ हम अंतर्दृष्टि और कल्पना से नहीं बल्कि वास्तविक अवलोकन के द्वारा प्राप्त करते हैं।" **श्री कार** की इस परिभाषा से यह पूर्णतया स्पष्ट हो जाता है कि वस्तुनिष्ठ अध्ययन में घटनाओं के वास्तविक रूप का ही अध्ययन किया जाता है, और व्यक्तिगत विश्वासों, आशाओं और भय आदि को अध्ययन की प्रक्रिया से अलग रखा जाता है। वास्तव में यदि अध्ययनकर्ता अपने अध्ययन में अपने विश्वासों, आग्रहों, धारणाओं और संस्कारों का समावेश करता है तो उसके अध्ययन के निष्कर्ष वास्तविक और यथार्थ नहीं होते। इस स्थिति में प्राप्त निष्कर्ष उसके निजी दृष्टिकोण के अनुकूल होते हैं, उनका वैज्ञानिक रूप से सार्वजनिक महत्त्व नहीं होता।

श्री ग्रीन ने भी वस्तुनिष्ठता की सुंदर परिभाषा की है। उनके अनुसार, "वस्तुनिष्ठता निष्पक्षता से प्रमाण का परीक्षण करने की इच्छा एवं योग्यता है।" **ग्रीन** की इस परिभाषा से स्पष्ट होता है कि वस्तुनिष्ठता में इच्छा एवं योग्यता का समावेश होता है। यहां इच्छा से आशय है संबंधित घटना के यथार्थ एवं तर्कसम्मत अध्ययन की शिक्षा और योग्यता का अर्थ है, अध्ययन में अपने आपको विश्वासों, भावनाओं, संस्कारों और पक्षपातों से मुक्त रखने की योग्यता।

सामाजिक अध्ययन में वस्तुनिष्ठता की आवश्यकता (Required of Objectivity in Social Studies):

वस्तुनिष्ठता के अर्थ के विवेचन से स्पष्ट है कि प्रत्येक वैज्ञानिक अध्ययन में पर्याप्त वस्तुनिष्ठता अपनाना अनिवार्य है। वैज्ञानिक अध्ययनों से सामान्य एवं सार्वभौमिक निष्कर्ष प्राप्त करने के लिए भी वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण आवश्यक है। सामाजिक अध्ययनों में वस्तुनिष्ठता क्यों आवश्यक है? इस प्रश्न का समाधान निम्नलिखित विस्तृत विवरण से हो जाएगा-

(1) सामाजिक अध्ययन को वैज्ञानिक बनाने के लिए

प्राकृतिक विज्ञानवेत्ताओं का मानना हैं कि सामाजिक अध्ययन कोई वैज्ञानिक अध्ययन नहीं है और न ही समाजशास्त्र कोई विज्ञान है। इन लोगों की इस धारणा में अधिक सत्यता नहीं है। चूंकि समाजशास्त्र एक नया एवं अपेक्षाकृत अल्पविकसित विज्ञान है, इसलिए कहीं-कहीं कुछ समाजशास्त्रीयों द्वारा सामाजिक अध्ययन में वैज्ञानिक नियमों एवं पद्धति को पूरा-पूरा पालन करना संभव है। अतः सामाजिक अध्ययनों में वस्तुनिष्ठता अपनाई जाए तब लोगों की मिथ्या धारणाओं को दूर किया जा सकता है। समाजशास्त्र के क्रमिक विकास के साथ सामाजिक अध्ययनों में वस्तुनिष्ठता को अधिक से अधिक मात्रा में प्राप्त करना संभव हो गया है। आज के सामाजिक अध्ययनों में वस्तुनिष्ठता को प्राप्त करने के लिए प्रश्नावलियों, अनुसूचियों आदि के अतिरिक्त सांख्यकीय पद्धतियों और समाजमितीय पैमानों का भी पर्याप्त चलन हो गया है।

(2) प्रतिनिधि तथ्यों की प्राप्ति के लिए :

सामाजिक अध्ययन करते समय प्राय: निदर्शन प्रणाली से सूचनाएं संकलित की जाती हैं। संबंधित समूह अथवा समुदाय से कुछ ऐसे सदस्य चुन लिए जाते हैं। जो पूरे समूह अथवा समुदाय का प्रतिनिधित्व करते हैं। इस स्थिति में निदर्शन चुनने का कार्य पूर्ण वस्तुनिष्ठता से होना चाहिए, अन्यथा प्रतिनिधि तथ्यों की प्राप्ति संभव नहीं होगी और अध्ययन के परिणाम सही नहीं होंगे। अक्सर देखा जाता है सामाजिक अनुसंधानकर्ता निदर्शन के चुनाव में तटस्थ नहीं रह पाते, वे किसी न किसी आकर्षण, लोभ-मोह अथवा अपने निजी रूचि के अनुसार निदर्शन के चुनाव में तटस्थ नहीं रह पाते। कॉलेज में अध्ययन करने वाले अनुसंधानकर्ता प्राय: सुंदर एवं आकर्षक युवतियों को सूचना संकलन के लिए चुन लेते हैं। इस स्थिति में संबंधित अनुसंधान अथवा सर्वेक्षण सिमित व एकांगी बन जाता है। संबंधित समस्या के प्रति असुंदर एवं अनाकर्षक लड़कियों के विचार जानने का अवसर ही प्राप्त नहीं होता। अतः प्रतिनिधि तथ्यों की प्राप्ति के लिए अध्ययन में वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण अपनाना आवश्यक है।

(3) तटस्थ निदर्शन प्राप्त करने के लिए :

प्रत्येक विज्ञान का प्रमुख उद्देश्य तटस्थ निष्कर्ष प्राप्त करना होता है। सामाजिक अध्ययनों में भी तटस्थ निष्कर्षों की प्राप्ति पर विशेष जोर दिया जाता है। तटस्थ निष्कर्ष उस निष्कर्ष को कहा जाता है जिसके निगमन एवं प्रस्तुतीकरण में कल्पनाओं, भावनाओं, आग्रहों और संस्कारों को सर्वथा अलग रखा गया हो। तर्क एवं तथ्यों के आधार पर प्राप्त निष्कर्षों को तटस्थ निष्कर्ष माना जाता है। तटस्थ निष्कर्ष प्राप्त करने के लिए संबंधित अध्ययन पद्धति में पर्याप्त वस्तुनिष्ठता होनी अनिवार्य है। यदि अध्ययन में दृष्टिकोण व्यक्तिनिष्ठ होता है तो कभी भी तटस्थ निष्कर्ष प्राप्त नहीं हो सकते। व्यक्तिनिष्ठ दृष्टिकोण रखते हुए अध्ययन करना समय एवं धन का अपव्यय ही माना जाता है। अतः यह स्पष्ट है कि यदि तटस्थ निष्कर्ष प्राप्त करने हो तो अध्ययन में वस्तुनिष्ठता होनी अति आवश्यक है।

(4) वैज्ञानिक पद्धति के सफल प्रयोग के लिए :

आज सामाजिक अध्ययन को वैज्ञानिक अध्ययन माना जाता है। वैज्ञानिक वह अध्ययन कहलाता है जिसमें वैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग किया जाता है। वैज्ञानिक पद्धति की परमावश्यक शर्त वस्तुनिष्ठता है, अर्थात जब तक किसी पद्धति में वस्तुनिष्ठता नहीं है तब तक उस पद्धति को वैज्ञानिक नहीं कहा जा सकता। अतः वैज्ञानिक पद्धति के सफल प्रयोग के लिए वस्तुनिष्ठता होना अति आवश्यक है। यदि सामाजिक अध्ययन में वैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग किया जाए और वस्तुनिष्ठता अपनाई जाएं तो शत प्रतिशत सत्य निष्कर्ष प्राप्त करना असंभव नहीं होगा।

(5) घटनाओं के वास्तविक अध्ययन के लिए :

घटनाओं के वास्तविक अध्ययन के लिए वस्तुनिष्ठता अति आवश्यक है। यदि अध्ययन में वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण नहीं अपनाया जाएगा और विभिन्न अध्ययनकर्ता संबंधित समस्या का व्यक्तिनिष्ठ दृष्टिकोण से अध्ययन करेंगे तो विभिन्न प्रकार के निष्कर्ष प्राप्त होंगे। इस स्थिति में घटना की वास्तविकता पर पर्दा पड़ जाएगा। प्राकृतिक विज्ञानों में वास्तविक अध्ययन सरल होता है, क्योंकि वहां व्यक्तिगत रूचियों, अभिरुचियों अथवा क्षमताओं को प्रधानता नहीं दी जाती। प्राकृतिक घटनाओं के अध्ययन में संबंधित यंत्रों को अधिक महत्व दिया जाता है। उदाहरण के लिए एक ही जल किसी व्यक्ति को ठंडा और किसी को गर्म प्रतीत हो सकता है, परंतु वैज्ञानिक अध्ययन में व्यक्तिगत प्रतीतियों को स्थान न देकर थर्मामीटर द्वारा नापे गए तापक्रम को स्थान दिया जाता है। इसी प्रकार यदि सामाजिक अध्ययन में भी घटनाओं के वास्तविक रूप को जानना हो तो यह आवश्यक है कि अध्ययन में पर्याप्त वस्तुनिष्ठता उपस्थित हो।

(6) सत्यापन के लिए :

वैज्ञानिक अध्ययन में प्राप्त तथ्यों एवं निष्कर्षों की जांच अथवा सत्यापन अति आवश्यक है। निष्कर्षों की जांच करने के लिए संबंधित घटना का निश्चित परिस्थितियों में निश्चित पद्धति द्वारा पुनः अध्ययन किया जाता है। इस प्रकार पुनः अध्ययन करने से निष्कषों को सिद्धांत एवं नियम का स्थान दे दिया जाता है। अब प्रश्न उठता है कि निष्कर्षों की जांच कैसे संभव हो सकती है? इस समस्या के समाधान के लिए सामाजिक अध्ययनों को वस्तुनिष्ट बनाना आवश्यक होता है। वस्तुनिष्ठ अध्ययन वैज्ञानिक एवं नियमबद्ध होता है। किसी भी वस्तुनिष्ठ अध्ययन को निश्चित नियमों एवं पद्धति के द्वारा पुनः दोहरा कर सत्यापित किया जा सकता है। इसके विपरीत वस्तुनिष्ठ अध्ययन को न तो दोहराया जा सकता है और न ही वैज्ञानिक ढंग से सत्यापित ही किया जा सकता है। अतः निश्चित एवं सत्यापित निष्कर्ष प्राप्त करने के लिए वस्तुनिष्ठता परमावश्यक है।

(7) नए अनुसंधानों की संभावनाओं को जानने के लिए :

वस्तुनिष्ठ अध्ययन से नए-नए अनुसंधानों की संभावनाएं प्रकाश में आती हैं। वस्तुनिष्ठ अध्ययन में संबंधित विषय का विस्तृत अध्ययन करते समय कई अज्ञात तथ्यों का भी प्रकाशन होता है, और अनेक तरह से स्पष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार समस्या के अनेक ऐसे पक्षों का पता है जिनके विषय में स्वतंत्र रूप से अध्ययन करना संभव होता है। वस्तुनिष्ठ अध्ययन के दौरान कई ऐसी घटनाएं होती हैं जिनके

प्रभाव से अध्ययनकर्ता के मन में नए-नए प्रकार के अध्ययन करने की जिज्ञासा और इच्छा पैदा हो जाती है।

वस्तुनिष्ठता को प्राप्त करने में कठिनाइयां (Difficulties in Getting Objectivity):

सामाजिक शोध में वस्तुनिष्ठता का स्थान बड़ा महत्वपूर्ण है। किंतु इसे प्राप्त करने में अनेक कठिनाइयां हैं। इन कठिनाइयों का उल्लेख निम्न प्रकार किया जा सकता है-

(1) भावात्मक प्रभाव :

सामाजिक शोध में, जिन सामाजिक घटनाओं का अध्ययन किया जाता है, वह भावात्मक प्रभाव से परिपूर्ण होती हैं। भौतिक विज्ञानों की भांति सामाजिक विज्ञानों में अनुसंधानकर्ता अपने को घटना के प्रभाव से वंचित नहीं कर सकता। भौतिक विज्ञानों की विषय वस्तु, भौतिक पदार्थ है। इन पदार्थों का अध्ययन, अनुसंधानकर्ता के हृदय में कोई प्रभाव उत्पन्न नहीं करता। लेकिन सामाजिक शोध में, मनुष्य की संस्कृति, सभ्यता, व्यवहार अथवा प्रवृत्ति का अध्ययन किया जाता है, जिसे शीघ्र ही अनुसंधानकर्ता इन से प्रभावित हो जाता है। इसके फलस्वरुप एक पक्षपातपूर्ण स्थिति पैदा हो जाती हैं। अनुसंधानकर्ता इस प्रकार अपने निष्कर्ष को तटस्थ नहीं कर पाता।

(2) विषय वस्तु की जटिलता :

सामाजिक शोध में, वस्तुनिष्ठता प्राप्त करने में द्वितीय कठिनाई अध्ययन की विषय-वस्तु के कारण पैदा होती है। सामाजिक जीवन अत्यंत जटिल और उलझा हुआ है। सामाजिक जीवन के अधिकांश तत्व अस्थाई हैं। उनमें सामाजिक परिवर्तन के साथ-साथ अंतर उत्पन्न होता है।

(3) एकरूपता का अभाव :

सामाजिक समस्याओं के बारे में एक उल्लेखनीय तथ्य यह है कि इनमें एकरूपता का नितांत अभाव है। एक प्रकार की समस्या का स्वरुप, विभिन्न काल में अलग-अलग होता है। लेकिन सामाजिक समस्याओं की प्रकृति बदलती रहती है। उनमें एकरूपता स्थिर नहीं रहती है। इसके अतिरिक्त विभिन्न क्षेत्रों की भौगोलिक परिस्थितियों की भिन्नता एकरूपता को उत्पन्न नहीं होने देती।

(4) विषय वस्तु का गुणात्मक रूप :

वस्तुनिष्ठता प्राप्ति की कठिनाई के गुणात्मक रूप के कारण भी उत्पन्न होती है। गुणात्मक रूप का तात्पर्य अमूर्तता से है, जिसे देख नहीं सकते, केवल अनुभव कर सकते हैं। सामाजिक विश्वास, मान्यताए व धारणाओं इत्यादि का रूप गुणात्मक होता है। अतएव इनके अध्ययन में भौतिक विज्ञानों की भांति निश्चित मापदंडों का प्रयोग करना कठिन है।

(5) सामान्य ज्ञान द्वारा उत्पन्न भ्रम :

सामाजिक शोध में प्राय: हम अपने सामान्य ज्ञान के आधार पर किसी घटना या समस्या के संबंध में अपना निर्णय निश्चित करते हैं। जो सिद्धांत हमारे सामान्य ज्ञान की कसौटी पर खरे नहीं उतरते उन्हें हम गलत मान लेते हैं। इसके विपरीत, अनेक गलत सिद्धांत जो हमारे सामान्य ज्ञान से मेल खाते हैं,

उन्हें हम सही मान लेते हैं। इस प्रकार भ्रम के फलस्वरुप अनेक गलत सिद्धांतों को सही मान लिया जाता है और अनेक सही सिद्धांतों को गलत मान लिया जाता है।

(6) अनुसंधानकर्ता का स्वार्थ :

पी.वी.यंग का मत है कि "सामाजिक शोध में वस्तुनिष्ठता प्राप्त करने की एक प्रमुख कठिनाई का कारण अनुसंधानकर्ता का निजी स्वार्थ भी है।" कभी-कभी शोध के परिणाम में अनुसंधानकर्ता का निजी स्वार्थ निहित होता है। अतएव वह उन्हीं तथ्यों को खोजता है, जो उसके स्वार्थ की पूर्ति में सहायक सिद्ध हों। ऐसे अवसर पर वह स्वीकृत सिद्धांतों को अस्वीकार कर उस सिद्धांत को अपनाता है जो कि उसके विचारों के अनुकूल हों।

(7) नैतिक प्रभाव :

शोधकर्ता के नैतिक आदर्शों का प्रभाव भी वस्तुनिष्ठता प्राप्त करने में कठिनाई पैदा करता है। **लुंडबर्ग** का मत है कि "सामाजिक शोध में अशुद्धता उत्पन्न होने का एक सामान्य कारण शोधकर्ता का नैतिक पक्षपात है।" शोधकर्ता तथ्यों के संकलन और विवेचन करने में नैतिक आदर्शों का भी ध्यान रखता है। इनका प्रभाव मनुष्य के हृदय में इतना दृढ़ होता है कि वह प्रायः इनके विपरीत किसी भी निष्ठता को स्वीकार नहीं करता। विज्ञान तभी तक शुद्ध है, जब तक कि वह शोधकर्ता के नैतिक प्रभाव से दूर हो। लेकिन शोधकर्ता का नैतिक प्रभाव, परिणाम को प्रभावित करता है तो इससे अशुद्धता पैदा हो जाती है। इसलिए शोधकर्ता के नैतिक प्रभाव वस्तुनिष्ठता प्राप्त करने में कठिनाई पैदा करता है।

(8) अनुसंधान की शीघ्रता :

अनेक अवसर पर शोध कार्य बड़ी शीघ्रता से संपन्न किया जाता है। इस शीघ्रता के कारण शोधकर्ता के अंदर प्रायः किसी भी निष्कर्ष को माल लेने की प्रवृत्ति होती है। इसी कारण सही परिणाम प्राप्त करना कठिन होता है। इसके अतिरिक्त सामाजिक शोध की विषय-वस्तु इतनी जटिल होती है जिसके लिए दीर्घकालीन अध्ययन और धैर्य भी आवश्यक होता है। किंतु शोध कार्य की शीघ्रता के फलस्वरुप पूर्णतया सही निष्कर्ष प्राप्त नहीं होते हैं। केवल आंशिक रूप से सत्य परिणामों को ही पूर्णरूपेण सत्य मान लिया जाता है। अतः शीघ्र संपन्न किए गए शोध में वस्तुनिष्ठता का निर्वाह नहीं होता है।

(9) सामाजिक दर्शन का प्रभाव :

भौतिक विज्ञान में शोधकर्ता का संबंध जड़ और अचेतन वस्तुओं से है। लेकिन सामाजिक शोध में मानव समाज का अध्ययन किया जाता है। अतएव समाज का वर्तमान दर्शन भी शोधकर्ता को प्रभावित करता है। इस कारण वस्तुनिष्ठता प्राप्त करने में बाधा पैदा होती है। इसके अतिरिक्त शोधकर्ता स्वयं भी उसी समाज का एक सदस्य होता है जिसे वह अध्ययन के लिए खोजता है। उसके अंदर भी मानव स्वभाव की कमियों का होना स्वाभाविक है। उसके विचार, संस्कार, धारणाएं इत्यादि समाज के पर्यावरण द्वारा पहले से निश्चित रहती है। अतएव अपने पूर्व विचार, संस्कार व धारणाओं के अनुकूल, शोध के परिणामों के टालने का प्रयत्न करता है जिससे शोधकर्ता कि तटस्थता समाप्त हो जाती है और वह अपने शोध में वस्तुनिष्ठता का निर्वाह कर पाता है।

(10) निष्पक्ष निष्कर्ष की प्राप्ति :

शोधकर्ता को अपने अध्ययन के पश्चात ऐसे निष्कर्षों को वस्तुतः प्राप्त करना चाहिए जो वास्तविकता तथा प्रमाणिकता पर आधारित हो। जनसाधारण इन निष्कर्षों को तभी स्वीकार कर सकता है जब यह पक्षपात और स्वार्थपरता से रहित होंगे। अतः शोधकर्ता को पूरी तरह तटस्थ रहना चाहिए।

(11) मौलिक तथ्यों पर प्रभाव :

शोधकर्ता का लक्ष्य निहित घटनाओं में मौलिक तत्वों का वर्णन करना है। यह मौलिक तथ्य अपने सजातीय तथ्यों का प्रतिनिधि होता है। अगर ऐसा नहीं होगा तो शोध सार्वभौमिक सत्य का आधार नहीं बन सकता। यदि वह अपनी ओर से अध्ययन में थोड़ा सा भी अपना निर्णय जोड़ता है तो तथ्यों की मौलिकता समाप्त हो जाती है। इसलिए तथ्यों को वास्तविक दशाओं में दर्शाने के लिए वस्तुनिष्ठता अत्यंत आवश्यक है।

सामाजिक शोध में वस्तुनिष्ठता का महत्व (Importance's of Objectivity in Social Research):

सामाजिक शोध और वस्तुनिष्ठता का संबंध बड़ा गहरा है। वस्तुनिष्ठता के बिना शोध को वैज्ञानिक रूप नहीं दिया जा सकता। उदाहरण के लिए यदि किसी घटना विशेष का अध्ययन किया जाए, तो वस्तुनिष्ठता के अभाव में विभिन्न व्यक्ति उससे विभिन्न प्रकार के परिणाम निकालेंगे। ऐसी स्थिति में शोधकर्ता के पक्षपात के कारण वास्तविक तथ्यों पर प्रकाश नहीं पड़ता। अतः किसी एक घटना या समस्या के अध्ययन को वैज्ञानिक रूप देने के लिए वस्तुनिष्ठता का होना आवश्यक है। यदि सामाजिक शोध में वस्तुनिष्ठता है तो विभिन्न शोधकर्ताओं को किसी एक घटना के अध्ययन से एक ही प्रकार के निष्कर्ष प्राप्त होंगे। सामाजिक शोध में वस्तुनिष्ठता के महत्व को निम्न तथ्यों द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है-

(1) सत्यापन शीलता के लिए :

सत्यापन शीलता की दृष्टि से वस्तुनिष्ठता का होना आवश्यक है। वस्तुनिष्ठता शोध के प्रत्येक स्तर के लिए आवश्यक है। उदाहरण के लिए यदि अध्ययन विषय-वस्तु का संग्रह वैषयिक है लेकिन उसका वर्गीकरण और विश्लेषण वस्तुनिष्ठ नहीं है, तो एक ही घटना से विभिन्न लोग अलग-अलग निष्कर्ष निकालेंगे। इसलिए शोध के प्रत्येक स्तर पर वस्तुनिष्ठता का होना नितांत आवश्यक है। इसके अभाव में विषय-वस्तु का सत्यापन अत्यंत जटिल हो जाता है।

(2) सामाजिक शोध को वैज्ञानिक स्थिति प्रदान करने के लिए :

भौतिक विज्ञानों में वस्तुनिष्ठता का अभाव, शोध के परिणाम को उतना विकृत नहीं करता जितना कि समाज विज्ञान में। इसका मुख्य कारण है कि भौतिक विज्ञानों की विषय-वस्तु जड़ है, यह विषय-वस्तु न तो शोधकर्ता को प्रभावित करती है, और ना ही शोधकर्ता के व्यक्तिगत विचार, भावनाएं, मान्यताएं इत्यादि इस विषय वस्तु के विवेचन को प्रभावित करती हैं। लेकिन सामाजिक शोध के क्षेत्र में यह बात लागू नहीं। अतः वस्तुनिष्ठता को बनाए रखना आवश्यक होता है।

(3) अनुभवजन्य ज्ञान को प्राप्त करने के लिए :

सामाजिक घटनाओं के अध्ययन के लिए अनुभवजन्य ज्ञान आवश्यक है। यह अनुभवजन्य ज्ञान तभी संभव है जब कि शोधकर्ता का दृष्टिकोण वस्तुनिष्ठ हो।

(4) अभिमति (Bias) को दूर करने के लिए :

सामाजिक घटनाएं प्रायः अमूर्त और जटिल होती हैं। इनका भावात्मक प्रभाव शोधकर्ता के मस्तिष्क के कुछ निश्चित धारणाओं को अंकित कर, उनकी निष्पक्षता को विकृत कर देता है। इस प्रकार शोधकर्ता का पूर्वाग्रह वास्तविक परिणाम को पाने में बाधा उत्पन्न करती है। शोधकर्ता अपने निजी स्वार्थ, विचार अथवा रूचि के अनुरूप शोध के परिणाम को ढ़ालता है इसलिए भौतिक विज्ञान की अपेक्षा सामाजिक विज्ञानों में वस्तुनिष्ठता अधिक आवश्यक है।

(5) वैज्ञानिक पद्धति के सफल प्रयोग के लिए :

सामाजिक शोध में वैज्ञानिक पद्धति के सफल उपयोग के लिए वस्तुनिष्ठता आवश्यक है। वस्तुनिष्ठता के बिना वैज्ञानिक पद्धति का उपयोग कठिन है। वस्तुनिष्ठता वैज्ञानिक पद्धति की प्रथम अनिवार्यता है। वस्तुतः वैज्ञानिक पद्धति और वस्तुनिष्ठता एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।

किसी भी विज्ञान की प्रथम व मूलभूत आवश्यकता 'यथार्थता' है और इस दृष्टि से यथार्थता की प्राप्ति विज्ञान का अंतिम लक्ष्य है। इस लक्ष्य की प्राप्ति तभी संभव है जबकि हम तथ्यों का अध्ययन व विश्लेषण उसी रूप में करें जैसा कि वह वास्तव में है और उनका अध्ययन व विश्लेषण अपने किए मनमाने तौर पर ना हो। वास्तव में अध्ययन व विश्लेषण का आधार सत्यता हो। इस प्रकार विज्ञान और वैज्ञानिक अध्ययन की महत्वपूर्ण व आवश्यक मान्यता है कि हम अध्ययन किए जाने वाली घटना से संबंधित तथ्यों एवं अंतर्संबंध को उसी क्रम और उसी रूप में खोज निकाले जैसा कि वह वास्तव में है। सच तो यह है कि जैसा है, उसी क्रम व रूप में एक घटना विशेष का अध्ययन वैषयिक अध्ययन कहलाता है। वैषयिक अध्ययन ही वैज्ञानिक अध्ययन है। वैषयिकता के अभाव में किसी भी अध्ययन को वैज्ञानिक नहीं कहा जा सकता। इस दृष्टि से सर्वप्रथम वैषयिकता की धारणा को स्पष्ट तौर पर समझना होगा।

1.3.4. सारांश (Summary)

सामाजिक विज्ञान में शोध, समाज के विभिन्न तत्व जैसे की सामाजिक संरचना, सामाजिक प्रकार्य, सामाजिक तथ्य, सामाजिक संघर्ष, सामाजिक सहयोग, सामाजिक समूह, सामाजिक प्रक्रियाएं, संस्कृति एवं वे समस्त तथ्य जो मानव जीवन से जुड़े हुए हैं, आदि का विश्लेषण एवं वर्णन होता है। वर्तमान में न केवल प्राकृतिक विज्ञान के क्षेत्र में बल्कि सामाजिक विज्ञान के क्षेत्र में भी निरंतर नए-नए शोध कार्य हो रहे हैं जो कि मानव समाज में होने वाले परिवर्तनों को समझने की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण नजर आते हैं। सामाजिक विज्ञान में शोध की प्रक्रिया भी विज्ञान की तरह ही होती हैं। किसी भी घटना का कार्य-कारण, घटित घटना के पीछे के तथ्य, परिणाम इत्यादि को जानने हेतु चाहे विज्ञान हो अथवा सामाजिक विज्ञान, शोध प्रक्रिया का स्वरूप एक सा ही होता है। मूलभूत अंतर केवल विषय-क्षेत्र का रहता है। वास्तव में, सामाजिक घटना, विशिष्ट सामाजिक व्यवहार के किसी भी पहलू के अध्ययन

सामाजिक शोध के अंतर्गत रखने के पक्ष में हैं तथा इस नाते अर्थशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, सामाजिक इतिहास, सामाजिक मानवशास्त्र, अपराधशास्त्र, तथा समाज कार्य में किए जाने वाले शोधों को भी हम सामाजिक शोध के अंतर्गत ही रख सकते हैं। सामाजिक घटनाओं की प्रकृति असाधारण होती है इसलिए अनेक विद्वानों का मत है कि सामाजिक घटनाओं के अध्ययन में वैज्ञानिक प्रक्रिया का उपयोग नहीं किया जा सकता है।

यदपि सामाजिक घटनाओं की संरचना अमूर्त होती है परंतु इसके अतिरिक्त वैज्ञानिक प्रक्रिया से पूर्वाग्रह रहित अध्ययन संभव हो सकता है। वैज्ञानिक अध्ययनों की प्रथम शर्त यथार्थता है। यथार्थ अध्ययन के लिए वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण अपनाना आवश्यक है। प्राकृतिक विज्ञानों में वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण अपनाना सरल होता है। इसलिए उनमें प्राय: सब कहीं वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण ही अपनाया जाता है। इसके विपरीत सामाजिक अध्ययनों में वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण अपनाना अपेक्षाकृत कठिन होता है। इसका मुख्य कारण सामाजिक घटनाओं की जटिल प्रकृति है। सामाजिक घटनाओं के अध्ययन में अध्ययनकर्ता स्वयं भी उसी समूह अथवा समाज का अंग होता है, जिसका अध्यन करना होता है। सामाजिक घटनाओं में समानता एवं सार्वभौमिकता का भी अभाव होता है। इस कारण भी उनके अध्ययन में वस्तुनिष्ठता को बनाए रखना कठिन होता है। किसी भी विज्ञान की प्रथम व मूलभूत आवश्यकता 'यथार्थता' है और इस दृष्टि से यथार्थता की प्राप्ति विज्ञान का अंतिम लक्ष्य है। इस लक्ष्य की प्राप्ति तभी संभव है जबकि हम तथ्यों का अध्ययन व विश्लेषण उसी रूप में करें जैसा कि वह वास्तव में है और उनका अध्ययन व विश्लेषण अपने किए मनमाने तौर पर ना हो।

1.3.5. बोध प्रश्न (Perception Questions)

प्रश्न 1 : सामाजिक विज्ञान में शोध से आप क्या समझते है ?

प्रश्न 2 : सामाजिक घटनाओं में वैज्ञानिक प्रक्रिया से आप क्या समझते है?

प्रश्न 3 : समाजशास्त्र के वैज्ञानिक प्रक्रिया के मुख्य आधार विस्तृत रूप में स्पष्ट करें।

प्रश्न 4 : सामाजिक शोध की आधारभूत मान्यताएं क्या है ? सामाजिक अध्ययन में वस्तुनिष्ठता की आवश्यकता को स्पष्ट कीजिए।

प्रश्न 5 : सामाजिक शोध में वस्तुनिष्ठता को प्राप्त करने में क्या-क्या कठिनाइयाँ है प्रकाश डालिए?

1.3.6. संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ (References and Useful Texts)

- आहूजा, राम. (2004). *सामाजिक अनुसंधान*. जयपुर : रावत पब्लिकेशन.
- गोस्वामी, सुरेन्द्र. (2012). *सामाजिक सर्वेक्षण एवं अनुसंधान*. नई दिल्ली : रावत प्रकाशन.
- पाण्डेय, गणेश., एवं पाण्डेय, अरुणा. (2009). *शोध प्रविधि*. नई दिल्ली : राधा पब्लिकेशन.
- मुखर्जी, रामकृष्ण. (1979). *सोशियोलॉजी ऑफ इंडियन सोशियोलॉजी*. मुंबई : एलाइड पब्लिकेशन.
- यादव, आर.जी. (2014). *सामाजिक अनुसन्धान पद्धतियां*. नई दिल्ली : ओरिएंट ब्लैकस्वान.
- वोहरा, वंदना. (2009). *रिसर्च मैथ्डोलाजी*. नई दिल्ली : ओमेगा पब्लिकेशन.

इकाई-4 : शोध एवं शोधार्थी की नैतिकता और शोधार्थी के गुण
Ethics of Researchers and Research and Quality of Scholar

इकाई की रूपरेखा

1.4.0. उद्देश्य
1.4.1. प्रस्तावना
1.4.2. शोध की नैतिकता
1.4.3. शोधार्थी की नैतिकता
1.4.4. शोधार्थी के महत्वपूर्ण गुण
1.4.5. सारांश
1.4.6. बोध प्रश्न
1.4.7. संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

1.4.0. उद्देश्य (Purpose)

इस इकाई के अध्ययन पश्चात् आप-

- किसी भी प्रकार के किए जाने वाले शोध की अपनी एक मर्यादित नैतिकता क्या होनी चाहिए को समझ सकेंगे।
- शोध के अतिरिक्त एक व्यक्ति जो स्वयं शोधकर्ता या शोधार्थी है उसकी अपनी शोध के प्रति क्या नैतिकता होनी चाहिए आप समझ सकेंगे।
- शोधार्थी की शोध के प्रति अपनी नैतिकता के साथ ही एक शोधकर्ता के कुछ शोध के दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण गुण होने चाहिए जिसे आप समझ पाएँगे।

1.4.1. प्रस्तावना (Introduction)

शोध एक महत्वपूर्ण कार्य होता है। जिसमें शोध और शोधार्थी दोनों की अपनी नैतिकता को लेकर दायित्व होता है। शोध की प्रक्रिया की अपनी एक नैतिकता होती है। जिन नैतिकताओं का निर्माण नियमों के रूप में मनुष्य ही बनता है। एक आदर्श शोध हेतु कुछ मानदंड शोध कार्य के साथ जुड़ी होती है जिसके पालन की अपेक्षा शोधार्थी से ही किया जाता है। आवश्यक है की शोध कार्य उन बनाए आदर्शो पर होना चाहिए ताकि एक सफल खोज का परिणाम प्राप्त हो और समाज को उससे लाभ मिले। उसी प्रकार से शोधार्थी की शोध के प्रति एक नैतिकता होती है ताकि किसी प्रकार के शोध और प्रक्रिया में छल, चोरी, हानि, सम्मान को ठेस पहुंचाकर किसी खोज के परिणाम को ना प्रस्तुत किया जाए।

1.4.2. शोध की नैतिकता (Ethics of Research)

शोध कार्य किसी समस्या को खोजने उसके निवारण हेतु किया जाता है। इसलिए शोध समाज को और उन्नत बनाने हेतु करने के उद्देश्य से महत्वपूर्ण होता है। शोध, समाज की कमियों उनके बीच की समस्याओं को जानने या अध्ययन हेतु महत्वपूर्ण हिस्सा है। आज समाज के विकास के लिए अतिआवश्यक पहलु है कि उस समाज का अध्ययन अथवा शोध किया जाए। तभी कही जाकर, किसी समाज के समानान्तर विकास हेतु हम एक सार्थक योजनाओं का निर्माण कर सकते है। ऐसे में आवश्यक है कि शोध, चाहे वह विज्ञान से जुड़े विभिन्न क्षेत्रों से जुड़ा हो अथवा सामाजिक विज्ञान से, उसकी अपनी एक नैतिकता अथवा आदर्श प्रक्रियाओं के तहत होना समाज को बेहतर परिणाम देने हेतु सार्थक शोध की श्रेणी में रखा जाता है। वर्तमान में तमाम शोध कार्यों में शोध की नैतिकताओं को नजरअंदाज कर परिणाम प्राप्त करना एक अकादमिक समस्या के रूप में लगातार देखा जा रहा है। आज उच्च शोध तो किए जा रहे हैं किंतु कही ना कही उन शोध प्रक्रियाओं में शोध की नैतिकताओं की कमी पाई जाती है। ऐसे में यह आवश्यक है की शोध क्या है? शोध क्यों किया जाता है? और शोध की नैतिकता के कौन कौन से मुख्य बिंदु है जिनका पालन करना शोध और समाज दोनों के दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण और आवश्यक हैं। शोध की नैतिकता के मुख्य बिंदु निम्न हैं :

(A) शोध द्वारा हानि ना हो : किसी भी शोध, खासकर सामाजिक विज्ञान के शोध में यह नैतिकता रखी जाती है कि अध्ययन से किसी भी पशु, मनुष्य और पर्यावरण को हानि नहीं हो। मनुष्य के हानि से तात्पर्य है कि अध्ययन के दौरान किसी व्यक्तिगत रूप से मनुष्य, समूह, समुदाय के संस्कृति को लेकर ठेस ना पहुंचे। अध्ययन में यह सावधानी रखनी चाहिए कि किसी समुदाय के सांस्कृतिक, धार्मिक भावना को ठेस पहुँचाने वाले कार्यों से बचा जाए।

(B) शोध समाज के लिए लाभप्रद हो : किसी शोध का उद्देश्य और नैतिकता यही है कि शोध समाज के लिए और उसके विकास के लिए लाभप्रद साबित हो। किसी शोध का उद्देश्य अप्रत्यक्ष रूप से समाज के लिए लाभ देना ही होता है। ऐसे में सदैव शोध का स्वरूप और कार्य ऐसा होना चाहिए कि प्राप्त परिणाम नैतिकता पर आधारित हो और शोध बंद किताब ना होकर समाज के लिए किसी ना किसी तरह से लाभ देने वाला साबित हो।

(C) पूर्व शोध की कटाक्ष/ कमियों से बचना : किसी भी क्षेत्र में किए जाने वाले आगामी शोध के लिए सहायता, पूर्व में किए गए शोध से काफी मदद मिलती है। ऐसे में जिस क्षेत्र में शोध किया जाना है पूर्व शोध कार्य में कमियां निकलना नैतिकता पर प्रश्न चिन्ह खड़ा होता है। हो सकता है कि पूर्व के शोध हेतु पर्याप्त साधन और निर्देशन सहित संसाधनों की कमी रह जाने से कुछ कमिया रह गई हो इससे यह साबित नहीं होता कि पूर्व का शोध आगामी शोध हेतु सहायतार्थ ना हो। शोध की नैतिकता है कि ऐसे शोध की कमियों को निकालने के बजाय उससे कैसे लाभ लिया जा सकता है इस बात पर ध्यानाकर्ष होना चाहिए।

1.4.3. शोधार्थी की नैतिकता (Ethics of Researchers)

एक शोधार्थी को अपने व्यक्तित्व में नैतिक गुणों का समावेश करना चाहिए। शोध मूल्यों की सम्पूर्ण गुणवत्ता शोधार्थी के व्यवहार, रूचि, परिश्रम एवं जीवन-मूल्यों पर निर्भर करता है। शोध प्रक्रिया के दर्शन को तीन प्रमुख अंगों में वर्गीकृत किया जाता है- एपिस्टमोलाजी, मेटाफिजिक्स, और एथिक्स। शोध में नैतिकता का तात्पर्य सौन्दर्यबोध से है जिसके अंतर्गत शोधार्थी उन सभी मानदंडों का परिपालन करता है जो किसी शोध को शुद्धता, मानवीयता एवं विशिष्टता जैसे गुणों से युक्त करता है। एक शोधार्थी को शोध के लिए निम्नलिखित नैतिक पहलुओं पर विचार करना चाहिए।

वैज्ञानिक पद्धति : वर्तमान समय में सामाजिक घटनाओं एवं व्यवहारों के वास्तविक ज्ञान आर्जित करने के लिए वैज्ञानिक पद्धति का उपयोग अतिआवश्यक हो गया है। अतः शोधार्थी को वैज्ञानिक पद्धति के द्वारा जाँच या परिक्षण करना चाहिए।

समस्या समाधान : शोधार्थी को शोध समस्या समाधान के कार्य सभी तथ्यों के निर्धारण और अपनी योग्यता से करनी चाहिए।

ईमानदारी और विश्वसनीयता : शोध ईमानदारीपूर्ण और विश्वसनीय प्रक्रिया है।

मानवीयता गुण : शोध एक सतत एवं स्वाभाविक प्रक्रिया है। शोध मानवीयता गुणों से परिपूर्ण होता है तथा दीर्ध अतीत के मानवीय अनुभवों का परिणाम है।

शोधार्थी में निम्नलिखित त्रुटियाँ शोध ग्रंथ के नैतिक मूल्य पर प्रश्न चिन्ह लगा देती है- पूर्वाग्रह और पक्षपात, भ्रान्तियाँ, काल्पनिक अवधारणाए, प्रदूषित तथ्य, निकृष्ट प्रकार के औचित्यकरण।

1.4.4. शोधार्थी के महत्वपूर्ण गुण (Important Quality of Scholar)

शोध सरल कार्य नहीं है जिसे प्रत्येक व्यक्ति सफलतापूर्वक कर सके। एक शोधकर्ता को यथार्थता की स्थिति तक पहुंचने के लिए विशेष योग्यता तथा ज्ञान की आवश्यकता होती है। शोध कार्य हेतु सिर्फ कुछ पुस्तकीय ज्ञान का ही होना काफी नहीं माना जा सकता है। इसके लिए शोधकर्ता में कई बाहरी और आंतरिक गुणों का होना बहुत जरूरी माना जाता है। इसका कारण यह है कि शोध कार्य सामाजिक घटनाओं से जुड़ा हुआ होता है और सामाजिक घटनाएं अमूर्त, परिवर्तनशील, व्यक्ति प्रधान एवं मुश्किल होती हैं। अतः शोध कार्य से जुड़ा अध्ययन नैसर्गिक अथवा वास्तविक घटनाओं की तुलना में कहीं अधिक मुश्किल होता है। घटनाओं के अध्ययन का तात्पर्य वास्तव में मानव के द्वारा मानव के ही विषय में अध्ययन है। इससे यह पता चलता है कि जिस समस्या या विषय के संदर्भ में शोधकर्ता शोध करता है उस समस्या या विषय का स्वयं एक हिस्सा होता है। इसलिए शोधकर्ता को पूर्ण रूप से शोध कार्य के लिए योग्य और प्रशिक्षित होना चाहिए, तभी वह अपने शोध कार्य में सफलता हासिल कर सकता है। उसमें वे सभी गुण होने चाहिए जो किसी शोध विशेष के लिए आवश्यक होते हैं। शोधकर्ता के व्यक्तित्व में कुछ स्वभाविक लक्षण विद्यमान होते हैं और कुछ लक्षणों को वह धीरे-धीरे परिश्रम तथा अभ्यास के द्वारा प्राप्त करता है। स्वाभाविक गुणों का अर्थ बुद्धि तथा स्वभाव संबंधी उन गुणों से है, जो

मनुष्य को ऐसे कार्य करने की प्रेरणा तथा योग्यता प्रदान करते हैं। एक योग्य सफल शोधकर्ता में निम्नलिखित गुणों का होना आवश्यक है :

(1) शोधार्थी के व्यक्तिगत गुण (Personal Quality of Scholar)

सामाजिक शोध एक शिक्षा संबंधी कार्य है, इसलिए इसका कोई भी संबंध शोधकर्ता की शारीरिक विशेषताओं से नहीं होता है। यह विश्वास अनेक लोगों का है पर यह गलत है । शोध कार्य की सफलता में शारीरिक गुणों का भी अपना महत्व होता है, जैसा कि निम्नलिखित विवेचना से स्पष्ट होगा-

(A) मृदुभाषी होना :

सफल शोध के लिए शोधकर्ता को वाकपटुता में चतुर होना चाहिए एवं उसकी वाणी में उत्तरदाताओं को अपनी ओर आकर्षित करने की क्षमता होनी चाहिए। शोधकर्ता के उचित एवं सही व्यवहार से ही उत्तरदाता उसके संपर्क में आएंगे। इस महत्वपूर्ण कार्य के लिए उसे किसी भी प्रकार का भेदभावपूर्ण व्यवहार किसी के साथ भी नहीं करना चाहिए। इसके साथ ही महत्वपूर्ण बात यह है कि शोधकर्ता को स्वयं अपने अध्ययन क्षेत्र में जाकर उत्तरदाताओं से अपनी वार्ता करते समय अपने उद्देश्य को स्पष्ट करना चाहिए। इस प्रकार व्यवहार कुशल होना एक सफल शोधकर्ता के लिए आवश्यक है।

(B)आकर्षक व्यक्तित्व :

किसी के ऊपर एक स्वाभाविक प्रभाव लोगों पर आकर्षक व्यक्तित्व का पड़ता है। हंसमुख चेहरा, अच्छी आदतें, तथा आकर्षक व्यवहार प्रतिमान रखने वाला व्यक्ति किसी भी सूचनादाता से और अविश्वसनीय तथ्य प्राप्त करने में सफल हो सकता है। साफ-सुथरी भाषा के प्रयोग से लोगों पर प्रभाव पड़ता है और इसका पूरा-पूरा फायदा मिलता है। जितना ही अधिक व्यक्तित्व आकर्षक होगा उतनी ही अधिक सत्य, ठोस तथा महत्वपूर्ण सूचनाएं सुगमता से एकत्रित की जा सकती है। शोध कार्य की सफलता के लिए यह आवश्यक गुण है।

(C) सहनशीलता :

अच्छे शोधकर्ता के अंतर्गत इस गुण का होना जरूरी है। अपने शोध कार्य के मध्य शोधकर्ता को कई प्रकार के मुश्किलों का सामना करना पड़ता है। शोध कार्य के वक्त कई सूचनादाता शोधकर्ता के साथ बुरा व्यवहार करते हैं, उसे कई तरह की टीका-टिप्पणियां सुनाते हैं एवं स्पष्ट भाषा में किसी भी प्रकार का सहयोग ना देने की हट कर बैठते हैं। अतः शोधार्थी या शोधकर्ता के अंदर इन व्यवहारों को सहन करने की शक्ति होनी आवश्यक है।

(D) अच्छा स्वास्थ्य :

एक शोधकर्ता के शारीरिक गुणों के अंतर्गत अच्छे स्वास्थ्य का सदैव बने रहना अत्यंत जरूरी माना जाता है। शोधकर्ता को अपने शोध कार्य के वक्त या शोध कार्य से संबंधित अनेक कामों के लिए लगातार भागदौड़, कठिन परिश्रम इत्यादि की जरूरत बनी रहती है जिसके लिए अच्छे स्वास्थ्य का बना रहना अत्यंत आवश्यक है। अच्छे स्वास्थ्य के कारण शोधकर्ता हर परिस्थिति में तथ्य एकत्रित करने में सक्षम होता है एवं साथ ही साथ उचित तथ्य भी एकत्रित कर सकता है।

(E) अध्यवसायी :

अच्छे शोधकर्ता को अध्यवसायी अर्थात साधनाशील होना चाहिए। उसके अंदर किसी भी स्थिति में ना हारने का गुण होना चाहिए। शोध कार्य के दौरान अनगिनत ऊंची-नीची परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है। इस बीच कई बार निराशाजनक तथा स्वाभाविक दुर्घटनाएं भी घटती हैं। इन सब के मध्य शोधकर्ता को अपना साधनशील या अध्यवसाय उसे राह दिखा कर आगे ले जाती है। शोध कार्य के दौरान शोधकर्ता को एक ही सूचनादाता के पास कई बार जाना पड़ता है फिर भी सूचनादाता मिल नहीं पाता है, वह व्यक्तिगत काम में व्यस्त होने के कारण सवालों का उत्तर देने हेतु समय नहीं निकाल पाता है। अनेक बार सूचनादाता समय देने के पश्चात भी सवालों के उत्तर को किसी प्रकार से समाप्त करके शोधकर्ता को टालने का प्रयास करते हैं। इन सब स्थितियों से बचने के लिए शोधकर्ता को फोन, आदि करके सूचनादाता से निश्चित समय लेना चाहिए साथ ही जवाब पाने के लिए धैर्य को बनाए रखना चाहिए।

(2) शोधार्थी के बौद्धिक गुण (Intellectual Quality of Scholar):

शारीरिक व निजी गुणों का होना एक अच्छे शोधकर्ता हेतु काफी नहीं माना जा सकता है। उसके अंदर कुछ बौद्धिक गुणों का भी होना जरूरी माना जाता है -

(A) अविलंब निर्णय क्षमता :

शोधकर्ता में अविलंब निर्णय लेने की योग्यता भी होनी चाहिए किसी भी क्षेत्र एवं किसी भी मामले में निर्णय लेने के लिए उसे दूसरे पर निर्भर नहीं रहना चाहिए बल्कि उसमें इतनी योग्यता होनी चाहिए कि वह स्वयं किसी भी मामले में निर्णय ले सकें। शोधकर्ता को अपने घर से दूर रहकर अपरिचित स्थितियों में काम करना पड़ता है, इसलिए यदि उन परिस्थितियों में आवश्यकतानुसार शीघ्र निर्णय लेने की योग्यता उसमें नहीं है तो वह सफल शोधकर्ता नहीं बन सकता है। भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में आवश्यकतानुसार लाभप्रद निर्णय लेने की योग्यता ही अपरिचित स्थितियों में सफलतापूर्वक बाधक समस्याओं का सामना करने में सहायक होती है।

(B) विचारों की स्पष्टता :

शोधकर्ता की विचारधारा विवेचनात्मक होनी चाहिए। उसमें यह योग्यता होनी चाहिए कि वह मुश्किल परिस्थितियों तथा पहलुओं को समझ कर उस संदर्भ में अपने मत को स्पष्ट रूप में प्रकट कर सके। इस योग्यता के बिना ना तो वह तथ्यों की विश्लेषणात्मक विवेचना स्पष्ट रूप में कर सकता है और ना ही रिपोर्ट में समस्या या उसके निवारण के संदर्भ में स्पष्ट विचारों को प्रकट कर सकता है। लोगों के समक्ष अपनी बातों को स्पष्ट रूप से रखने की योग्यता तथा उसे संबंधित व्यक्तियों को समझाने की क्षमता अध्ययन कार्य में बहुत सहायक होती है।

(C) बौद्धिक ईमानदारी :

सामाजिक प्रघटना के संबंध में स्पष्ट निर्णय देना बहुत कठिन है। इसका मुख्य कारण यह है कि शोधकर्ता जिन सामाजिक घटनाओं का अध्ययन करता है उसका वह खुद भी एक हिस्सा होता है। इसलिए उन घटनाओं के संबंध में जो विचार वह व्यक्त करता है, वे उसकी अपनी व्यक्तिगत भावनाओं,

आदर्शों तथा मुल्यों पर आधारित हो सकते हैं। इसलिए सामाजिक शोधकर्ता को चाहिए कि समाज का एक अभिन्न अंग होने के उपरांत भी समाज की वास्तविकता को सही रूप में प्रस्तुत करें। यह कार्य तभी संपन्न हो सकता है जब उनमें बौद्धिक योग्यता है। बौद्धिक ईमानदारी होने पर शोधकर्ता समाज में व्याप्त धारणाओं के खिलाफ भी घटना विशेष की वास्तविकताओं एवं अपनी व्यक्तिगत सलाह को प्रस्तुत कर सकता है।

(D) तर्कशक्ति की क्षमता :

शोधकर्ता को अपने अध्ययन के दौरान विभिन्न क्षेत्रों एवं विभिन्न प्रकार के लोगों से संपर्क स्थापित करना होता है। उत्तरदाता ना केवल समस्या के प्रति बल्कि स्वयं अध्ययनकर्ता के उद्देश्य एवं कार्य प्रणाली आदि पर विवादास्पद मत व्यक्त करते हैं। अध्ययन क्षेत्र में उत्तरदाता टेढ़े-मेढ़े प्रश्न पूछ बैठते हैं। अतः यह आवश्यक है कि शोधकर्ता में सभी की बातों को धैर्य से सुनकर तर्कपूर्ण वार्तालाप करने की क्षमता होनी चाहिए, ताकि वह अपनी कुशल तर्कशक्ति के आधार पर हर प्रकार के तथ्यों को उत्तरदाताओं से पूछ कर प्राप्त कर सके अथवा उत्तरदाताओं के विवादास्पद प्रश्नों का जवाब दे सके।

(E) रचनात्मक कल्पना शक्ति :

शोधकर्ता के लिए बुद्धिमान होना अत्यंत आवश्यक होता है। शोधकर्ता के लिए केवल बुद्धिमान होना ही काफी नहीं है बल्कि उससे बुद्धिमान होने के अतिरिक्त शोधकार्य में अंतर्निहित सारे संभावित परिस्थितियों के बारे में पहले से ही कल्पना कर लेने की ताकत होनी चाहिए। बिना कल्पना शक्ति के शोधकर्ता सामाजिक समस्या में ना तो दूरदर्शिता ला सकता है और ना ही अपने अध्ययन कार्य में अंतर्दृष्टि पैदा कर सकता है। दूरदर्शिता तथा अंतर्दृष्टि दोनों ही शोधकार्य में आवश्यक हैं। गहन तथा जटिल सामाजिक तथ्यों का विश्लेषण एवं निर्वचन रचनात्मक कल्पना शक्ति के द्वारा ही संभव है। इसलिए सफल शोधकर्ता हेतु रचनात्मक कल्पना शक्ति का होना अति आवश्यक है।

(F) गणितीय क्षमता :

सामाजिक शोधकर्ताओं को तत्वों के वर्गीकरण, सारणीयन, ग्राफ, विवेचन आदि बनाने में गणितीय प्रक्रियाओं का प्रयोग करना होता है। यदि विवेचन में त्रुटि रह जाती है तो निर्वचन तथा परिणाम संदेहास्पद एवं त्रुटिपूर्ण होते हैं। यह बहुत नीरस काम है, परंतु साथ ही इसके बिना अध्ययन कार्य में यथास्थान नहीं आ सकती। अतः शोधकर्ता में सांख्यिकीय अथवा गणितीय योग्यता होना एवं कंप्यूटर आदि से तरह-तरह के ग्राफ बनाने का गुण होना भी आवश्यक है। **स्पार एवं स्वेन्सन** ने परिशुद्धता कायम रखने को शोधकर्ता का आवश्यक गुण माना है। अतः शोधकर्ता के भीतर सांख्यिकीय योग्यता का होना जरूरी है।

(3) शोधार्थी के व्यवहार संबंधी गुण (Behavior Related Quality of Scholar):

मानसिक तथा शारीरिक योग्यताओं के साथ-साथ एक कामयाब शोधकर्ता के भीतर व्यवहार संबंधी योग्यताओं का भी होना बहुत आवश्यक माना जाता है, क्योंकि उसे वास्तविक व्यक्तियों से संपर्क स्थापित करना पड़ता है और उनमें विश्वास की भावना उत्पन्न करके अपने अध्ययन लक्ष्य के प्रति आकर्षित करके ही अध्ययन के विषय में तथ्यों को संचित करना पड़ता है। इस कार्य के लिए जरूरी है कि

शोधकर्ता का आचार व्यवहार प्रभावशाली हो। तभी संभव है जब उसमें व्यवहार विषयक निम्नांकित गुण हो -

(A) व्यवहार में अनुकूलनशीलता :

शोध के क्रम में एक शोधकर्ता को भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में अलग-अलग व्यक्तित्व के स्वामी से सामाजिक शोध के क्रम में संबंध कायम करना होता है। इसलिए केवल एक ही प्रकार का व्यवहार समान रूप से प्रभावित नहीं कर सकता है। जैसे गंभीर प्रकृति का व्यक्ति गंभीरता ही पसंद करेगा, तो हंसमुख व्यक्ति के लिए गंभीर व्यवहार अरुचिकर होगा। परंतु शोधकर्ता के लिए दोनों तरह के व्यक्तियों से सूचना अर्जित करना अति जरूरी होता है। अतः उसके व्यवहार में ऐसा लचीलापन होना चाहिए कि वह आवश्यकता और परिस्थिति के अनुसार विविध प्रकार के व्यक्ति के साथ अपना अनुकूलन सफलतापूर्वक कर सके। वही अपने व्यवहार के द्वारा उन्हें बहुत कुछ समान रूप से प्रभावित करके उनसे आंकड़ों का भंडारण कर सके। कर्ता को निरपेक्ष भाव से अपने कार्यों को अंजाम देना चाहिए। इसके लिए आवश्यक है कि एक शोधकर्ता शोध कार्य के दौरान अनुकूलन और प्रतिकूल दोनों प्रकार का विचार व्यक्त करने वाले लोगों के साथ समादर का व्यवहार रखें।

(B) परिमार्जित व्यवहार :

व्यवहार संबंधी गुणों में शिष्टाचार पूर्व व्यवहार का स्थान सर्वप्रथम है। यदि किसी भी व्यक्ति का व्यवहार शिष्ट तथा परिमार्जित है तो वह दूसरे लोगों को अनुसंधान के महत्व से अवगत करा सकता है और इस काम में सफल होने पर वह किसी भी प्रकार के तथ्यों को या सूचनाओं को उनसे प्राप्त कर सकता है। इसलिए परिस्थितियों को समझते हुए शोधकर्ता को परिमार्जित व्यवहार करने के लिए सदैव तत्पर रहना चाहिए। इस प्रकार एक उत्तम आचार-विचार और परिष्कृत व्यवहार का स्वामी ही सफल शोधकर्ता कहलाता है।

(C) संतुलित वार्तालाप :

सूचना प्राप्त करने के लिए शोधकर्ता को प्रत्येक सूचनादाता से, जो प्रश्नावली स्वयं नहीं भर सकता, बातचीत करनी पड़ती है। इस वार्तालाप के स्वरूप का भी प्रभाव सूचनादाता पर पड़ता है। अतः संतुलित वार्तालाप बहुत जरूरी है। शोधकर्ता अहंकारपूर्ण शब्द, असंतुलित भाषा में वार्तालाप, सूचनादाता के मन को ठेस पहुंचाने वाले शब्द इत्यादि शोधकार्य में बाधक होते हैं। अतः योग्य शोधकर्ता की भाषा अत्यंत संतुलित होनी चाहिए।

(D) सजगता :

सामाजिक शोध में व्यक्ति को अत्यंत सतर्क एवं सावधान रहने की आवश्यकता होती है। कई बार ऐसे व्यक्ति की सूचना पर इतना अधिक विश्वास कर लिया जाता है जो वास्तव में सब कुछ असत्य बताने के लिए ही शोधकर्ता के अभिन्न मित्र या सहयोगी होने का सफल प्रयत्न करते हैं। इस प्रकार के व्यक्तियों के प्रति यथासंभव सचेत रहना शोधकर्ता का एक जरूरी गुण होना चाहिए।

(E) आत्म नियंत्रण :

उत्तेजना, वास्तविकता से दूर ले जाने वाली प्रमुख शक्ति है। सामान्य स्थिति में ही व्यक्ति शांत मन से विचार करके उचित निर्णय ले सकता है। अतएव भाषा तथा वार्ता में संयम, चलने-फिरने, उठने-बैठने, खाने-पीने में संयम, लोगों से मिलने-जुलने तथा संपर्क स्थापित करने में संयम, सूचना प्राप्त करने में संयम, सूचनादाता पर विश्वास करने में संयम, अर्थात शारीरिक तथा मानसिक व्यवहार में आत्मानियंत्रण रखते हुए सामाजिक शिष्टता, संसारिक मर्यादा तथा बौद्धिक संबद्धता की सीमाओं के अंतर्गत शोधकर्ता को कार्य करना चाहिए।

(4) शोधार्थी के अध्ययन विषय से संबंधित गुण (Study Topic Related Quality of Scholar):

उपरोक्त गुणों के अतिरिक्त शोधकर्ता में अध्ययन विषय से संबंधित कुछ गुणों का होना भी आवश्यक है जो निम्न प्रकार है -

(A) विषय में रुचि :

शोधकर्ता को अपने कार्य में तभी सफलता मिल सकती है, जबकि अध्ययन विषय में उसका व्यक्तिगत रूप से गहरा लगाव हो। विषय में लगाव स्वाभाविक रूप से शोधकर्ता को अपने अध्ययन के प्रति लगन और अथक मेहनत करने की प्रेरणा देता है। जिससे समस्या के प्रति रुचि पैदा होती है और उसे समझने में भी सरलता रहती है। साथ ही साथ अध्ययन मुश्किल होने पर भी शोधकर्ता का उसमें गहरा आंतरिक लगाव होने के कारण उसे सफल करने हेतु अत्यधिक मेहनत मशक्कत करने की दिशा में प्रेरित होता है और हर समस्या का सामना साहस के साथ करता है।

(B) विषय में निपुणता :

शोधकर्ता का संबंधित विषय पर अधिकृत ज्ञान होना चाहिए। जिसके लिए संबंधित साहित्य का गहन अध्ययन करना चाहिए। शोध की कामयाबी के लिए यह जरूरी है कि जिस संबंध में समस्या का शोधकर्ता शोध कर रहा है उसके संबंध में उसे पूर्ण ज्ञान हो अन्यथा उसके द्वारा संकलित तथ्य अपूर्ण, दोष युक्त एवं अनुपयोगी हो सकते हैं। विषय के संबंध में ज्ञान प्राप्त करने के लिए उस विषय से संबंधित उपलब्ध जानकारी चाहे वह रिपोर्ट, पुस्तक, मैगजीन, सीडी, इंटरनेट या अन्य प्रकाशित साहित्य का गहन अध्ययन कर लेना शोधकर्ता के लिए आवश्यक है।

(C) समस्या पर एकाग्रता :

सामाजिक जीवन के विभिन्न पक्ष परस्पर इतने उलझे हुए हैं कि निर्धारित समस्या से विचलित हो जाने की संभावना बहुत रहती है। अतः शोधकर्ता का प्रतिक्षण निर्वाचित समस्या पर ध्यान केंद्रित रखना आवश्यक है। इस गुण के अभाव में अनावश्यक सामग्री एकत्रित हो जाती है जिसमें व्यर्थ समय और श्रम नष्ट होते हैं।

(5) शोधार्थी के अध्ययन-क्षेत्र में क्रिया संबंधी गुण (Field Activity Quality of Scholar):

शोध के मध्य वास्तविक रूप से अध्ययन स्थल पर जाकर तथ्य और सूचनाओं को संचित करना जरूरी होता है। इसलिए इससे जुड़े भिन्न-भिन्न व्यावहारिक क्रियाओं का ज्ञान जरूरी होता है। इस संदर्भ में शोधकर्ता के भीतर कुछ गुणों का होना जरूरी माना जाता है जो निम्न प्रकार हैं -

(A) अध्ययन-पद्धतियों, उपकरणों एवं विविध प्रविधियों का ज्ञान :

एक सफल शोधकर्ता के लिए यह आवश्यक है कि उसे इस बात का संपूर्ण ज्ञान हो कि किस प्रकार के शोध कार्य में किन-किन प्रक्रियाओं तथा उपकरणों से काम लेना जरूरी होता है। साथ ही शोधकर्ता को इस बात की भी जानकारी होनी चाहिए कि हरेक प्रक्रिया की कौन-कौन सी सीमाएं हैं और उस पद्धति के द्वारा काम करने से अध्ययन कार्य में किन-किन त्रुटियों के पनपने की संभावना बनी रहती है। इस प्रकार का ज्ञान शोधकर्ता को सबसे उपयुक्त पद्धतियों तथा यंत्रों का चुनाव करने में मदद करते हैं। उचित समय पर सटीक ज्ञान शोध कार्य में उत्पन्न होने वाले संभावित अशुद्धियों में सुधार के प्रति शोधकर्ता को सावधान भी रखता है।

(B) व्यक्ति, समय एवं स्थान का बोध :

शोधकर्ता को अपने शोध कार्य के समय विविध पेशों, विविध श्रेणी के लोगों से मिलना होता है। लेकिन इसके लिए अध्ययन स्थान में जाकर अनायास, बिना पूर्व निर्णय के किसी भी व्यक्ति से किसी भी वक्त कहीं पर भी मिलकर सूचना प्राप्त करने का प्रयत्न निष्फल अथवा संदेह युक्त परिणामों को उत्पन्न करने वाला होता है। साथ ही साथ शोधकर्ता को इस बात की भी साधारण जानकारी होनी चाहिए कि किस विषय से जुड़े वास्तविक तथ्यों को प्राप्त करना सुविधाजनक होगा, किस समय और किस जगह पर उनसे मिलने पर यह जवाब देने के लिए आसानी से तत्पर हो जाएंगे अर्थात सूचना प्राप्त करने के विषय में उनका सक्रिय व संपूर्ण सहयोग अर्जित किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, शोधकर्ता को इस बात की जानकारी होनी चाहिए कि गन्ने का व्यवसायी जहाज की खबर नहीं दे सकता, सार्वजनिक त्यौहार के वक्त जानकारी देने वालों से उनके पारिवारिक जीवन के बारे में जानना संभव नहीं है और थाने के पास खड़े चोरों से उनकी करतूतों के बारे में पूछना मूर्खतापूर्ण कार्य होगा। अतएव एक सफल शोधकर्ता का समय, मनुष्य और स्थान के बारे में पर्याप्त ज्ञान होना आवश्यक है।

(C) प्रशिक्षण एवं अनुभव :

किसी भी व्यक्ति को अध्ययन स्थान पर सूचना एकत्रित करने हेतु छोड़ देने मात्र से ही सही तथ्यों का संकलन असंभव है, जब तक कि उसे अध्ययन स्थान पर काम करने का एहसास ना हो या उसे इस काम के लिए वास्तविक रूप में प्रशिक्षित ना किया गया हो। समुचित प्रशिक्षण प्राप्त एक अनुभवी शोधकर्ता ही अध्ययन पद्धतियों, अध्ययन कार्य के समक्ष विद्यमान समस्याओं से भली-भांति वाकिफ शोधकर्ता ही शोध कार्य को व्यवस्थित तरीके से अंतिम लक्ष्य तक ले जाने में सफल रहते हैं। इस प्रकार शोधकर्ता के प्रमुख गुणों पर प्रकाश डालने से यह स्पष्ट होता है कि उसे निश्चित रूप से एकाधिक गुणों से संपन्न होना चाहिए। इसका यह आशय बिल्कुल नहीं है कि सभी शोधकर्ता सर्वगुण संपन्न होते हैं और जरूरी नहीं गुणों की अंतिम सूची तैयार की जा सकती है। लेकिन इतना जरूर कहा जा सकता है कि

शोधकार्य कोई साधारण काम नहीं है। शोधकार्य सामान्य लोगों के द्वारा संपन्न नहीं किया जा सकता। इस काम के लिए योग्य, अनुभवी, कुशल, साहसी एवं उत्साही लोगों की जरूरत होती है।

(D) संगठन शक्ति :

समस्त गुणों के साथ-साथ एक सफल व कुशल शोधकर्ता में संगठन शक्ति का होना भी बहुत जरूरी है। शोधकार्य कोई चलते-फिरते किए जाने लायक कार्य नहीं है। उसके लिए सुव्यवस्थित आयोजन तथा उत्तम संगठन की जरूरत होती है। शोधकर्ता के अंदर इन आवश्यकताओं की पूर्ति करने की क्षमता व योग्यता का होना जरूरी होता है। सामाजिक शोधों में अधिकांशतः एक से अधिक कार्यकर्ताओं की जरूरत होती है। अतः शोधकर्ता को इस बात की जानकारी होनी जरूरी है कि किस कार्यकर्ता को कौन सा कार्य सौंपने पर अच्छे परिणाम प्राप्त हो सकते हैं। वर्तमान प्रवृत्ति यह है कि सामाजिक शोध कार्य में अंतःवैज्ञानिक प्रक्रिया अपनाई जा रही है जिससे कि कई विद्वानों की विशेषज्ञता का सहयोग व मदद प्राप्त करना जरूरी होता है। अतः शोधकर्ता को इस बात की जानकारी होनी चाहिए कि किस प्रकार उनका अधिकाधिक मदद व सहयोग अपने लाभ के लिए अर्जित किया जा सकता है। उपरोक्त समस्त कार्य शोधकर्ता की सांगठनिक क्षमता पर आधारित होता है। अतएव एक उत्तम शोधकर्ता के अंदर सांगठनिक गुण आवश्यक माना जाता है।

(E) साधन संपन्नता :

आधुनिक शोध कार्य में धन के साथ-साथ अन्य कई तरह के साधनों, जैसे- कैमरा, टेप रिकॉर्डर, कंप्यूटर, मानचित्र आदि की भी जरूरत होती है। अतः शोधकर्ता हेतु इन साधनों की विद्यमानता ही काफी नहीं है वरन इनके प्रयोग का सही ढंग भी ज्ञात होना चाहिए। शोध के क्रम में कई बार शोधकर्ता को सूचनाएं हासिल करने हेतु सरकारी और गैर सरकारी विभागों के अधिकारियों से सहायता लेनी पड़ती है।

(6) शोधार्थी के वैज्ञानिक भावनायुक्त गुण (Scientific Sense Quality of Scholar):

शोधकार्य की सफलता हेतु शोधकर्ता के अंदर वैज्ञानिकता का होना काफी आवश्यक माना जाता है। यह वैज्ञानिक भावना निम्न गुणों पर निर्भर करती है –

(A) जिज्ञासा :

अज्ञात वस्तुओं और तथ्यों को जानने की प्रबल आकांक्षा ही जिज्ञासा है। किसी भी घटनाक्रम को देख कर उसके विषय में ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा शक्ति, सामाजिक संबंधों में कार्य-कारण नियम ढूंढने की तीव्र इच्छा व्यक्ति को शोध में प्रवृत्त होने की प्रेरणा देती है और इन्हें ही शोधकर्ता का प्रमुख गुण माना जाता है। नवीन तत्व की खोज में वही व्यक्ति समय लगाएगा, जिसे नवीनता से प्रेम होगा। नए ज्ञान की प्राप्ति, नई घटनाओं के नए कारणों की खोज शोधकर्ता के मन की जिज्ञासु प्रवृत्ति पर निर्भर होगी।

(B) वैषयिक दृष्टिकोण :

वैषयिक या वस्तुनिष्ठता वैज्ञानिक अनुसंधान का प्राण है। सामाजिक शोध में पूर्ण तटस्थ रहकर सूचना एकत्रित करना एवं उनसे निष्पक्ष निष्कर्ष निकाला अत्यंत कठिन कार्य है। व्यक्तियों, विचारों और मान्यताओं से निरंतर अलगाव रखते हुए सत्य बात को खोजना और यथार्थता को राग द्वेष रहित होकर प्रकट कर देना साधारण नहीं अत्यंत कठिन कार्य है। धर्म, प्रथा, विश्वास, जाति, राजनीति एवं अन्य

व्यक्तिगत और सांस्कृतिक धारणाएं शोधकर्ता को निष्पक्ष नहीं रहने देती। किंतु वास्तविक शोधकर्ता को प्रत्येक मूल्य पर अपनी निष्पक्षता को बनाए रखना ही होगा।

1.4.5. सारांश (Summary)

शोध और शोधार्थी दोनों की अपनी नैतिकता को लेकर दायित्व होता है। एक आदर्श शोध हेतु कुछ मानदंड शोध कार्य के साथ जुड़ी होती है जिसके पालन की अपेक्षा शोधार्थी से ही किया जाता है। आवश्यक है कि शोध कार्य उन बनाए आदर्शो पर होना चाहिए ताकि एक सफल खोज का परिणाम प्राप्त हो और समाज को उससे लाभ मिले। शोध कार्य किसी समस्या को खोजने उसके निवारण हेतु किया जाता है। इसलिए शोध समाज को और उन्नत बनाने हेतु करने के उद्देश्य से महत्वपूर्ण होता है। शोध, समाज की कमियों उनके बीच की समस्याओं को जानने या अध्ययन हेतु महत्वपूर्ण हिस्सा है। आज समाज के विकास के लिए अतिआवश्यक पहलु है कि उस समाज का अध्ययन अथवा शोध किया जाए। तभी कही जाकर, किसी समाज के समानान्तर विकास हेतु हम एक सार्थक योजनाओं का निर्माण कर सकते हैं। एक शोधार्थी को अपने व्यक्तित्व में नैतिक गुणों का समावेश करना चाहिए। शोध मूल्यों की सम्पूर्ण गुणवत्ता शोधार्थी के व्यवहार, रूचि, परिश्रम एवं जीवन-मूल्यों पर निर्भर करता है। एक शोधकर्ता को यथार्थता की स्थिति तक पहुंचने के लिए विशेष योग्यता तथा ज्ञान की आवश्यकता होती है। शोधकार्य हेतु सिर्फ कुछ पुस्तकीय ज्ञान का ही होना काफी नहीं माना जा सकता है। इसके लिए शोधकर्ता में कई बाहरी और आंतरिक गुणों का होना बहुत जरूरी माना जाता है। शोधार्थी में निम्नलिखित त्रुटियाँ शोध ग्रंथ के नैतिक मूल्य पर प्रश्न चिन्ह लगा देती है- पूर्वाग्रह और पक्षपात, भ्रान्तियाँ, काल्पनिक अवधारणाए, प्रदूषित तथ्य, निकृष्ट प्रकार के औचित्यकरण।

1.4.6. बोध प्रश्न (Perception Questions)

प्रश्न 1 : नैतिकता से आप क्या समझते है तथा एक सामाजिक शोध की नैतिकता क्या होनी चाहिए ?

प्रश्न 2 : वर्तमान समय में शोधार्थी की शोध के प्रति क्यों और क्या नैतिकता होनी चाहिए ?

प्रश्न 3 : शोध एवं शोधार्थी की नैतिकता को स्पष्ट करिए।

प्रश्न 4 : एक शोधार्थी के क्या-क्या आवश्यक गुण होने चाहिए, विस्तार से बताइए ?

प्रश्न 5 : शोधार्थी के किन्ही दो गुणों को विस्तार से बताइए।

1.4.7. संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ (References and Useful Texts)

- Guthrie, G. (2012). Basic Research Methods : An Entry to Social Science Research. Delhi : Sage Publication.
- Kothari, C. R. (2004). Research Methodology : Methodh & Techniques. New Delhi : New Age International Publishers.
- गोस्वामी, एस. (2012). *सामाजिक सर्वेक्षण एवं अनुसंधान*. नई दिल्ली : रावत प्रकाशन.
- पाण्डेय, जी., एवं पाण्डेय, ए. (2009). *शोध प्रविधि*. नई दिल्ली : राधा पब्लिकेशन.
- मुकर्जी, आर.एन. (2016). *सामाजिक शोध व सांखियकी*. दिल्ली : विवेक प्रकाशन.
- यादव, आर.जी. (2014). *सामाजिक अनुसन्धान पद्धतियां*. नई दिल्ली : ओरिएंट ब्लैकस्वान.
- शर्मा, एम. (2012). सामाजिक सर्वेक्षण तथा अनुसंधान. जयपुर : वाईकिंग बुक्स.

खंड 02- शोधप्रचना/अभिकल्प

इकाई 1वर्णनात्मक और विश्लेषणात्मक

इकाई की रूपरेखा

2.1.0. उद्देश्य

2.1.1. प्रस्तावना

2.1.2. वर्णनात्मक अनुसंधान

2.1.3. वर्णनात्मक अनुसंधान अभिकल्प

2.1.4. वर्णनात्मक अनुसंधान अभिकल्प की विशेषताएँ

2.1.5. वर्णनात्मक अनुसंधान अभिकल्प के चरण

2.1.6. विश्लेषणात्मक अनुसंधान

2.1.7. विश्लेषणात्मक अनुसंधान अभिकल्प

2.1.8. विश्लेषणात्मक अनुसंधान अभिकल्प की विशेषताएँ

2.1.9. सारांश

2.1.10. बोध प्रश्न

2.1.11. संदर्भ ग्रंथ सूची

2.1.0. उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य आपको निम्न बिन्दुओं में सक्षम बनाना है –

- वर्णनात्मक अनुसंधान अभिकल्प को समझ पाने में।
- वर्णनात्मक अनुसंधान अभिकल्प की विशेषताओं और प्रयुक्त चरणों को जान पाने में।
- विश्लेषणात्मक अनुसंधान अभिकल्प के बारे में समझ विकसित कर पाने में ।
- विश्लेषणात्मक अनुसंधान अभिकल्प की प्रमुख विशेषताओं के बारे में ज्ञान अर्जित कर पाने में।

2.1.1. प्रस्तावना

अनुसंधान अभिकल्प किसी भी अनुसंधान के लिए पूर्व में ही एक दिशा और क्षैतिज तैयार करता है। इस दिशा में वर्णनात्मक और विश्लेषणात्मक अनुसंधान अभिकल्प द्वारा किसी संबन्धित अनुसंधान के लिए रूपरेखा तैयार की जाती है तथा यह रूपरेखा शोधकर्ता द्वारा किए गए विस्तृत और व्यावहारिक व्याख्या हेतु सहायक रहती है।

2.1.2. वर्णनात्मक अनुसंधान

वर्णनात्मक अनुसंधान मे वर्तमान परिस्थिति का वर्णन किया जाता है। वर्णनात्मक अनुसंधान मे शोधकर्ता क्या है? प्रश्न का हल ढूढ़ने का प्रयास करता है। अर्थात् वर्णनात्मक अनुसंधान मे वर्णन हमेशा वर्तमान से संबंधित होता है।

जॉन डबल्यू. वेस्ट के अनुसार, वर्णनात्मक अनुसंधान को किसी घटना, संस्था, व्यक्ति अथवा दस्तावेज़ के सम्पूर्ण अथवा खंड के तौर पर खोज, पहचान और चयन की प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।

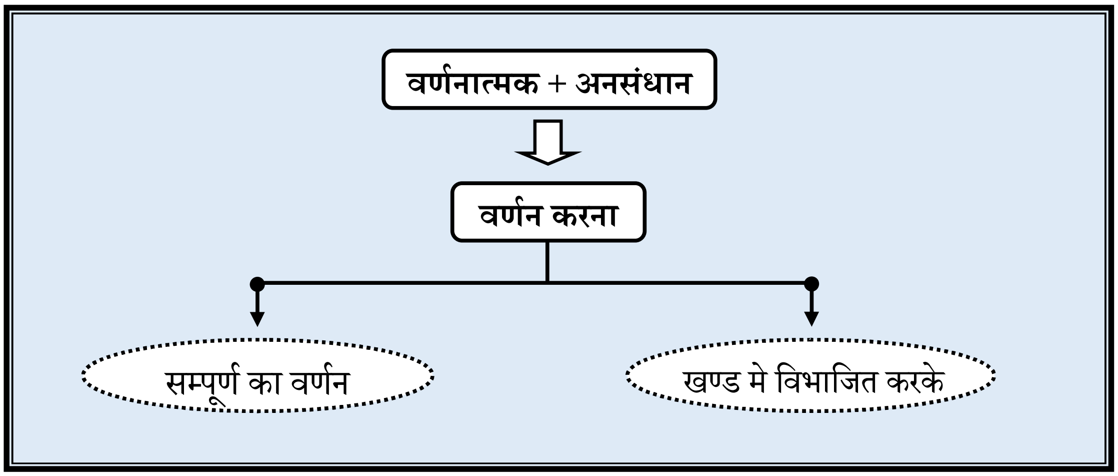

यहाँ इस बात पर ध्यान आकृष्ट करने की आवश्यकता है कि वर्णन (वह चाहे सम्पूर्ण के रूप में हो अथवा किसी खंड विशेष पर आधारित) वैज्ञानिक तरीके से अर्थात् क्रमबद्ध तरीके से किया जाता है तथा इस

प्रकार से वर्णन मे वस्तुनिष्ठता विद्यमान रहती है, ताकि शोधकर्ता अध्ययन अथवा समस्या के प्रति पक्षपातपूर्ण न हो जाए।

वर्णनात्मक अनुसंधान का उद्देश्य किसी अध्ययन विषय के बारे मे यथार्थ तथा तथ्य एकत्रित करके उन्हे एक विवरण के रूप मे प्रस्तुत करना होता है। सामाजिक जीवन से संबंधित अनेक विषय इस तरह के होते हैं जिनका अतीत मे कोई अध्ययन प्राप्त नही होता। ऐसी दशा मे यह आवश्यक होता है कि अध्ययन से संबंधित समूह, समुदाय अथवा विषय के बारे मे अधिक-अधिक सूचनाएँ एकत्रित करके उन्हे जनसामान्य के समक्ष प्रस्तुत की जाए, ऐसे अध्ययनों के लिए जो अनुसंधान किया जाता है उसे वर्णनात्मक अनुसंधान कहते है। साधारण शब्दों में वर्णानात्मक अनुसंधान को इस प्रकार समझा जा सकता है कि वर्णनात्मक अनुसंधान वह शोध है जिसका उद्देश्य समस्या के सम्बन्ध मे पूर्ण यथार्थ एवं विस्तृत तथ्यों की जानकारी प्राप्त करना है, इसमें वास्तविक तथ्यों का संकलन किया जाता है। और इन तथ्यों के आधार पर समस्या का वर्णनात्मक विवरण अथवा चित्रण प्रस्तुत किया जाता है।

- वर्णनात्मक अनुसंधान ''क्या है'' से संबंधित है न कि क्यो है।''
- समाजशास्त्रीय अध्ययन जैसे समुदाय की सामाजिक संरचना का वर्णनात्मक अध्ययन, पिछले पचास वर्षो मे सामाजिक परिवर्तन का अध्ययन अथवा किसी संगठन की कार्यशीलता का अध्ययन आदि वर्णनात्मक अनुसंधान के उदाहरण है।

2.1.3. वर्णनात्मक अनुसंधान अभिकल्प

वर्णनात्मक अनुसंधान अभिकल्प का मुख्य उद्देश्य विवरण प्रस्तुत करना होता है। इस प्रकार के अभिकल्प मे समस्या के सम्बन्ध मे पूर्ण यथार्थ तथा विस्तृत तथ्यों की सूचनाएँ एकत्रित की जाती है। वर्णनात्मक अनुसंधान मे समस्त की जनसंख्या के विभिन्न गुणों के विवरण एवं उनके व्यवहारों का विवरण प्रस्तुत करने हेतु व्यक्तियों के प्रतिनिधित्वपूर्ण निदर्शन का चयन किया जाता है तथा प्रश्नों की एक निश्चित पूर्व रचित श्रृंखला द्वारा इस चयनित निदर्शन से उत्तर के रूप मे आंकड़े प्राप्त किए जाते हैं।

वर्णनात्मक अनुसंधान का उद्देश्य अनुसंधान से संबंधित समस्या का ज्ञान प्राप्त करना होता है। विवरणात्मक या वर्णनात्मक अनुसंधान अभिकल्प वह अभिकल्प है जिससे समस्या के सम्बन्ध मे पूर्ण यथार्थ तथा विस्तृत तथ्यों की सूचनाएं इकट्ठा की जाती है। इससे सर्वे का प्रयोग करके वास्तविक तथ्यो का संकलन किया जाता है तथा इन तथ्यों के आधार पर समस्या का वर्णनात्मक विवरण प्रस्तुत किया जाता है। इस प्रकार की प्ररचना मे वर्तमान की स्थिती जैसी प्रदर्शित हो रही है वैसी ही प्रस्तुत की जाती है अर्थात् किसी व्यक्ति, तथ्य या मुद्दे की विशेषताओं का वर्णन किया जाता है तथा परिणाम की वैधता नही प्रदर्शित की जाती है क्योकि यह परिणाम के कारणो के बारे मे नही बताता है।

इस प्रकार के अनुसंधान अभिकल्प की प्रतिबद्धता पूर्ण सूचनाओं को संकलित करने में रहती है। यही कारण है कि इस अभिकल्प के निर्माण में शोधकर्ता को काफी सावधानी बरतने की आवश्यकता रहती है। उचित और सही तरीके से निर्मित किए गए वर्णनात्मक अनुसंधान अभिकल्प में पक्षपात की संभावनाएं कम से कम रहती हैं तथा तथ्यों के विश्वसनीयता के अवसर अधिक से अधिक रहते हैं। इस अनुसंधान अभिकप की मदद से समुदाय का वर्णन, इसके सदस्यों का आयु वितरण, राष्ट्रीय तथा धार्मिक पृष्ठभूमि, मानसिक व भौतिक स्वास्थ्य, शिक्षा का स्तर, सामुदायिक सुविधाएं, मकानों का स्वरूप अथवा प्रकार, पुस्तकालयों की उपलब्धता, व्यवहार के प्रमऊख प्रतिमान, मानवीय मूल्यों-मान्यताओं, सामाजिक संगठन की संरचना आदि प्रकार के विविध पक्षों के बारे में विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया जा सकता है।

वर्णनात्मक अनुसंधान अभिकल्प के मुख्य तीन उद्देश्य होते हैं –

1. इसमें किसी समूह, घटना अथवा परिस्थिति के लक्ष्यों का पूर्ण और विस्तृत वर्णन प्रस्तुत किया जाता है।
2. वर्णनात्मक अनुसंधान अभिकल्प में किसी चर की बारंबारता को निर्धारित किया जाता है।

3. इसमें चरों के मध्य के सह-संबंध का पता लगाया जाता है।

वर्णनात्मक अनुसंधान अभिकल्प में शोधकर्ता द्वारा जो भी जानकारी संकलित की जाती है, उसमें यह ध्यान रखा जाता है कि वर्णन हेतु कम से कम पक्षपात की संभावना रहे तथा अधिक से अधिक विश्वसनीयता की संभावना हो।

2.1.4. वर्णनात्मक अनुसंधान अभिकल्प

वर्णनात्मक अनुसंधान अभिकल्प की प्रमुख विशेषताओं को इस प्रकार से समझा जा सकता है –

क) वर्णनात्मक अनुसंधान अभिकल्प का मुख्य उद्देश्य किसी समस्या अथवा घटना के बारे में विस्तृत विवरण करना रहता है।

ख) समस्या जिस प्रकार की है, उसी प्रकार से वर्णनात्मक अनुसंधान अभिकल्प का सरोकार रहता है अर्थात् यह 'क्या है' का विस्तारित अध्ययन होता है।

ग) इसमें किसी भी समस्या अथवा घटना के लिए उत्तरदाई कारकों की तलाश तथ्ययुक्त वर्णन करने के प्रयोजन से किया जाता है।

घ) वर्णनात्मक अनुसंधान अभिकल्प में संबंधित विषय अथवा संदर्भ का अध्ययन कर ज्ञान की प्राप्ति स्वयं साध्य है।

ङ) वर्णनात्मक अनुसंधान अभिकल्प की प्रकृति कठोर प्रकार की होती है। इसकी निर्मिति के पश्चात किसी भी प्रकार का परिवर्तन नहीं किया जा सकता और इसकी निर्मिति भी पूर्व के अध्ययनों पर आधारित रहती है।

च) वर्णनात्मक अनुसंधान अभिकल्प में तथ्यों के संकलन हेतु संरचित प्रकार की तकनीकों का प्रयोग किया जाता है।

छ) निदर्शन के तौर पर वर्णनात्मक अनुसंधान अभिकल्प के अंतर्गत समान्यतः दैव निदर्शन का ही प्रयोग किया जाता है।

ज) वर्णनात्मक अनुसंधान अभिकल्प में सांख्यिकीय विश्लेषण हेतु एक पूर्व में ही नियोजित की गई रूपरेखा होती है।

झ) इसमें अनुसंधान के संचालन हेतु पूर्व में ही निर्णय लिए जाते हैं।

2.1.5. वर्णनात्मक अनुसंधान अभिकल्प के चरण

सैल्टिज, जहोदा तथा सहयोगियों ने वर्णनात्मक अनुसंधान अभिकल्प के निम्न चरणों को चिन्हित किया है –

1) उद्देश्यों का निरूपण

वर्णनात्मक अनुसंधान अभिकल्प में प्राथमिक चरण के रूप में अध्ययन हेतु उद्देश्यों को सुनिश्चित कर लिया जाता है। इन उद्देश्यों को निश्चित करने के लिए शोधकर्ता को पूर्व में किए गए अध्ययनों तथा अन्य संबंधित साहित्यों का अध्ययन करना पड़ता है, इसके पश्चात ही वह अनुसंधान हेतु आवश्यक

उद्देश्यों का निर्धारण कर पाता है। ये उद्देश्य शोधकर्ता को अध्ययन करने हेतु मार्ग प्रदान करते हैं तथा साथ ही ये उद्देश्य दिशा निर्देश के रूप में भी अध्ययन की गुणवत्ता को बनाए रखने में सहायक सिद्ध होते हैं।

2) तथ्य संकलन हेतु उपयुक प्रविधियों का चयन

उद्देश्यों के निर्धारण के उपरांत तथ्यों को संकलित करने हेतु उपयुक्त विधियों की रूपरेखा तैयार कर ली जाती है। ये विधियाँ अनुसंधान के उद्देश्यों के ही अनुरूप निर्मित की जाती हैं। जिस प्रकार के उद्देश्य होते हैं, उसी प्रकार तथ्य संकलम हेतु विधियों को भी तैयार किया जाता है। पूर्व में ही इन विधियों को निर्धारित कर लेने से अनुसंधान की नैतिकता भी बनी रहती है तथा शोधकर्ता को भी क्षेत्रीय अध्ययन के दौरान अनुसंधानिक समस्याओं का सामना नहीं करना पड़ता है। अनुसंधान की समस्या और समग्र की प्रकृति के आधार पर प्रस्तावित अध्ययन हेतु उपयुक्त प्रविधि का चयन करना आवश्यक होता है, कई बार अध्ययन हेतु एक से अधिक प्रविधियों का भी प्रयोग किया जाता है।

3) निदर्शन का चुनाव

इसके पश्चात तीसरे चरण के रूप में निदर्शन का चयन कर लिया जाता है। निदर्शन सम्पूर्ण जनसंख्या का प्रतिनिधित्व करने हेतु उपयुक्त इकाइयों को चयन करने का एक प्रारूप होता है, जो सम्पूर्ण का प्रतिनिधित्व करता है। इसके चयन में सावधानी बरतने की आवश्यकता रहती है, क्योंकि प्रतिनिधित्वपूर्ण इकाइयों का चयन न हो पाने से अनुसंधान की विश्वसनीयता खतरे में पड़ सकती है। इनका चयन वर्णनात्मक अनुसंधान अभिकल्प में इसलिए भी आवश्यक है, क्योंकि यदि चयनित इकाइयां सम्पूर्ण का प्रतिनिधित्व नहीं कर पाती हैं, तो इस प्रकार से सम्पूर्ण विवरण ही अप्रासंगिक व अवैध सिद्ध हो सकता है। निदर्शों का सही चयन ही वर्णनात्मक अनुसंधान अभिकल्प की वास्तविक अभिव्यक्ति को स्पष्ट कर सकता है। इसमें पूर्व ही उपयुक्त निदर्शन प्रविधि और निदर्शन के आकार के बारे में निर्णय कर लिया जाता है।

4) तथ्यों का विश्लेषण

निदर्शन के सफलतापूर्वक चयन के पश्चात वर्णनात्मक अनुसंधान अभिकल्प में अध्ययन क्षेत्र से तथ्यों का संकलन और उन प्राप्त तथ्यों का विश्लेषण किया जाता है। इसमें पूर्व में ही निर्धारित की गई विधियों व तकनीकों की सहायता से प्राथमिक क्षेत्र से आंकड़ों को इकट्ठा किया जाता है तथा जब शोधकर्ता को ये आंकड़ें प्राप्त होते हैं, तो ये आंकड़े बिखरे हुये रहते हैं। शोधकर्ता इन आंकड़ों को वर्गीकृत-सारणीकृत करता है। इस प्रकार की व्यवस्था के पश्चात आकड़ें व्यावहारिक स्थिति को स्पष्ट करने में सक्षम हो सकते हैं। कई बार आंकड़ों की विविधता और अधिकता की दशा में कोडिंग कर उन्हें सरल बनाने की भी आवश्यकता पड़ती है। इस प्रकार से शोधकर्ता विविध प्रक्रियाओं की सहायता से आंकड़ों को अर्थयुक्त तथ्यों के रूप में परिवर्तित करता है।

5) परिणामों की व्याख्या

तथ्यों के रूप में स्पष्ट हो जाने के बाद की दशा में प्राप्त परिणामों का विश्लेषण करना वर्णनात्मक अनुसंधान अभिकल्प का अंतिम चरण होता है। इसमें तथ्यों को निर्धारित की गई विश्लेषण विधि के आधार पर विश्लेषित किया जाता है तथा एक निष्कर्ष/उपसंहार को प्रतिपादित किया जाता है।

2.1.6. विश्लेषणात्मक अनुसंधान

वर्णनात्मक अनुसंधान से इतर विश्लेषणात्मक अनुसंधान में शोधकर्ता को सर्वप्रथम संबन्धित विषय अथवा घटना के बारे में जानकारी संकलित करनी होती है। इसके बाद जानकारी के आधार पर ही संकलित की गई सामाग्री का आलोचनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत किया जाता है। पूर्व में एकत्रित किए गए तथ्यों, आंकड़ों, विचारों आदि से परे अंतर्दृष्टि रखते हुये एक समाज-विश्लेषक का मानना होता है कि संचित तथ्यों व आंकड़ों के पीछे की कहानी कुछ और भी होती है, अतः उस छिपे हुये संदर्शों को तलाशने में एक विश्लेषक की अधिक रुचि रहती है। इसके पीछे तर्क यह है कि संग्रहीत तथ्यों व आंकड़ों को जब सामाग्री से संबंधित अन्य चरों के साथ जोड़ा जाता है, तो एक व्यापक और परिष्कृत अर्थ उभरकर सामने आता है तथा इस प्रस्तुत अर्थ की सहायता से एक वैध सामान्यीकरण प्रस्तुत करना सरल हो जाता है।

शोध क्रिया पर आधारित सामाजिक विश्लेषण की प्रक्रिया एक निरंतर क्रियाशील रहने वाली प्रक्रिया होती है। यह क्रमबद्ध विश्लेषण एक ऐसा बौद्धिक फ़लक तैयार करता है, जहां छाँटे हुये तथ्यों और आंकड़ों को व्यवस्थित रूप से रखा जाता है, ताकि शोधकर्ता उनकी मदद से एक वैध अनुमान तक पहुँच सके। तथ्य स्वयं अपनी अभिव्यक्ति प्रस्तुत कर सकने योग्य नहीं होते हैं, उन्हें शोधकर्ता द्वारा अभिव्यक्ति प्रकट करने हेतु योग्य बनाया जाता है। तथ्यों में अनेक जटिलताएँ होती हैं, वे समान और स्वतंत्र प्रकृति के नहीं होते हैं। एक सामाजिक विश्लेषक को तथ्यों को उनकी आत्मपरक प्रतिक्रियाओं के संयोजन के रूप में देखने की आवश्यकता होती है। सामाजिक विश्लेषण हेतु संकलित की गई सामाग्री की व्यापक और सटीक जानकारी की आवश्यकता होती है।

2.1.7. विश्लेषणात्मक अनुसंधान अभिकल्प

विश्लेषणात्मक अनुसंधान मे आंकड़ों का संग्रह करके उसका विश्लेषण किया जाता है तथा आंकड़ों से मिली सूचनाओं से वर्तमान की स्थिति का वर्णन करते है पर यह आंकड़े द्वितीयक प्रकार के होने चाहिए। अर्थात् किसी भी समस्या का समाधान वैज्ञानिक विधि द्वारा ढूँढना। इस प्रकार का अनुसंधान मुख्य रूप से व्यवसायिक एवं औद्योगिक प्रकार के अनुसंधान मे किया जाता है। विश्लेषणात्मक अनुसंधान परिणामों की प्रक्रिया पर बल देता न कि परिणामो की महत्ता देता है। इसमें आंकड़ों के विश्लेषण हेतु शोधकर्ता को सूक्ष्मदर्शी और अंतर्दृष्टिपूर्ण समझ रखने की आवश्यकता रहती है, बिना सूक्ष्मदर्शी और अंतर्दृष्टिपूर्ण ज्ञान के विश्लेषण निरर्थक रहता है।

इसमें सामग्री का विश्लेषण विशेषकर सामाजिक तथा व्यक्तिगत समस्याओं से सम्बद्ध रहती है तथा इन्हीं समस्याओं के कार्य कारण संबंधों की स्थापना का एक कार्य है। इन कारणात्मक घटकों की एक शृंखला होती है तथा इस सम्पूर्ण शृंखला को खोजना नितांत आवश्यक होता है। ये घटक सामान्यतः एक जटिल सामाजिक परिस्थिति को समझने तथा संबंधित समस्या के निवारण में उल्लेखनीय भूमिका का निर्वहन करते हैं।

2.1.8. विश्लेषणात्मक अनुसंधान अभिकल्प की विशेषताएँ

1. विश्लेषणात्मक अनुसंधान अभिकल्प में संकलित किए गए तथ्य अथवा आंकड़े को आलोचनात्मक तरीके से विश्लेषित किया जाता है।
2. इसमें संकलित किए गए तथ्यों के आधार पर हाल की स्थिति का वर्णन किया जाता है अर्थात् उन तथ्यों तथा संबंधित परिस्थितियों के आधार पर वर्तमान स्थिति के बारे में अनुमान लगाया जाता है।
3. जैसा कि हम सभी जानते हैं कि शोध में कुछ वैज्ञानिक प्रविधियाँ और तकनीक प्रयोग में लायी जाती हैं तथा यह अनुसंधान अभिकल्प भी इससे अछूता नहीं है। परंतु इसमें शोधकर्ता इन वैज्ञानिक नियमों के अनुपालन के साथ ही तथ्यों को अन्य चरों के साथ उनके व्यवहार को भी अवलोकित करते हैं, ताकि सही तरीके से विश्लेषण प्रस्तुत किया जा सके और एक स्पष्ट व सटीक निष्कर्ष तक पहुंचा जा सके।

2.1.9. सारांश

इस इकाई में वर्णनात्मक अनुसंधान के बारे में विवरण प्रस्तुत किया गया तथा बताया गया कि इसमें किसी भी घटना अथवा समस्या के बारे में विस्तृत विवरण प्रस्तुत क्या जाता है। साथ ही वर्णनात्मक अनुसंधान अभिकल्प के बारे में परिचयात्मक विवरण तथा इसकी प्रमुख विशेषताओं के बारे में भी वर्णन प्रस्तुत किया गया। शोध में वर्णनात्मक अनुसंधान अभिकल्प हेतु प्रयुक्त प्रमुख चरणों के बारे में भी संज्ञान प्रदान किया गया तथा संभवतः इन जानकारियों के आधार पर एक सामाजिक विद्यार्थी अपने शोध में वर्णनात्मक अनुसंधान अभिकल्प का प्रयोग कर पाने में सक्षम हो सकेगा। इसके अलावा इस इकाई में विश्लेषणात्मक अनुसंधान अभिकल्प के बारे में भी विवरण प्रस्तुत किया गया तथा साथ ही विश्लेषणात्मक अनुसंधान अभिकल्प की विशेषताओं पर भी प्रकाश डाला गया।

2.1.10. बोध प्रश्न

बोध प्रश्न 1: वर्णनात्मक अनुसंधान अभिकल्प के बारे में बताइये।

बोध प्रश्न 2: वर्णनात्मक अनुसंधान अभिकल्प की प्रमुख विशेषताएँ क्या हैं?

बोध प्रश्न 3: वर्णनात्मक अनुसंधान अभिकल्प के प्रमुख चरण क्या है?

बोध प्रश्न 4: विश्लेषणात्मक अनुसंधान अभिकल्प के बारे में विवरण प्रस्तुत कीजिये तथा साथ ही इसकी विशेषताओं पर भी प्रकाश डालिए।

2.1.11. संदर्भ ग्रंथ सूची

- मुकर्जी, पी. एन. (2000). *मैथडोलॉजी इन सोशल रिसर्च: डिलेमाज एण्ड पर्सपैक्टिव्स*. नई दिल्ली: सेज पब्लिकेशन्स.
- यंग, पी.वी. (1977). *साईन्टिफिक सोशल सर्वेस एण्ड रिसर्च प्रेन्टिस हाल*. नई दिल्ली: सेज पब्लिकेशन्स.
- यिन, आर. के. (1991). *केस स्टडी रिसर्च: डिजाइन एण्ड मैथड*. सेज पब्लिकेशन्स.
- करलिंगर, एफ. एन. (1964). *फाउण्डेशन ऑफ विहैवियरल रिसर्च*. न्यूयार्क: हाल्ट रिनेहार्ट एण्ड विन्सटन.
- एकॉफ आर. एल. (1953). *दि डिजाइन ऑफ सोशल रिसर्च*. शिकागो: यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागों प्रेस.
- सारन्ताकोस, एस. (1988). *सोशल रिसर्च*. लन्दन: मैकमिलन.
- ब्लैक, जे. ए. एवं चैम्पियन, डी. जे. (1976). *मैथेड्स एण्ड सोशल रिसर्च*, न्यूयार्क: जॉन विले.
- डाबी, जॉन टी. (1954). *एन इन्ट्रोडक्शन टू सोशल रिसर्च* (सम्पादित). लन्दन: द स्टेकवेल कम्पनी.

इकाई 2 अन्वेषणात्मक एवं आनुभविक

इकाई की रूपरेखा

2.2.0. उद्देश्य

2.2.1. प्रस्तावना

2.2.2. अन्वेषणात्मक अनुसंधान

2.2.3. अन्वेषणात्मक अनुसंधान अभिकल्प

2.2.4. अन्वेषणात्मक अनुसंधान अभिकल्प की विशेषताएँ

2.2.5. अन्वेषणात्मक अनुसंधान अभिकल्प के चरण

2.2.6. आनुभविक अनुसंधान

2.2.7. आनुभविक अनुसंधान अभिकल्प

2.2.8. आनुभविक अनुसंधान अभिकल्प के चरण

2.2.9. सारांश

2.2.10. बोध प्रश्न

2.2.11. संदर्भ ग्रंथ सूची

2.2.0. उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य आपको निम्न बिन्दुओं में सक्षम बनाना है –

- अन्वेषणात्मक अनुसंधान तथा अन्वेषणात्मक अनुसंधान अभिकल्प को समझ पाने में।
- अन्वेषणात्मक अनुसंधान अभिकल्प की विशेषताओं को जान पाने में।
- अन्वेषणात्मक अनुसंधान अभिकल्प के चरणों के बारे में ज्ञान प्राप्त कर सकने में।
- आनुभविक अनुसंधान अभिकल्प के बारे में समझ विकसित कर पाने में।
- आनुभविक अनुसंधान अभिकल्प के चरणों के बारे में ज्ञान अर्जित कर पाने में।

2.2.1. प्रस्तावना

किसी भी अनुसंधान अभिकल्प का प्रमुख आधारभूत पक्ष यह होता है कि अनुसंधान का निर्धारण इस प्रकार से किया जाय कि उसके आधार पर एक शोधकर्ता किसी तार्किक निष्कर्ष तक पहुँच सके। अन्वेषणात्मक तथा आनुभविक दोनों प्रकार के अनुसंधान अभिकल्प व्यावहारिक तथा प्राथमिक तलाश से संबंधित अनुसंधान अभिकल्प होते हैं तथा सामान्यतः इनसे संबंधित घटना अथवा समस्या के बारे में शोधकर्ता को अधिक जानकारी नहीं रहती है।

शोधकर्ता ही इनकी जानकारी को प्राप्त करने का प्रमुख साधन रहता है अर्थात् शोध कार्य हेतु उसे द्वितीयक आंकड़ों से सटीक और विस्तृत जानकारी नहीं प्राप्त हो पाती है।

2.2.2. अन्वेषणात्मक अनुसंधान

अन्वेषणात्मक अनुसंधान का सीधा और स्पष्ट अर्थ होता है अन्वेषण हेतु एक वैज्ञानिक उपकल्पना का निरूपण करना। इसमें शोधकर्ता द्वारा किसी भी समस्या को समझने के लिए निर्मित की जाने वाली उपकल्पना को निरूपित करने हेतु अनुसंधान किया जाता है। हालांकि इस अनुसंधान का प्रयोग शोधकर्ता द्वारा किसी भी घटना अथवा समस्या के बारे में जानकारी प्राप्त करने के प्रयोजन से किया जाता है, भले ही शोधकर्ता उस अध्ययन को बाद में पूर्ण करे। अर्थात् यह अनुसंधान दूसरे शोधकर्ताओं को इस क्षेत्र में शोध हेतु पृष्ठभूमि तैयार करने में सहायक होता है।

इसे एक उदाहरण की सहायता से सरलता से समझा जा सकता है। यदि कोई शोधकर्ता एच.आई.वी. संक्रमित रोगियों अथवा वेश्यालय की वेश्याओं के सामाजिक परस्पर व्यावहारिक पैटर्न पर अध्ययन कर रहा है, तो ऐसी दशा में वह अन्वेषणात्मक अनुसंधान करेगा। ऐसा इसलिए क्योंकि सामान्यतः उसे इन घटनाओं के बारे में बहुत कम अथवा बिल्कुल भी जानकारी नहीं है। शोधकर्ता उनसे बातें करेगा तथा इस अनुसंधान हेतु प्राथमिक रूपरेखा तैयार करेगा। यही कारण है कि अन्वेषणात्मक अनुसंधान को शोधकर्ता को अपनी शोध समस्या के बारे में जानकारी उपलब्ध करवाने वाले अनुसंधान के रूप में भी समझा जाता है। अन्वेषणात्मक अनुसंधान किसी शोधकर्ता के लिए एक सहायक के रूप में कार्य करता है तथा संबंधित विषय के बारे में उसकी समझ को निर्मित करता है।

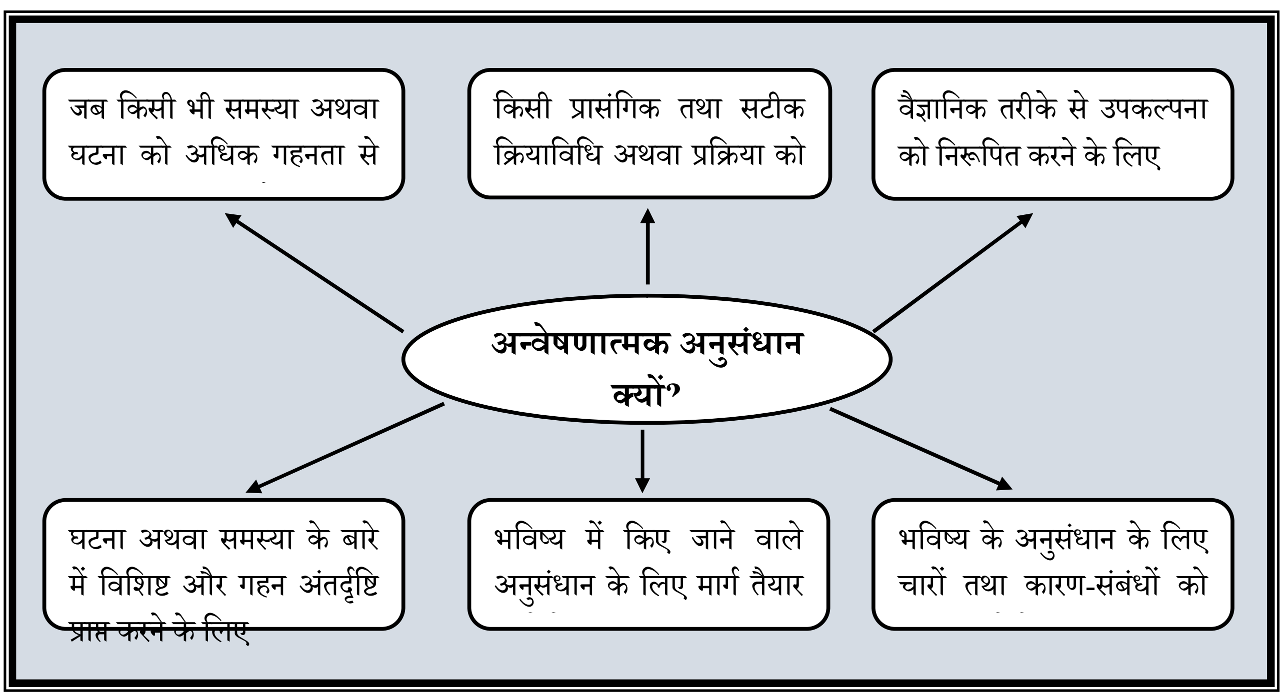

2.2.3. अन्वेषणात्मक अनुसंधान अभिकल्प

अन्वेषणात्मक अनुसंधान अभिकल्प वह प्रारूप है, जिसका उद्देश्य अज्ञात तथ्यों की खोज करना रहता है। अर्थात् यह तथ्यों के बारे में नवीन अंतर्दृष्टि प्राप्त करने से संबंधित है, ताकि वास्तविक समस्या का निर्धारण किया जा सके। किसी संरचनात्मक अध्ययन का आरंभ करने से पूर्व शोधकर्ता द्वारा किसी घटना से जुड़ी जनकरियाँ प्राप्त करने, संकल्पनाओं का स्पष्टीकरण प्रस्तुत करने, अग्रिम अनुसंधान के लिए आवश्यक प्राथमिकताओं को जानने अथवा महत्वपूर्ण समस्याओं के बारे में जानकारी प्राप्त करने आदि प्रकार के प्रयोजनों की पूर्ति हेतु अन्वेषणात्मक अनुसंधान अभिकल्प का निर्माण किया जाता है।

सेल्टिज के अनुसार,

"अधिक निश्चित अनुसंधान के लिए सम्बद्ध उपकल्पना के निरूपण में सहायक अनुभव प्राप्त करने के लिए अन्वेषणात्मक अनुसंधान आवश्यक है।"

रसेल के. शुट्ज़ ने अपनी पुस्तक *'इंवेस्टिगेटिंग द सोशल वर्ल्ड'* में बताया कि

"अन्वेषणात्मक अनुसंधान यह जानने का प्रयास करता है कि लोग किस प्रकार से एक-दूसरे के साथ अध्यानित वातावरण से संबंधित रहते हैं, एक-दूसरे की क्रिया को क्या अर्थ प्रदान करते हैं तथा कौन-कौन से विषय व तत्व उन्हें महत्वपूर्ण लगते हैं। इन सभी का जानने एक ही उद्देश्य होता है कि 'क्या हो रहा है?' तथा बिना किसी स्पष्ट छुट के उस सामाजिक घटना को गहनता से अन्वेषित करना।"

विलियम जिकमण्ड (1988: 73) ने अन्वेषणात्मक अनुसंधान के प्रमुख रूप से तीन उद्देश्य बताए हैं –

- नवीन तथ्यों अथवा विचारों को तलाशना
- घटना अथवा परिस्थिति का निदान करना
- विकल्पों को चिन्हित करना

अन्वेषणात्मक अनुसंधान अभिकल्प के निर्माण हेतु तीन विधियाँ आवश्यक मानी जाती हैं, जो इस प्रकार हैं –

1- अन्वेषणात्मक अनुसंधान अभिकल्प के निर्माण हेतु सर्वप्रथम सामाजिक विज्ञान अथवा अपने अध्ययन से संबंधित साहित्यों का पुनरीक्षण किया जाता है। साहित्यों का पुनरीक्षण करना अत्यान आवश्यक और लाभदायक रहता है तथा इसकी सहायता से अनुसंधान समस्या को को स्पष्ट तौर पर प्रस्तुत किया जा सकता है और साथ ही उपकल्पनाओं के निर्माण हेतु भी यह आवश्यक होता है। इस प्रकार से शोधकर्ता को अन्य विद्वानों द्वारा प्रतिपादित की गई अवधारणाओं और सिद्धांतों के बारे में जानकारी प्राप्त हो पाती है और उन्हें अपने अध्ययन क्षेत्र में क्रियान्वित करने हेतु अवसर भी प्राप्त हो जाता है।

2- इसके पश्चात समस्या से संबंधित विशेषज्ञों और अनुभवी व्यक्तियों का साक्षात्कार/सर्वेक्षण किया जाता है। विशेषज्ञ अथवा किसी अनुभवी व्यक्ति के सर्वेक्षण करने से शोधकर्ता को

नवीन विचार और दृष्टि प्राप्त होती है और साथ ही विभिन्न प्रकार के चरों में पाये जाने वाले संबंधों के बारे में भी जानकारी मिल पाती है।

3- अन्वेषणात्मक अनुसंधान अभिकल्प के निर्माण में अंतिम और तीसरी विधि के रूप में अंतर्दृष्टि-प्रेरक उदाहरणों का विश्लेषण कार्य सम्पन्न किया जाता है। इसमें उपलब्ध सामाग्री का अवलोकनात्मक अध्ययन किया जाता है अथवा असंरचित प्रकार के साक्षातरक का प्रयोग कर जानकारी प्राप्त की जा सकती है। अथवा किसी अन्य उपयुक्त विधि की सहायता ली जा सकती है।

भारतीय संदर्भ में किए जाने वाले अधिकांशतः अनुसंधान, अन्वेषणात्मक अनुसंधान अभिकल्प का ही प्रयोग करते हैं। अधिकांश अनुसन्धानों का मूल लक्ष्य संबंधित क्षेत्र के नवीन तथ्यों को उजागर करना रहता है। अन्वेषणात्मक अनुसंधान अभिकल्प का निर्माण मूल रूप से उपकल्पना की निर्मिति हेतु आवश्यक रहता है। यह अभिकल्प अपनी प्रकृति में काफी लचीले स्वभाव का होता है, क्योंकि पर्याप्त जानकारी के अभाव में शोधकर्ता को सभी पक्षों का ज्ञान नहीं रहता है। धीरे-धीरे शोधकर्ता को संबंधित अध्ययन के बारे में जानकारी का पता चलता जाता है तथा वह उन जानकारियों को अपने अनुसंधान में जोड़ता जाता है।

अन्वेषणात्मक अनुसंधान प्राथमिक और द्वितीयक दोनों प्रकार के तथ्य स्रोतों पर निर्भर रहता है। प्राथमिक स्रोत के रूप में उत्तरदाता के साथ अनौपचारिक विचार-विमर्श, वैयक्तिक अध्ययन विधि तथा अन्य केन्द्रित समूह विचार विनिमय व गहन प्रकृति की विधियों का प्रयोग किया जाता है तथा द्वितीयक स्रोत में उपलब्ध साहित्यों की समीक्षा को सम्मिलित किया जाता है।

2.2.4. अन्वेषणात्मक अनुसंधान अभिकल्प की विशेषताएँ

यद्यपि उक्त वर्णित परिचयात्मक विवरण से अन्वेषणात्मक अनुसंधान अभिकल्प के बारे में जानकारी प्राप्त हो चुकी है, फिर भी इसकी विशेषताओं के बारे में ज्ञान अर्जित कर अन्वेषणात्मक अनुसंधान अभिकल्प से संबंधित समझ को और भी विकसित कर लेना उचित होगा। अन्वेषणात्मक अनुसंधान अभिकल्प की प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं –

1. अन्वेषणात्मक अनुसंधान अभिकल्प का उद्देश्य अज्ञात तथ्यों की तलाश करना है। यह ज्ञान में वृद्धि करने हेतु आवश्यक रहता है।
2. अन्वेषणात्मक अनुसंधान अभिकल्प ही एक ऐसा अनुसंधान अभिकल्प है, जिसमें उपकल्पना का निर्माण अनुसंधान के आरंभ में नहीं किया जाता है।
3. इसमें प्राथमिक तथ्यों को संकलित किया जाता है तथा उनके आधार पर ज्ञान अर्जित किया जाता है।
4. यह किसी भी अनुसंधान हेतु अग्रिम रूप से जानकारी संग्रहीत/प्राप्त करने से संबंधित अभिकल्प होता है।

5. अन्वेषणात्मक अनुसंधान अभिकल्प की प्रकृति लचीली प्रकार की होती है। शोधकर्ता को अधिक जानकारी न होने के कारण अनुसंधान के दौरान उसे समस्या अथवा घटना को जानने का अवसर प्राप्त होता है।
6. अन्वेषणात्मक अनुसंधान अभिकल्प में अध्ययन हेतु एक अथवा उससे अधिक समूहों को शामिल किया जा सकता है।
7. अन्वेषणात्मक अनुसंधान अभिकल्प में समान्यतः किसी नई घटना अथवा समस्या का अध्ययन किया जाता है।
8. निदर्शन की दृष्टि से अन्वेषणात्मक अनुसंधान अभिकल्प मुख्य रूप से असंभावित निदर्शन प्रणाली पर आधारित होती है।
9. अन्वेषणात्मक अनुसंधान अभिकल्प में सांख्यिकीय विश्लेषण हेतु कोई पूर्व योजना नहीं होती है।
10. अन्वेषणात्मक अनुसंधान अभिकल्प में तथ्यों को संकलित करने हेतु असंरचित तकनीकों का प्रयोग किया जाता है, क्योंकि शोधकर्ता को संबंधित समस्या/घटना के बारे में पर्याप्त जानकारी नहीं रहती है।
11. अन्वेषणात्मक अनुसंधान अभिकल्प में अनुसंधान के पूर्व किसी प्रकार के निर्णय नहीं लिए जा सकते हैं।

2.2.5. अन्वेषणात्मक अनुसंधान अभिकल्प के चरण

अन्वेषणात्मक अनुसंधान अभिकल्प में निम्न चरणों को अपनाया जाता है –

क) साहित्यों का सर्वेक्षण

अन्वेषणात्मक अनुसंधान अभिकल्प में सर्वप्रथम साहित्यों का सर्वेक्षण किया जाता है। हालांकि यह पहले भी बताया जा चुका है कि इस प्रकार के अभिकल्प का प्रयोग तब किया जाता है जब संबंधित क्षेत्र का अधिक ज्ञान न हो। परंतु सामाजिक शोध से संबंधित बहुत ही कम ऐसे क्षेत्र हैं, जो शोध आदि से अछूते बचे हों। अतः संबंधित क्षेत्र से जुड़े चरों व मुद्दों से संबंधित साहित्यों के बारे में अध्ययन कर शोधकर्ता उसके बारे में ज्ञान अर्जित करने का प्रयास करता है। साथ ही अनेक चरों व मुद्दों के बारे में जानकारी प्राप्त कर संबंधित क्षेत्र के बारे में गहन अंतर्दृष्टि प्राप्त करने का प्रयास भी करता है।

ख) अनुभव सर्वेक्षण

साहित्यों के अध्ययन के पश्चात शोधकर्ता अगले चरण के रूप में अनुभव सर्वेक्षण करता है। इसमें वह अध्ययन क्षेत्र में जाकर प्राथमिक रूप से जानकारी संकलित करता है तथा प्राप्त जानकारी के आधार पर अध्ययन क्षेत्र और प्रमुख चरों के बारे में समझ विकसित करता है। इसके अलावा वह अनुभव सर्वेक्षण की सहायता से ही शोध की दिशा और रूपरेखा को निर्मित कर पाता है। साथ ही इसके आधार पर ही शोधकर्ता द्वारा शोध की अग्रिम तैयारी क्रियान्वित की जाती है।

ग) उत्तरदातों का चयन

अन्वेषणात्मक अनुसंधान अभिकल्प में तीसरे चरण के रूप में उत्तरदाताओं का चयन किया जाता है। शोधकर्ता द्वारा किया गया अनुभव सर्वेक्षण उत्तरदाताओं के चयन हेतु लाभकारी सिद्ध होता है तथा इसी के आधार पर उत्तरदाताओं को चिन्हित किया जाता है। यह अत्यंत महत्वपूर्ण चरण होता है तथा सही उत्तरदाताओं के चयन द्वारा ही शोध को गुणवत्तापूर्ण तथा सही दिशा में ले जाया जा सकता है। अप्रासंगिक उत्तरदाताओं के चयन से शोध के त्रुटिपूर्ण होने की संभावना रहती है।

घ) प्रश्नों का निर्माण

उत्तरदाताओं के चयन के पश्चात यह आवश्यक होता है कि शोधकर्ता द्वारा उपयुक्त प्रश्नों की निर्मिति की जाय। सटीक व सीमित प्रश्नों की सहायता से शोधकर्ता संबंधित विषय पर जानकारी प्राप्त करता है। यदि प्रश्नों की निर्मिति सही तरीके से नहीं होती है, तो शोध की वैधानिकता पर प्रश्न चिन्ह लग सकता है।

ङ) तथ्यों का विश्लेषण

पर्याप्त वैज्ञानिक तरीके से तथ्यों के संकलन के पश्चात शोधकर्ता द्वारा उनका विश्लेषण किया जाता है और इसके पश्चात यदि आवश्यक हो तो शोधकर्ता द्वारा उपकल्पना निरूपित की जाती है।

2.2.6. आनुभविक अनुसंधान

आनुभविक अनुसंधान में प्रायः प्रणालियों व सिद्धांतों को उचित स्थान दिये बगैर, मात्र अनुभव अथवा प्रेक्षण को महत्व प्रदान किया जाता है। इस प्रकार के शोध में निष्कर्षों को प्रेक्षण अथवा प्रयोग द्वारा सत्यापित किया जाता है तथा इसी आधार पर पूर्व के तथ्यों की वर्तमान व्यहारिकता को भी जानने-समझने का प्रयत्न किया जाता है। आनुभविक अनुसंधान में अवलोकन द्वारा तथ्यों को प्राप्त करना अत्यंत आवश्यक होता है तथा इसी आधार पर उपकल्पना का निरूपण किया जाता है और साथ ही यह अनुसाधन के प्रयोगात्मक प्रारूप को तैयार करने में भी सहायक सिद्ध होती है। प्रयोग व अनुभव आधारित अध्ययनों में संकलित किए गए साक्ष्य प्रदत्त उपकल्पना के लिए एक सशक्त आधार प्रस्तुत करते हैं।

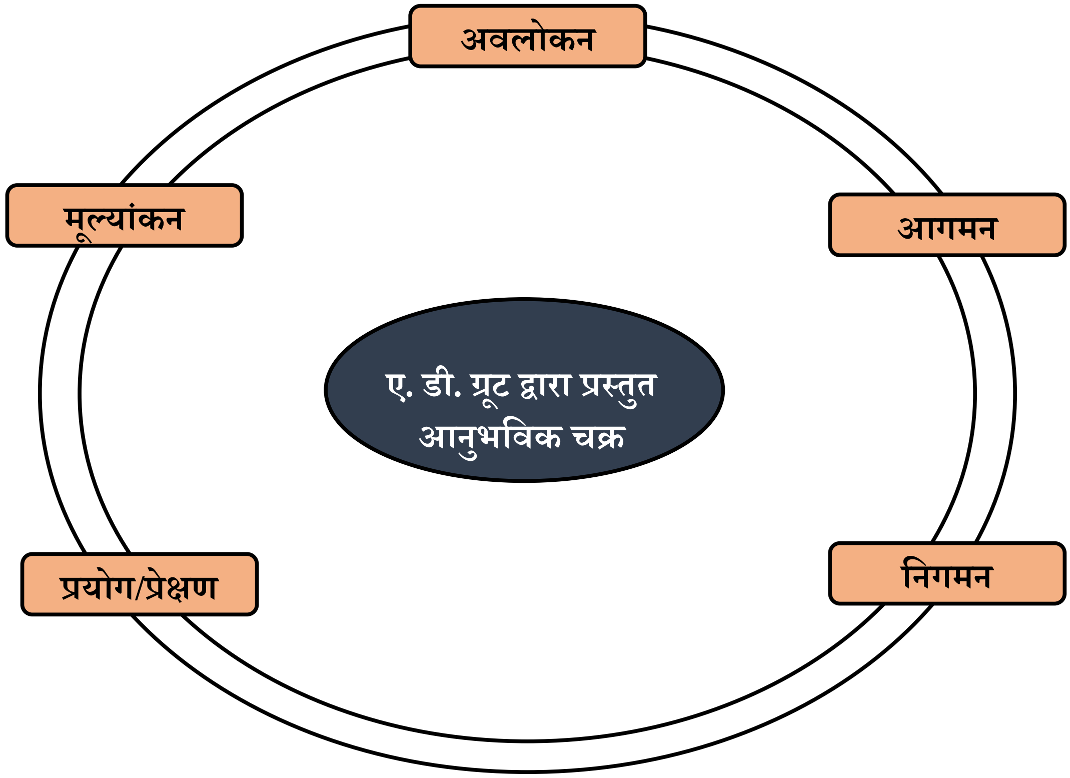

इस प्रकार के शोध में सर्वप्रथम अवलोकन की सहायता से घटना/अध्ययन क्षेत्र को जानने का प्रयास किया जाता है तथा संबंधित कार्य-कारणों के बारे में खोजबीन की जाती है। इसके पश्चात प्राप्त जानकारी के आधार पर आगमन विधि के अनुरूप उपकल्पना का निरूपण अथवा घटना के संबद्ध में एक सामान्यीकृत व्याख्या प्रस्तुत की जाती है। उपकल्पना की निर्मिति के पश्चात निगमन विधि के तौर पर अध्ययन क्षेत्र के अनुरूप उसकी जांच की जाती है। इस जांच/परीक्षण में उपकल्पना सही/गलत सिद्ध हो सकती है। इसके पश्चात हम सम्पूर्ण प्रक्रिया को ध्यान में रखा जाता है, जिसकी सहायता से उपकल्पना की जांच की जानी है तथा अध्ययन क्षेत्र से किन प्रविधियों व तकनीकों की सहायता से तथ्यों कों संकलित किया जाना है। तथ्यों के संकलन के पश्चात उनके मूल्यांकन और व्याख्या का चरण आता है। इसमें तथ्यों की व्याख्या की जाती है तथा किसी सिद्धांत अथवा सत्यापित तर्क को निरूपित किया जाता है। इस तर्कवाक्य की सहायता से वर्तमान घटना/समस्या की तार्किक व्याख्या प्रस्तुत की जा सकती है तथा साथ ही इस अनुसंधान की सहायता से एक वैज्ञानिक निष्कर्ष तक पहुँचने में मदद मिलती है।

2.2.7. आनुभविक अनुसंधान अभिकल्प

आनुभविक अनुसंधान अभिकल्प, जैसा कि पहले भी बताया जा चुका है, आनुभविक साक्ष्यों पर आधारित अनुसंधान अभिकल्प है। यह प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष अवलोकन अथवा अनुभव के साधनों व प्रविधियों की सहायता से ज्ञान अर्जित करने का प्रारूप है। आनुभविक साक्ष्यों को गुणात्मक अथवा गणनात्मक प्रकार से विश्लेषित किया जा सकता है। तथ्यों के विश्लेषण हेतु गुणात्मक अथवा

गणनात्मक किसी भी प्रकार के प्रश्नों अथवा प्रकृति का प्रयोग किया जा सकता है। यदा–कदा अनुसंधानकर्ता द्वारा दोनों प्रकारों का प्रयोग एक साथ भी किया जाता है। यहाँ यह ध्यान देने की आवश्यकता है कि गुणात्मक और गणनात्मक दोनों ही किसी भी अनुसंधान की प्रकृति को स्पष्ट करते हैं।

समान्यतः अनुसंधानकर्ता के पास कुछ तर्क अथवा सिद्धांत रहते हैं, जिनके इर्द-गिर्द वह अपने विषय के अनुरूप शोधकार्य करता है। उसी तर्क अथवा सिद्धांत के आधार पर अनुसंधानकर्ता उपकल्पना अथवा तर्कवाक्य तैयार करता है तथा इसी का परीक्षण वह अपने अनुसंधान के माध्यम से करता है। इस उपकल्पना अथवा अनुमान की सहायता से कुछ विशिष्ट घटनाओं अथवा समस्याओं के बारे में जानकारी प्राप्त की जाती है। इन उपकल्पनाओं की जांच हेतु कुछ उचित वैज्ञानिक प्रयोग/प्रेक्षण किए जाते हैं। परीक्षण से प्राप्त निष्कर्ष के आधार पर ही उपकल्पना सही अथवा गलत साबित होती है तथा कोई भी सिद्धांत पुष्ट अथवा अस्वीकृत होता है। किसी भी सिद्धांत की स्वीकृति अथवा अस्वीकृति हेतु आनुभविक शोध की भूमिका उल्लेखनीय रूप से आवश्यक रहती है। इस अभिकल्प की सहायता से ही सिद्धांत की निर्मिति, पुनर्निर्मिती तथा अस्वीकृति निर्धारित होती है। यह इनके वैधता के प्रति पूर्व में ही प्रारूप प्रस्तुत करने में जवाबदेही प्रस्तुत करता है।

2.2.8. आनुभविक अनुसंधान अभिकल्प के चरण

अनुसंधानकर्ता द्वारा आनुभविक अनुसंधान अभिकल्प के तहत निम्न वैज्ञानिक चरणों को अपनाया जाता है –

1) समस्या का चयन

सर्वप्रथम अनुसंधानकर्ता द्वारा शोध हेतु समस्या का चयन किया जाता है तथा इसी समस्या को वैज्ञानिक तरीके से अध्ययन करने हेतु शोधकार्य किया जाता है। वास्तव में शोधकर्ता का शोध विषय क्या है? शोध हेतु उपयुक्त समस्या/घटना क्या है? ज्ञान, तथ्यों तक पहुँच, समय, अथवा संसाधन से जुड़े अवरोध क्या है? इस चरण के आधार पर ही शोध की आधारशिला निर्धारित की जाती है। समस्या के निरूपण के आधार पर ही शोधकर्ता द्वारा अनुसंधान हेतु उद्देश्य तैयार किए जाते हैं और उसकी प्रासंगिकता की जांच भी की जाती है।

2) साहित्यों का सर्वेक्षण

समस्या के चयन के पश्चात साहित्यों का सर्वेक्षण किया जाता है तथा इसी आधार पर वैज्ञानिक अनुमान प्रस्तावित किया जाता है। संबंधित समस्या के प्रति प्रासंगिक साहित्य क्या हैं? किस सैद्धान्तिक अथवा अवधारणात्मक फ्रेमवर्क से इसका संबंध स्थापित किया जा सकता है? इस परिप्रेक्ष्य की क्या आलोचनाएँ हैं? अथवा शोध हेतु किस प्रक्रिया को अपनाया जाएगा? शोधकर्ता को संबंधित क्षेत्र के बारे में क्या जानकारी है? संबंधित समस्या का इतिहास क्या है? इन प्रश्नों के उत्तर की तलाश शोधकर्ता द्वारा इस चरण के तहत किया जाता है।

3) चरों की पहचान तथा उपकल्पना का निरूपण

इसके पश्चात अनुसंधानकर्ता द्वारा चरों की पहचान की जाती है तथा उपकल्पना निरूपित की जाती है। कौन से आश्रित चर हैं तथा कौन से स्वतंत्र चर हैं? क्या संबंधित अध्ययन में नियंत्रित चर हैं? चरों के बीच क्या संबंध है? संबंध है भी की नहीं? क्या उपकल्पना शोध हेतु उपयुक्त है? क्या उपकल्पना अर्थपूर्ण और प्रासंगिक है? चरों की उपस्थिति और उपकल्पना की व्यावहारिकता के आधार पर ही शोध की अगली दिशा को निर्धारित किया जाता है तथा इससे शोध को एक प्रत्यक्ष अंतर्दृष्टि भी प्राप्त होती है।

4) प्रविधियों व तकनीकों का चयन

इसके पश्चात कुछ तकनीकों व प्रविधियों की पहचान की जाती हैं। इनकी सहायता से उपकल्पना की जांच की जाती है कि उपकल्पना सत्य है अथवा असत्य। अवलोकन हेतु किस तकनीक का प्रयोग किया जाएगा? वह तकनीक दृश्य होगी अथवा श्रब्य। क्या वैध तकनीक/विधि उपलब्ध हैं अथवा शोधकर्ता द्वारा स्वयं ही उन्हें विकसित करना होगा?

5) तथ्यों का संकलन

तकनीकों की पहचान तथा निर्धारण के पश्चात तथ्यों के संकलन का चरण आता है। किसी भी सामाजिक अनुसंधान का प्रयोजन किसी समस्या/घटना विशेष के बारे में पर्याप्त जानकारी प्राप्त कर एक वैज्ञानिक निष्कर्ष प्रस्तुत करना होता है। यह निष्कर्ष कोई आधारहीन निष्कर्ष नहीं होता है, अपितु यह वास्तविक तथ्यों पर प्रास्ताविक यथार्थ होता है तथा यह संबंधित समस्या/घटना को समझने हेतु एक वैज्ञानिक मंच को निर्मित करता है। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि किसी भी सामाजिक अनुसंधान की बुनियादी शर्त अध्ययन विषय से संबंधित वास्तविक तथ्यों का संकलन करना होता है।

6) तथ्यों का विश्लेषण

वैज्ञानिक तकनीकों व प्रविधियों द्वारा तथ्यों को संकलित कर लेने के पश्चात उनका विश्लेषण करना आवश्यक होता है। तथ्यों के विश्लेषण हेतु किस आलोचनात्मक अथवा सांख्यिकीय प्रक्रिया का प्रयोग किया जाएगा? तकनीकों की सहायता से किस प्रकार उपकल्पना को स्वीकृत अथवा अस्वीकृत सिद्ध किया जाएगा? चरों के मध्य किस प्रकार के संबंध हैं तथा ये संबंध कितने महत्वपूर्ण हैं? आदि प्रकार के प्रश्नों के उत्तर तथ्यों के विश्लेषण से सरलता से पता लगाए जा सकते हैं।

7) तथ्यों की व्याख्या

सबसे अंतिम चरण के रूप में तथ्यों की व्याख्या, निष्कर्ष तथा सुझाव प्रस्तुत किए जाते हैं। क्या उपकल्पना स्वीकृत/अस्वीकृत हुई? क्या प्राप्त निष्कर्ष सकारात्मक/नकारात्मक हैं? निष्कर्ष किसी सिद्धांत अथवा तर्क को स्थापित, संशोधित अथवा अस्वीकृत करते हैं। शोधकर्ता द्वारा प्रस्तुत किए गए सुझाव क्या हैं? तथा क्या वे सुझाव किसी पॉलिसी अथवा प्रोग्राम के लिए लाभदायक है? शोधकर्ता द्वारा संबंधित क्षेत्र पर किए जाने वाले भविष्य के शोध हेतु क्या सुझाव दिये गए हैं?

2.2.9. सारांश

इस इकाई के माध्यम से अन्वेषणात्मक व आनुभविक अनुसंधान अभिकल्प के बारे में जानकारी प्रस्तुत की गई। अन्वेषणात्मक अनुसंधान अभिकल्प, जो कि तथ्यों के बारे में नवीन अंतर्दृष्टि प्राप्त करने से संबंधित है, के बारे में विवरण प्रस्तुत किया गया तथा साथ ही इसकी विशेषताओं व चरणों पर भी प्रकाश डाला गया। इसके पश्चात आनुभविक अनुसंधान अभिकल्प, जो कि शोधकर्ता के प्रत्यक्ष अनुभवों द्वारा किसी निष्कर्ष तह पहुँचने की बात करता है, से जुड़ी जानकारी साझा की गई। इसके अलावा आनुभविक अनुसंधान अभिकल्प के लिए आवश्यक चरणों के बारे में भी संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया गया।

2.2.10. बोध प्रश्न

बोध प्रश्न 1: अन्वेषणात्मक अनुसंधान अभिकल्प क्या है? इसकी विशेषताओं को स्पष्ट कीजिये।

बोध प्रश्न 2: अन्वेषणात्मक अनुसंधान अभिकल्प के चरणों के बारे में विवरण दीजिये।

बोध प्रश्न 3: आनुभविक अनुसंधान अभिकल्प किसे कहते हैं? स्पष्ट कीजिये।

बोध प्रश्न 4: आनुभविक अनुसंधान अभिकल्प के चरणों को बताइये।

2.2.11. संदर्भ ग्रंथ सूची

- मुकर्जी, पी. एन. (2000). *मैथडोलॉजी इन सोशल रिसर्च: डिलेमाज एण्ड पर्सपैक्टिव्स*. नई दिल्ली: सेज पब्लिकेशन्स.
- एकॉफ आर. एल. (1953). *दि डिजाइन ऑफ सोशल रिसर्च*. शिकागो: यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागों प्रेस.
- यंग, पी.वी. (1977). *साईन्टिफिक सोशल सर्वेस एण्ड रिसर्च प्रेन्टिस हाल*. नई दिल्ली: सेज पब्लिकेशन्स.
- यिन, आर. के. (1991). *केस स्टडी रिसर्च: डिजाइन एण्ड मैथड*. सेज पब्लिकेशन्स.
- करलिंगर, एफ. एन. (1964). *फाउण्डेशन ऑफ विहैवियरल रिसर्च*. न्यूयार्क: हाल्ट रिनेहार्ट एण्ड विन्सटन.
- सारन्ताकोस, एस. (1988). *सोशल रिसर्च*. लन्दन: मैकमिलन.
- ब्लैक, जे. ए. एवं चैम्पियन, डी. जे. (1976). *मैथेड्स एण्ड सोशल रिसर्च*, न्यूयार्क: जॉन विले.
- डाबी, जॉन टी. (1954). *एन इन्ट्रोडक्शन टू सोशल रिसर्च* (सम्पादित). लन्दन: द स्टेकवेल कम्पनी.

इकाई-3 मात्रात्मक एवं गुणात्मक

इकाई की रूपरेखा

2.3.0. उद्देश्य
2.3.1. प्रस्तावना
2.3.2. मात्रात्मक अनुसंधान
2.3.3. मात्रात्मक अनुसंधान अभिकल्प
2.3.4. मात्रात्मक अनुसंधान अभिकल्प की विशेषताएँ
2.3.5. मात्रात्मक अनुसंधान अभिकल्प के चरण
2.3.6. गुणात्मक अनुसंधान
2.3.7. गुणात्मक अनुसंधान अभिकल्प
2.3.8. गुणात्मक अनुसंधान अभिकल्प की विशेषताएँ
2.3.9. गुणात्मक अनुसंधान अभिकल्प के चरण
2.3.10. सारांश
2.3.11. बोध प्रश्न
2.3.12. संदर्भ ग्रंथ सूची

2.3.0. उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य आपको निम्न बिन्दुओं में सक्षम बनाना है –

- मात्रात्मक अनुसंधान तथा मात्रात्मक अनुसंधान अभिकल्प को समझ पाने में।
- मात्रात्मक अनुसंधान अभिकल्प की विशेषताओं को जान पाने में।
- गुणात्मक अनुसंधान तथा गुणात्मक अनुसंधान अभिकल्प के बारे में समझ विकसित कर पाने में।
- गुणात्मक अनुसंधान अभिकल्प की विशेषताओं के बारे में ज्ञान अर्जित कर पाने में।

2.3.1. प्रस्तावना

इस इकाई में मात्रात्मक तथा गुणात्मक अनुसंधान अभिकल्प से जुड़े मुद्दों पर चर्चा प्रस्तुत की जा रही है। इन दोनों का ही सामाजिक अनुसंधान में बड़ा ही महत्व है। इसने सामाजिक शोधकर्त्ताओं का ध्यान हाल ही में अपनी ओर आकृष्ट किया है। यदि शोधकर्त्ता की रुचि ग्रामीण/शहरी समुदाय के विकास से संबंधित घटनाओं/समस्याओं के अध्ययन से है तो वह इन विधियों का इस्तेमाल समस्याओं के उनकी प्राकृतिक व्यवस्था में अध्ययन के लिए कर सकता/सकती है जिससे उन वास्तविक समस्याओं का पता चल सके जिनका सामना उन्हें करना पड़ता है।

इस इकाई के माध्यम से मात्रात्मक अनुसंधान अभिकल्प की विशेषताओं तथा चरणों को भी स्पष्ट करने का प्रयास किया जा रहा है। इससे अध्ययनकर्ता को सामाजिक अनुसंधान से जुड़े मात्रात्मक प्रकृति के अनुसंधान अभिकल्प के बारे में नूतन जानकारी प्राप्त हो सकेगी और साथ ही वह इसके बारे में एक समृद्ध समझ भी विकसित कर सकने में सफल होगा। इसी क्रम में अध्ययनकर्ता को गुणात्मक अनुसंधान अभिकल्प के बारे में जानकारी प्रदान की जा रही है। इसके बाद गुणात्मक अनुसंधान अभिकल्प की विशेषताएँ तथा चरणों के बारे में भी चर्चा प्रस्तुत की जाएगी तथा यह चर्चा गुणात्मक अनुसंधान अभिकल्प से संबंधित समझ को और भी मजबूती प्रदान करेगी।

2.3.2. मात्रात्मक अनुसंधान

मात्रात्मक अथवा परिमाणात्मक अथवा गणनात्मक अनुसंधान में मापन मात्रा/परिमाण के आधार पर किया जाता है। इस प्रकार का अनुसंधान उन घटनाओं अथवा समस्याओं पर लागू होता है, जिनकी व्याख्या मात्रात्मक स्वरूप में की जा सकती है। इस प्रकार के अनुसंधान प्रत्यक्षवाद के शोध पद्धतीय सिद्धांतों और अन्य शोध प्रारूप व चयन की कठोरता के मानकों पर आधारित होते हैं। यह आंकड़ों से संबंधित अनुसंधान प्रणाली होती है तथा इसका निष्कर्ष भी आंकड़ों द्वारा ही निर्धारित होता है। आंकड़ों की सहायता से ही नवीन आंकड़ों के बारे में जानकारी प्राप्त करना ही मात्रात्मक अनुसंधान का उद्देश्य होता है। इस प्रकार का अनुसंधान किसी भी भाव अथवा पक्ष से रहित होता है अर्थात् इसमें भावनात्मक तटस्थता पायी जाती है। यह अपेक्षाकृत घटना व उसके परिणाम आदि के संबंधों पर ही केन्द्रित रहता है तथा क्रिया-प्रतिक्रिया, घटना, परिणाम, प्रभाव आदि से ही जुड़ा रहता है।

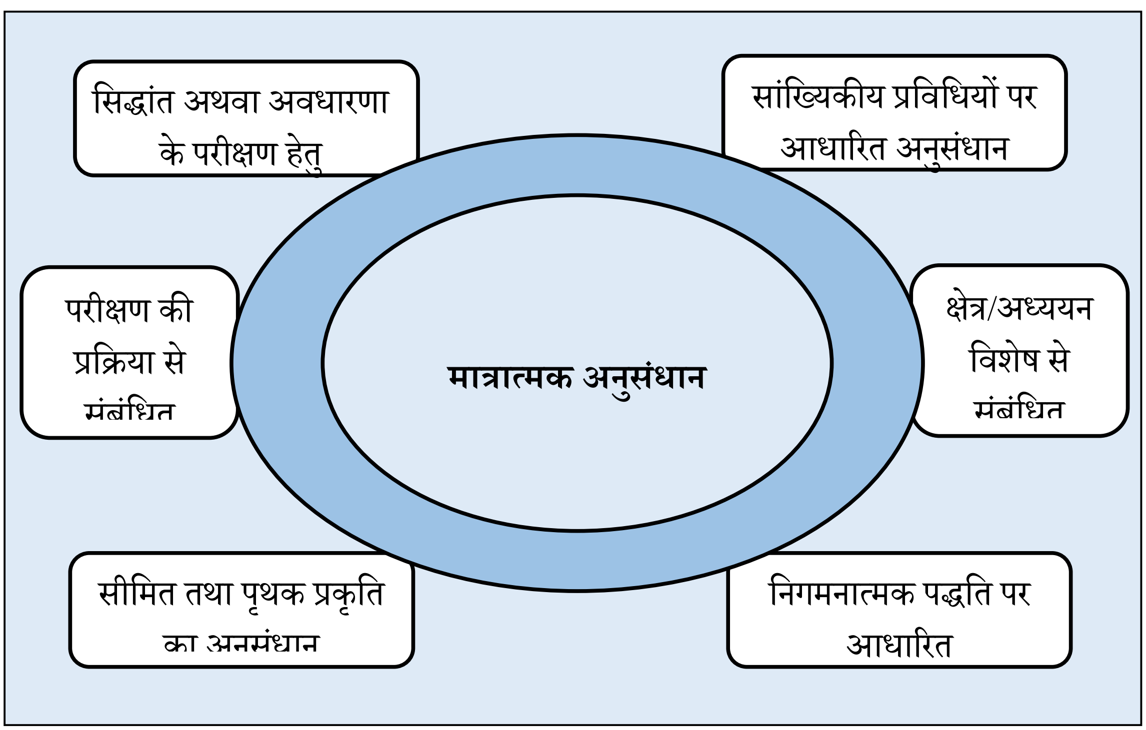

2.3.3. मात्रात्मक अनुसंधान अभिकल्प

मात्रात्मक अनुसंधान अभिकल्प के अंतर्गत अध्ययन किए जाने वाले तथ्य संख्यात्मक स्वरूप के होते हैं तथा इसी कारण इस अनुसंधान अभिकल्प को मात्रात्मक अनुसंधान अभिकल्प की संज्ञा प्रदान की गई है। यही कारण है कि तथ्यों के संकलन हेतु मात्रात्मक अनुसंधान अभिकल्प के तहत प्रयोग की जाने वाली विधियाँ व तकनीकें संरचित प्रकार की रहती हैं तथा साथ ही प्रयोग किए गए प्रश्नों की प्रकृति बंद प्रकार की होती है। इस प्रकार के अनुसंधान अभिकल्प में अवलोकन, संरचित साक्षात्कार, सर्वेक्षण, रिपोर्ट आदि की सहायता से तथ्यों को संकलित किया जाता है तथा तथ्यों के विश्लेषण हेतु सांख्यिकीय पद्धति का सहारा लिया जाता है। मात्रात्मक अनुसंधान अभिकल्प का प्रयोग पूर्व के स्थापित सिद्धांतों की व्यावहारिकता की जांच हेतु किया जाता है। उदाहरणस्वरूप, यदि हमें 50-60 वर्ष पूर्व निर्मित किसी सिद्धांत की वर्तमान प्रासंगिकता का परीक्षण करना है तथा उसकी व्यावहारिक उपस्थिति को जाँचना हो, यो इस दशा में शोध हेतु मात्रात्मक अनुसंधान अभिकल्प का प्रयोग किया जाता है। हालांकि ऐसा भी नहीं है कि मात्रात्मक अनुसंधान अभिकल्प की सहायता से नवीन प्राक्कथन निर्मित नहीं होते, वरन ऐसा सामान्यतः दुष्कर होता है। मात्रात्मक अनुसंधान अभिकल्प के अंतर्गत मुख्यतः निगमनात्मक पद्धति का प्रयोग किया जाता है। इसका उपयोग पूर्व के स्थापित सिद्धांतों अथवा अवधारणाओं की जांच के लिए किया जाता है तथा उसकी वर्तमान समय की प्रासंगिकता को जांच कर उसमें संशोधन किया जाता है अथवा उसे अस्वीकृत कर दिया जाता है। मात्रात्मक अनुसंधान अभिकल्प अपेक्षाकृत वस्तुनिष्ठ प्रकृति का होता है तथा इसमें पक्षपात व भावनात्मक जुड़ाव की संभावनाएं कम रहती हैं। अर्थात् यह किसी भी घटना अथवा स्थिति अथवा समस्या के प्रत्यक्ष तौर पर दिखाई देने वाले परिणाम अथवा प्रभाव का वैज्ञानिक प्रस्तुतीकरण होता है।

2.3.4. मात्रात्मक अनुसंधान अभिकल्प की विशेषताएँ

मात्रात्मक अनुसंधान अभिकल्प की प्रमुख विशेषताओं को हम निम्न बिन्दुओं के आधार पर समझ सकते हैं –

1- यह मात्रात्मक अथवा परिमाणात्मक अथवा सांख्यिकीय सूचनाओं पर आधारित होता है। इसके तहत प्रयुक्त प्रविधियों व तकनीकों में सर्वेक्षण, संरचित साक्षात्कार, अवलोकन, रिपोर्ट आदि के आधार पर अध्ययन किया जाता है।

2- मात्रात्मक अनुसंधान अभिकल्प के अंतर्गत मुख्यतः निगमनात्मक पद्धति का प्रयोग किया जाता है।

3- इसका उपयोग पूर्व के स्थापित सिद्धांतों अथवा अवधारणाओं की जांच के लिए किया जाता है तथा उसकी वर्तमान समय की प्रासंगिकता को जांच कर उसमें संशोधन किया जाता है अथवा उसे अस्वीकृत कर दिया जाता है।

4- मात्रात्मक अनुसंधान अभिकल्प का प्रयोग उपकल्पना के परीक्षण हेतु किया जाता है तथा इसी आधार पर उपकल्पना की सत्यता की पहचान की जाती है।

5- मात्रात्मक अनुसंधान अभिकल्प अपेक्षाकृत वस्तुनिष्ठ प्रकृति का होता है तथा इसमें पक्षपात व भावनात्मक जुड़ाव की संभावनाएं कम रहती हैं। अर्थात् यह किसी भी घटना अथवा स्थिति अथवा समस्या के प्रत्यक्ष तौर पर दिखाई देने वाले परिणाम अथवा प्रभाव का वैज्ञानिक प्रस्तुतीकरण होता है।

6- मात्रात्मक अनुसंधान अभिकल्प के तहत सांख्यिकीय परीक्षण तथा विश्लेषण की संभावना रहती है। ऐसी संभावना इसलिए भी और बलवती रहती है क्योंकि इस प्रकार के अभिकल्प में संख्यात्मक आंकड़ों की उपलब्धता रहता है तथा इन्हीं आंकड़ों के आधार पर वैज्ञानिक निष्कर्ष को प्रस्तुत करने का प्रयोजन रहता है।

7- गुणात्मक अनुसंधान अभिकल्प के अंतर्गत अधिकाधिक विषयों के बारे में जानकारी प्राप्त होती है। अर्थात् इसमें शोध करने हेतु अनेक घटनाओं/समस्याओं के बारे में ज्ञान अर्जित करने की संभावनाएं रहती हैं, हालांकि प्रायः इसमें गहन जानकारी का अभाव पाया जाता है।

8- समान्यतः गुणात्मक अनुसंधान अभिकल्प में प्रश्नों के उत्तर प्राप्त करने के निश्चित विकल्प रहते हैं।

9- गुणात्मक अनुसंधान अभिकल्प में प्राप्त हुये शोध के परिणामों की वैधता तथा विश्वासनीयता की निर्भरता पूरी तरह से प्रयोग किए गए वैज्ञानिक तकनीकों व यंत्रों पर रहती है। इसका तात्पर्य यह है कि इसमें प्रायः अनुसंधानकर्ता द्वारा किया गया प्रयास, उसकी योग्यता व परिश्रम आदि गौण रहते हैं।

10- इसमें शोध हेतु अधिक समय की आवश्यकता रहती है, क्योंकि इसमें तथ्यों के संकलन हेतु अधिक आंकड़ों व उत्तरदाताओं की सहायता से निष्कर्ष प्रस्तुत किया जाता है। परंतु इसमें तथ्यों के संकलन में जितना अधिक समय लगता है, उतने ही कम समय में विश्लेषण कार्य सम्पन्न हो जाता है।

11- अधिक उत्तरदाताओं के क्षेत्र को शामिल करने के कारण इसमें सामान्यीकरण की संभावनाएं अपेक्षाकृत अधिक रहती हैं।

2.3.5. मात्रात्मक अनुसंधान अभिकल्प के चरण

अनुसंधानकर्ता द्वारा मात्रात्मक अनुसंधान अभिकल्प के तहत निम्न वैज्ञानिक चरणों को अपनाया जाता है –

1. समस्या का चुनाव

मात्रात्मक अनुसंधान अभिकल्प के तहत सर्वप्रथम समस्या अथवा घटना को चयनित किया जाता है तथा इसके चयन हेतु यह ध्यान रखा जाता है कि चयनित समस्या अथवा घटना में अनुसंधानकर्ता को जिस चर अथवा विषय का अध्ययन करना है, वह मात्रात्मक आंकड़ों से संबंधित हो। इसमें समस्या अथवा घटना को प्रश्न के रूप में तलाश किया जाता है

तथा यह प्रश्न ही शोध की दिशा को निर्धारित करता है। साथ ही इस बात पर भी ध्यान दिया जाता है कि चयन की गई समस्या अथवा घटना अध्ययन करने योग्य है अथवा नहीं। इसके अलावा चयन की गई समस्या अथवा घटना की वर्तमान प्रासंगिकता पर भी ध्यान दिया जाता है।

2. उद्देश्यों का निर्माण

समस्या के चयन के पश्चात शोध हेतु प्रमुख उद्देश्यों की पहचान की जाती है तथा साहित्यों के सर्वेक्षण की सहायता से उपकल्पना और चरों को निरूपित किया जाता है। साहित्यों के सर्वेक्षण द्वारा अनुसंधानकर्ता को इस बारे में जानकारी होती है कि संबंधित विषय के बारे में कौन से कार्य हो चुके हैं तथा क्या शोध कार्य करना अभी भी बाकी है? इन तथ्यों के बारे में जानकारी होने के पश्चात अनुसंधानकर्ता द्वारा उद्देश्यों तथा उपकल्पना तैयार किए जाते हैं।

3. उत्तरदाताओं का चयन

इसके बाद अध्ययन क्षेत्र से सम्पूर्ण तथा निदर्श इकाइयों की पहचान की जाती है। तथ्यों के संकलन हेतु उत्तरदाताओं का चयन निदर्शन की वैज्ञानिक तकनीकों द्वारा किया जाता है। निर्धारित किए गए उद्देश्यों के अनुरूप ही अनुसंधानकर्ता द्वारा उत्तरदाताओं का चयन किया जाता है।

4. तथ्यों का संकलन

उत्तरदाताओं को चयनित किए जाने के पश्चात तथ्यों का संकलन किया जाता है। सामान्यतः तथ्यों के संकलन हेतु मात्रात्मक अनुसंधान अभिकल्प में प्रश्नावली, अनुसूची, संरचित साक्षात्कार, प्रत्यक्ष मापन, सांख्यिकीय परीक्षण आदि विधियों व तकनीकों का प्रयोग किया जाता है।

5. तथ्यों का विश्लेषण

तथ्यों के विश्लेषण हेतु सांख्यिकीय विश्लेषण का प्रयोग किया जाता है, क्योंकि इसमें सांख्यिकीय आंकड़े पाये जाते हैं।

6. परिणामों की व्याख्या

आंकड़ों के विश्लेषण के पश्चात अनुसंधानकर्ता द्वारा अध्ययन के परिणाम प्रस्तुत किए जाते हैं तथा वह प्राप्त ज्ञान के आधार पर लेखन कार्य करता है। इसके अलावा अनुसंधानकर्ता भविष्य में किए जाने वाले संबंधित विषय पर आधारित अनुसंधान हेतु कुछ सुझाव प्रस्तावित करता है।

2.3.6. गुणात्मक अनुसंधान

गुणात्मक अनुसंधान एक गैर-मात्रात्मक विश्लेषण प्रदान करता है अर्थात् इसका संबंध गुणात्मक प्रकृति की घटनाओं अथवा समस्याओं से होता है। इस प्रकार के अनुसंधान का प्रत्यक्ष संबंध उन घटनाओं से होता है जो गुण अथवा भेद प्रकृति की रहती हैं। इसका ज़्यादातर प्रयोग व्यावहारिक विज्ञानों में किया जाता है, क्योंकि इसका उद्देश्य मानवीय व्यवहारों व इच्छाओं का पता लगाना होता है।

गुणात्मक शोध द्वारा अपनाई जाने वाली अवधारणात्मक रूपरेखा में निम्न कारक उल्लेखनीय हैं –

क) अर्थ और व्याख्याएँ

वास्तव में सामाजिक घटनाओं के बारे में अध्ययन करना अत्यंत ही दुष्कर होता है। प्राकृतिक विज्ञानों द्वारा प्रयोगशाला में अध्ययन कर निष्कर्ष प्राप्त कर लेना अपेक्षाकृत सरल होता है। मानव व्यवहार अथवा किसी सामाजिक घटना को समझने का तात्पर्य यह है कि इसका अवलोकन मानव किस प्रकार से करता है? अथवा उसकी भागीदारी किस प्रकार के क्रियाकलापों से जुड़ी हुई है?

ख) ज्ञान अर्जित करना अथवा संवर्धित करना

शोधकर्त्ता और उत्तरदाताओं के मध्य परस्पर वार्तालाप से प्राप्त होने वाली जानकारी से संबंधित परीक्षण को गुणात्मक शोध द्वारा अधिक महत्व दिया जाता है। शोधकर्ता द्वारा किए प्रश्नों के उत्तर उत्तरदाता द्वारा अपनी अनुभूति के अनुरूप दिया जाता है अथवा वे उत्तर उन अर्थों के संदर्भ में देते हैं जिनसे वे अपने कार्यों को सम्बद्ध समझते हैं। इसके अलावा शोधकर्त्ता और उसके उत्तरदाताओं के मध्य परस्पर वार्तालाप से अधिकतम स्तर की प्रतिक्रियात्मकता और जांच की जाने वाली समस्या से संबंधित अंतर्दृष्टि भी प्राप्त की जाती है।

ग) सामान्यीकरण

विद्वानों का यह मानना है कि सामान्यीकरण करने की प्रक्रिया में व्यक्तिगत इकाइयों में पाई जाने वाली काफी अर्थपूर्ण जानकारी का निर्धारण सही तरीके से नहीं हो पाता है तथा यही कारण है कि सामान्यीकृत जानकारी वास्तविक अथवा पूर्ण जानकारी को इंगित नहीं करती है। उनके लिए जानकारी निर्मित करने की प्रक्रिया को विशिष्ट स्थितियों में पायी जाने वाली विभिन्नता अथवा वास्तविक प्रमाणों पर विचार अवश्य करना चाहिए।

घ) बहुवास्तविकताएँ

मान्यता है कि सामाजिक स्थितियों में विभिन्न वास्तविकताएँ उपलब्ध होती हैं जिन्हें देखा और उन पर शोध कार्य किया जा सकता है। इनकी अनुभूति व्यक्तियों द्वारा अलग रूपों में होती है और इसलिए ये अलग व्यक्तियों के लिए अलग मानसिक रचक के तौर पर निर्मित हो जाते हैं। चूँकि समय के अनुरूप सामाजिक स्थितियाँ बदलती रहती हैं तथा इसी रूप में

वास्तविकताएँ भी परिवर्तित होती रहती हैं। इसके अलावा संदर्भ-विशिष्ट होने के कारण वास्तविकताओं को सामान्यीकृत रूप में साकार नहीं किया जा सकता है।

ङ) मूल्य प्रणालियाँ

सामाजिक अनुसंधानकर्ताओं का मत है कि समस्याओं की पहचान, प्रतिदर्श का निर्धारण, तथ्य संकलन हेतु तकनीकों व प्रविधियों का चयन, उन स्थितियों जिनमें आँकड़ों को संकलित किया गया है और मूल्य प्रणालियों का प्रभाव अनुसंधानकर्त्ता और साक्षात्कारदाता के मध्य होने वाले संभावित वार्तालाप में भी परिलक्षित होता है। अतः समाजविज्ञानी इस बात पर जोर देते हैं कि शोधकर्त्ता के झुकाव को नजरअंदाज नहीं करना चाहिए और इसके बारे में शोध रिपोर्ट में विवरण दिया जाना चाहिए।

च) मानव सम्बन्ध

मानव सम्बन्धों के मामलें में विभिन्न आंतरिक कारक, घटनाएँ, व्यवहार और प्रक्रियाएँ एक-दूसरे पर निरंतर प्रभाव डालती रहती हैं। अतः गुणात्मक अध्ययनों के इस मसले में व्यक्ति से व्यक्ति कारक और प्रभाव सम्बन्धों की पहचान करना संभव नहीं होता है। सामाजिक और व्यवहारगत अध्ययनों से न केवल पूरी सामाजिक प्रणाली व प्रक्रिया के बारे में जानकारी प्राप्त होती है, अपितु संभावित प्रभावों के पैटर्न की भी जानकारी प्राप्त होती है।

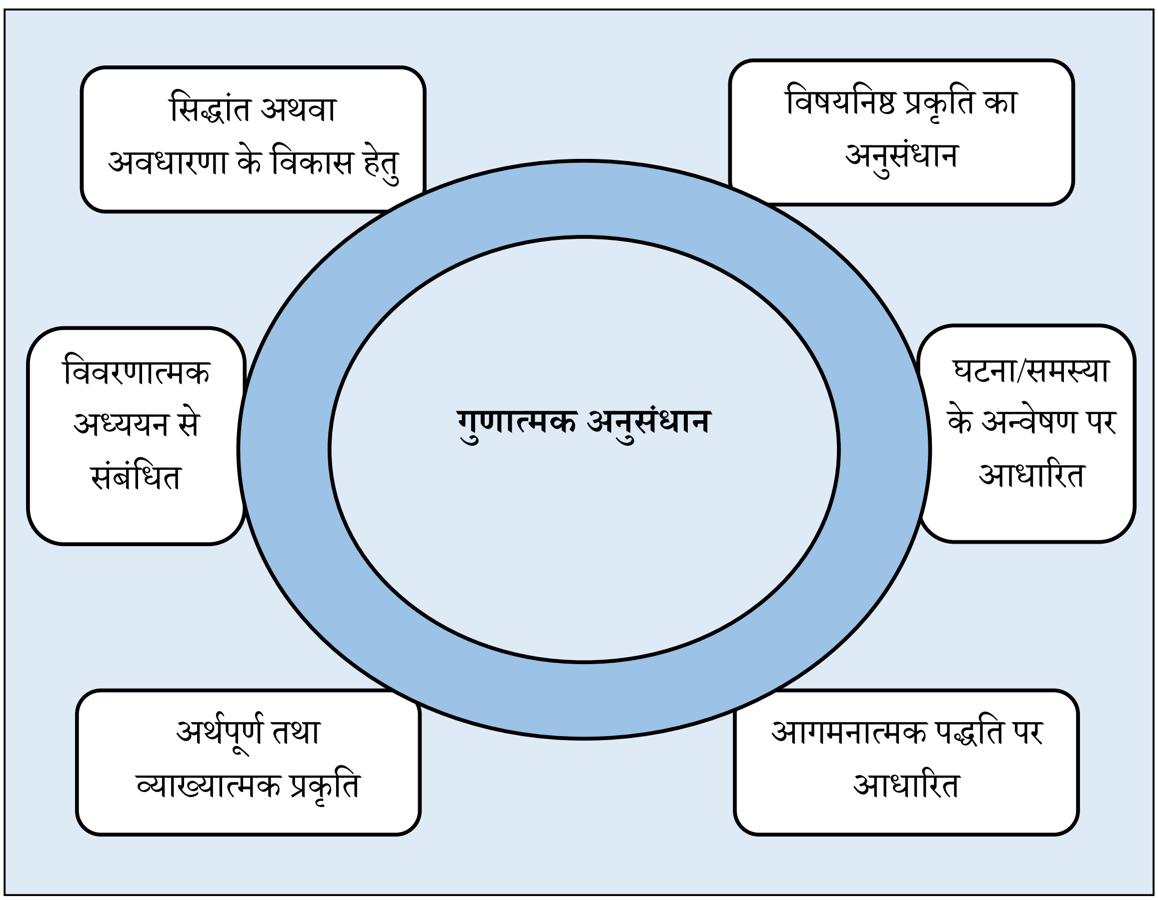

2.3.7. गुणात्मक अनुसंधान अभिकल्प

गुणात्मक अनुसंधान अभिकल्प के अंतर्गत अध्ययन किए जाने वाले तथ्य गुणात्मक स्वरूप के होते हैं तथा इसी कारण इस अनुसंधान अभिकल्प को गुणात्मक अनुसंधान अभिकल्प की संज्ञा प्रदान की गई है। यही कारण है कि तथ्यों के संकलन हेतु गुणात्मक अनुसंधान अभिकल्प के तहत प्रयोग की जाने वाली विधियाँ व तकनीकें प्रायः असंरचित प्रकार की रहती हैं तथा साथ ही प्रयोग किए गए प्रश्नों की प्रकृति खुले प्रकार की होती है। इस प्रकार के अनुसंधान अभिकल्प में अवलोकन, असंरचित साक्षात्कार, गहन अध्ययन, दस्तावेज़ आदि की सहायता से तथ्यों को संकलित किया जाता है तथा तथ्यों के विश्लेषण हेतु विमर्श विश्लेषण, आख्यान विश्लेषण, अंतर्वस्तु विश्लेषण, हरमेन्यूटिक्स, आधारित सिद्धांत आदि प्रकार की पद्धतियों का सहारा लिया जाता है। गुणात्मक अनुसंधान अभिकल्प का प्रयोग सिद्धांतों अथवा अवधारणाओं अथवा तर्कवाक्यों को स्थापित करने के प्रयोजन से किया जाता है। यह मुख्य रूप से आगमनात्मक पद्धति पर आधारित अभिकल्प है। गुणात्मक अनुसंधान अभिकल्प का उपयोग किसी सिद्धान्त, अवधारणा अथवा प्राक्कथन के निर्माण हेतु किया जाता है। इसके अलावा गुणात्मक अनुसंधान अभिकल्प की सहायता से उपकल्पना का निर्माण भी किया जाता है। सामान्यतः गुणात्मक अनुसंधान अभिकल्प का संबंध कुछ विषय विशेष के बारे में गूढ व विषद जानकारी संकलित करने से रहता है।

2.3.8. गुणात्मक अनुसंधान अभिकल्प की विशेषताएँ

गुणात्मक अनुसंधान अभिकल्प की प्रमुख विशेषताओं को हम निम्न बिन्दुओं के आधार पर समझ सकते हैं –

1. गुणात्मक अनुसंधान अभिकल्प का प्रत्यक्ष संबंध गुण, धर्म आदि से होता है। इसमें फोकस ग्रुप, गहन साक्षात्कार, साक्षात्कार, दस्तावेज़ आदि के अध्ययन की सहायता से शोध कार्य सम्पन्न किए जाते हैं।
2. यह मुख्य रूप से आगमनात्मक पद्धति पर आधारित अभिकल्प है। गुणात्मक अनुसंधान अभिकल्प का उपयोग किसी सिद्धान्त, अवधारणा अथवा प्राक्कथन के निर्माण हेतु किया जाता है। इसके अलावा गुणात्मक अनुसंधान अभिकल्प की सहायता से उपकल्पना का निर्माण भी किया जाता है।
3. सामान्यतः गुणात्मक अनुसंधान अभिकल्प का संबंध विषयनिष्ठ प्रकृति से रहता है। इसमें किसी समस्या अथवा घटना के विश्लेषण में शोधकर्ता द्वारा अपनाया गया दृष्टिकोण मायने रखता है।
4. गुणात्मक अनुसंधान अभिकल्प की प्रकृति गुणात्मक अथवा वर्णनात्मक प्रकार की होती है। इसमें घटना के वर्णन पर अधिक ध्यान दिया जाता है।
5. इस प्रकार के अभिकल्प में सांख्यिकीय आंकड़े न होने के कारण किसी भी सांख्यिकीय परीक्षण की आवश्यकता नहीं होती है।

6. इसमें अध्ययन क्षेत्र अपेक्षाकृत सीमित व सटीक रहता है तथा यही कारण है कि इसमें विस्तृत व गहन जानकारी प्राप्त होने की अधिक संभावना रहती है। सामान्यतः गुणात्मक अनुसंधान अभिकल्प का संबंध कुछ विषय विशेष के बारे में गूढ व विषद जानकारी संकलित करने से रहता है।
7. इसमें तथ्यों के संकलन हेतु प्रस्तुत किए गए प्रश्नों के उत्तर हेतु अनेक विकल्पों की व्यवस्था की गई रहती है अथवा प्रश्न पूरी तरह से मुक्त प्रकार के होते हैं। गुणात्मक अनुसंधान अभिकल्प में तथ्यों के संकलन हेतु असंरचित अथवा अर्ध-संरचित प्रकार के प्रश्नों का प्रयोग किया जाता है।
8. गुणात्मक अनुसंधान अभिकल्प के अंतर्गत शोध का परिणाम तथा विश्वसनीयता का पूरा दारोमदार अनुसंधानकर्ता पर ही निर्भर करता है, न कि वैज्ञानिक प्रविधियों व तकनीकों पर। अनुसंधानकर्ता की योग्यता, उसका परिश्रम तथा उसके द्वारा प्रयुक्त दृष्टिकोण ही शोध की वैधता तथा विश्वसनीयता को निर्धारित करता है।
9. गुणात्मक अनुसंधान अभिकल्प में शोध के परियोजना के स्तर पर अपेक्षाकृत कम समय की आवश्यकता होती है, परंतु इसमें विश्लेषण के स्तर पर अनुसंधानकर्ता को अधिक समय देना पड़ता है।
10. गुणात्मक अनुसंधान अभिकल्प पर आधारित अनुसंधान में सामान्यीकरण की संभावना कम रहती है।

2.3.9. गुणात्मक अनुसंधान अभिकल्प के चरण

अनुसंधानकर्ता द्वारा गुणात्मक अनुसंधान अभिकल्प के तहत निम्न वैज्ञानिक चरणों को अपनाया जाता है –

1- शोध प्रश्नों की पहचान

गुणात्मक अनुसंधान अभिकल्प के मुख्य अवयव के रूप में शोध प्रश्नों को माना जाता है। शोध प्रश्न इस प्रकार के अनुसंधान अभिकल्प के लिए न केवल मुख्य अवयव होते हैं, बल्कि ये पूरे शोध में मूल भूमिका का भी निर्वहन करते हैं। इन प्रश्नों के आधार पर ही पूरी शोध की आधारशिला निर्मित होती है।

2- अध्ययन क्षेत्र का चयन

गुणात्मक अनुसंधान अभिकल्प में अगले चरण के रूप में अध्ययन क्षेत्र का चयन किया जाता है। अध्ययन क्षेत्र के चयन हेतु अनुसंधान के लिए निर्धारित किए गए उद्देश्यों का सहारा लिया जाता है। अनुसंधान के उद्देश्यों की भूमिका अध्ययन क्षेत्र को चयनित करने में महत्वपूर्ण होती है।

3- उत्तरदाताओं का चुनाव

इसके बाद यह निर्धारित करना आवश्यक रहता है कि तथ्यों के संकलन हेतु किस प्रकार के उत्तरदाताओं का चयन किया जाएगा तथा उनके चयन हेतु कौन सी निदर्शन तकनीक का प्रयोग किया जाएगा। उत्तरदाताओं के चयन के पश्चात यह भी निर्धारित कर लेना उचित रहता है कि उनसे किस प्रकार के प्रश्नों को पूछा जाएगा। सामान्यतः गुणात्मक अनुसंधान अभिकल्प के अंतर्गत खुले प्रकार के प्रश्नों का प्रयोग किया जाता है तथा ऐसा इसलिए किया जाता है कि उत्तरदाताओं को प्रश्नों के उत्तर देने में अधिक स्वतन्त्रता प्राप्त हो सके और उनके उत्तर विस्तृत व वस्तुनिष्ठ प्रकार के हों।

4- प्रविधियों व तकनीकों का चयन

अध्ययन क्षेत्र तथा उत्तरदाताओं के चयन के पश्चात तथ्यों के संकलन हेतु प्रविधियों व तकनीकों की पहचान कर ली जाती है। इसमें इस बात का ध्यान रखा जाता है कि प्रयुक्त की गई तकनीकें असंरचित प्रकार की हों, ताकि अनुसंधानकर्ता और उत्तरदाता के मध्य के वार्तालाप में उत्तरदाता को अपने पक्ष और उत्तर को प्रस्तुत करने में अपेक्षाकृत अधिक महत्व मिल सके।

5- तथ्यों का विश्लेषण

तथ्यों के संकलन के पश्चात उनका विश्लेषण किया जाता है। इस प्रकार के अध्ययन में तथ्यों के विश्लेषण में अनुसंधानकर्ता का अधिक समय व परिश्रम लगता है तथा साथ ही उसे पर्याप्त सावधानी भी बरतने की आवश्यकता पड़ती है। ऐसा नहीं करने पर अनुसंधान की वैधता व वैधानिकता के दूषित होने का खतरा रहता है।

6- लेखन कार्य

इसके पश्चात अंतिम चरण के रूप में लेखन कार्य किया जाता है। इसमें अनुसंधान से प्राप्त निष्कर्ष तथा सम्पूर्ण विश्लेषण विधि के बारे में यथा विस्तार चर्चा प्रस्तुत की जाती है। इसकी सहायता से अनुसंधान में अपनाए गए प्रत्येक चरण व क्रियाविधि को क्रमवार प्रस्तुत किया जाता है।

2.3.10. सारांश

इस इकाई के अंतर्गत मात्रात्मक तथा गुणात्मक अनुसंधान अभिकल्प के बारे में चर्चा प्रस्तुत की गई। इसके अलावा इन दोनों अनुसंधान अभिकल्पों की प्रमुख विशेषताओं के बारे में जानकारी प्रस्तुत की गई। प्रस्तुत की गई विशेषताओं की सहायता से संबंधित अनुसंधान अभिकल्प के बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त करने में सरलता होगी। साथ ही मात्रात्मक व गुणात्मक अनुसंधान अभिकल्प हेतु आवश्यक चरणों के बारे में भी विवरण प्रस्तुत किया गया। इन चरणों की सहायता से अनुसंधान अभिकल्प से जुड़े गूढ व गहन मुद्दे भी उद्घाटित होते हैं तथा साथ ही यह भी भान होता है कि वैज्ञानिक तरीके से किसी भी अनुसंधान अभिकल्प हेतु अपनाए जाने वाले आवश्यक कदम क्या हैं?

2.3.11. बोध प्रश्न

बोध प्रश्न 1: मात्रात्मक अनुसंधान तथा मात्रात्मक अनुसंधान अभिकल्प के बारे में विवरण प्रस्तुत कीजिये।

बोध प्रश्न 2: मात्रात्मक अनुसंधान अभिकल्प की विशेषताओं व चरणों के बारे में बताइये।

बोध प्रश्न 3: गुणात्मक अनुसंधान तथा गुणात्मक अनुसंधान अभिकल्प के बारे में चर्चा प्रस्तुत कीजिये।

बोध प्रश्न 4: गुणात्मक अनुसंधान अभिकल्प की विशेषताओं व चरणों पर प्रकाश डालिए।

2.3.12. कुछ उपयोगी पुस्तकें

- मुकर्जी, पी. एन. (2000). *मैथडोलॉजी इन सोशल रिसर्च: डिलेमाज एण्ड पर्सपैक्टिव्स*. नई दिल्ली: सेज पब्लिकेशन्स.
- यंग, पी.वी. (1977). *साईन्टिफिक सोशल सर्वेस एण्ड रिसर्च प्रेन्टिस हाल*. नई दिल्ली: सेज पब्लिकेशन्स.
- यिन, आर. के. (1991). *केस स्टडी रिसर्च: डिजाइन एण्ड मैथड*. सेज पब्लिकेशन्स.
- सारन्ताकोस, एस. (1988). *सोशल रिसर्च*. लन्दन: मैकमिलन.
- यंग पी.वी. (1953). *साइन्टिफिक सोशल सर्विस एण्ड रिसर्च* (चौथा संस्करण). एन्जेलवुड क्लिफ, प्रेन्टिस हॉल, एन.जे.
- कुमार, एस. (2002). *मैथड्स ऑफ कम्यूनिटी पार्टीसिपेशन: ए कम्प्लीट गाइड फॉर प्रैक्टिसनर्स*. नई दिल्ली: विस्तार पब्लिकेशन्स.
- लाल, डी.के. (2000). *प्रेक्टिस ऑफ सोशल रिसर्च सोशल वर्क पर्सपेक्टिव्स*. जयपुर: रावत पब्लिकेशन्स.
- मोनेट, डी. आर. एवं सहयोगी. (1986). *एप्लाइड सोशल रिसर्च: टूल फॉर दी ह्यूमन सर्विसेज*. शिकागो: होल्ट.
- रूबिन, ए. एवं बेबी, ई. (1989). *रिसर्च मैथडोलॉजी फॉर सोशल वर्क*. वेलमोन्ट कैलीफोर्निया वैड्सवर्थ.
- ब्लैक, जे. ए. एवं चैम्पियन, डी. जे. (1976). *मैथेड्स एण्ड सोशल रिसर्च*, न्यूयार्क: जॉन विले.
- डाबी, जॉन टी. (1954). *एन इन्ट्रोडक्शन टू सोशल रिसर्च* (सम्पादित). लन्दन: द स्टेकवेल कम्पनी.

इकाई-4 निदानात्मक एवं परीक्षणात्मक

इकाई की रूपरेखा

2.4.0 उद्देश्य

2.4.1. प्रस्तावना

2.4.2. निदानात्मक अनुसंधान

2.4.3. निदानात्मक अनुसंधान अभिकल्प

2.4.4. निदानात्मक अनुसंधान अभिकल्प की विशेषताएँ

2.4.5. निदानात्मक अनुसंधान अभिकल्प के चरण

2.4.6. परीक्षणात्मक अनुसंधान

2..4.7. परीक्षणात्मक अनुसंधान अभिकल्प

2.4.8. परीक्षणात्मक अनुसंधान अभिकल्प की विशेषताएँ

2.4.9. परीक्षणात्मक अनुसंधान अभिकल्प के चरण

2.4.10. सारांश

2.4.11. बोध प्रश्न

2.4.12. संदर्भ ग्रंथ सूची

2.4.0. उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य आपको निम्न बिन्दुओं में सक्षम बनाना है –

- निदानात्मक अनुसंधान तथा निदानात्मक अनुसंधान अभिकल्प को समझ पाने में।
- निदानात्मक अनुसंधान अभिकल्प की प्रमुख विशेषताओं और प्रयुक्त चरणों को जान पाने में।
- परीक्षणात्मक अनुसंधान तथा परीक्षणात्मक अनुसंधान अभिकल्प के बारे में समझ विकसित कर पाने में।
- परीक्षणात्मक अनुसंधान अभिकल्प की प्रमुख विशेषताओं और प्रयुक्त चरणों के बारे में ज्ञान अर्जित कर पाने में।

2.4.1. प्रस्तावना

इस इकाई में निदानात्मक अनुसंधान अभिकल्प तथा परीक्षणात्मक अनुसंधान अभिकल्प के बारे में जानकारी प्रस्तुत की जा रही है। इन दोनों का ही सामाजिक अनुसंधान में बड़ा ही महत्व है। यदि शोधकर्त्ता की रुचि ग्रामीण/शहरी समुदाय के विकास से संबंधित घटनाओं/समस्याओं के अध्ययन से है तो वह इन विधियों का इस्तेमाल समस्याओं के उनकी प्राकृतिक व्यवस्था में अध्ययन के लिए कर

सकता/सकती है जिससे उन वास्तविक समस्याओं का पता चल सके जिनका सामना उन्हें करना पड़ता है।

इस इकाई के माध्यम से निदानात्मक अनुसंधान अभिकल्प की विशेषताओं तथा चरणों को भी स्पष्ट करने का प्रयास किया जा रहा है। इससे अध्ययनकर्ता को सामाजिक अनुसंधान की सहायता से समस्या के समाधान से संबंधित व्यवस्थित और व्यावहारिक जानकारी प्राप्त हो सकेगी और साथ ही वह इसके बारे में एक समृद्ध समझ भी विकसित कर सकने में सफल होगा। इसी क्रम में अध्ययनकर्ता को परीक्षणात्मक अनुसंधान अभिकल्प के बारे में जानकारी प्रदान की जा रही है। इसके बाद परीक्षणात्मक अनुसंधान अभिकल्प की विशेषताएँ तथा चरणों के बारे में भी चर्चा प्रस्तुत की जाएगी तथा यह चर्चा परीक्षणात्मक अनुसंधान अभिकल्प से संबंधित समझ को और भी मजबूती प्रदान करेगी।

2.4.2. निदानात्मक अनुसंधान

निदानात्मक अनुसंधान का तात्पर्य समस्याओं के लिए उत्तरदाई कारकों की तलाश करने और उनके वैज्ञानिक विश्लेषण से है। इसमें समस्याओं के कारणों की पहचान करने के लिए चरों का परीक्षण किया जाता है। उदाहरणस्वरूप, 'क्यों कम आयु समूह के व्यक्तियों का वैवाहिक जीवन अधिक आयु समूह के व्यक्तियों की तुलना में अव्यवस्थित दिखाई पड़ता है?' यदि इस समस्या हेतु उत्तरदाई कारकों की तलाश करनी हो तो इस दशा में निदानात्मक अनुसंधान का प्रयोग किया जाएगा। और साथ ही इस अनुसंधान की सहायता से एक वैज्ञानिक विश्लेषण भी प्रस्तुत करने का प्रयास किया जाएगा। अर्थात् यह कहा जा सकता है कि निदानात्मक अनुसंधान का फोकस किसी समस्या की प्रकृति और उसके लिए जवाबदेह कारकों के बारे में जानकारी प्राप्त करने पर है। इसमें कुछ बातों का ध्यान रखा जाता है, जैसे – क्या इस अध्ययन में कुछ चर आपस में संबंधित हैं? अनुसंधानकर्ता इस अध्ययन में क्या मापन करना चाहता है? मापन हेतु कौन सी प्रविधियाँ व तकनीकों का प्रयोग किया जाएगा? अध्ययन हेतु निदर्श में किन इकाइयों को शामिल किया जाएगा? तथ्यों के संकलन हेतु तथा चरों के परीक्षण हेतु किन उपयुक्त वैज्ञानिक तकनीकों की सहायता ली जाएगी? आदि प्रकार मुद्दों पर सावधानी बरतते हुये ही निदानात्मक अनुसंधान की रूपरेखा तैयार की जाती है।

निदानात्मक अनुसंधान में प्रयोग की जाने वाली प्रक्रियाओं की परियोजना को तैयार करने में अत्यंत सावधानी बरतनी चाहिए, क्योंकि इस प्रकार के अनुसंधानों का उद्देश्य समस्या का निदान प्रस्तुत करना होता है। इसके अलावा इन अनुसंधानों में पक्षपात की कोई संभावना नहीं रहनी चाहिए तथा पक्षपात से सुरक्षा हेतु भी अनुसंधान की रूपरेखा में कुछ प्रावधानों की व्यवस्था होनी चाहिए।

2.4.3. निदानात्मक अनुसंधान अभिकल्प

समान्यतः अनुसंधान के पीछे ज्ञान की प्राप्ति अथवा वृद्धि की धारणा विद्यमान रहती है, परंतु कई बार अनुसंधान किन्हीं समस्याओं के निवारण से भी संबन्धित हो सकता है। यह अनुसंधान अभिकल्प इसी श्रेणी से संबंध रखता है। निदानात्मक अनुसंधान अभिकल्प में शोधकर्ता किसी समस्या अथवा घटना के संबंध में पर्याप्त जानकारी/ज्ञान प्राप्त करता है तथा उस ज्ञान के आधार पर उस समस्या के पीछे छिपे कारणों को जानकार समस्या-निवारण करने हेतु सुझाव प्रस्तुत करता है। सरल शब्दों में इस अनुसंधान अभिकल्प को किसी सामाजिक समस्या के निदान हेतु अनुसंधान -कार्य के रूप में व्याख्यायित किया जा सकता है। इस प्रकार के अनुसंधान अभिकल्प में शोधकर्ता किसी समस्या का निदान प्रस्तावित करता है, न कि स्वयं उस समस्या के निदान में जुट जाता है।

किसी भी समस्या का निदान करना समाज सुधारक, नेता अथवा प्रशासक आदि का काम होता है, एक शोधकर्ता केवल वैज्ञानिक प्रविधियों व तकनीकों की सहायता से समस्या और उसके लिए उत्तरदाई कारकों के बारे में व्यवस्थित जानकारी प्राप्त कर उसके समाधान की तलाश करता है। इसलिए इस अनुसंधान अभिकल्प में समस्या के बारे में सम्पूर्ण व गहन अध्ययन कर उसकी गहराई तक जाने का प्रयास किया जाता है, ताकि समस्या के प्रत्येक संभावित कारणों की पहचान की जा सके।

2.4.4. निदानात्मक अनुसंधान अभिकल्प की विशेषताएँ

निदानात्मक अनुसंधान अभिकल्प की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं –

1. निदानात्मक अनुसंधान अभिकल्प का सीधा संबंध किसी सामाजिक समस्या को जानने व समझने से होता है। अनुसंधान-कार्य के दौरान शोधकर्ता केवल समस्या के बारे में ज्ञान अर्जित करता है।
2. किसी सामाजिक समस्या के पीछे छिपे कारणों की तलाश उसके समाधान को जानने के प्रयास हेतु किया जाता है।
3. निदानात्मक अनुसंधान अभिकल्प में समस्याओं के कारणों की पहचान करने के लिए चरों का परीक्षण किया जाता है।
4. इसमें शोधकर्ता किसी सामाजिक समस्या के कारणों को जानकार उपयुक्त वैज्ञानिक समाधान प्रस्तुत करता है।
5. निदानात्मक अनुसंधान अभिकल्प में ज्ञान प्राप्त करना समाधान प्रस्तुत करने हेतु एक साधन के रूप में प्रयुक्त होता है।

2.4.5. निदानात्मक अनुसंधान अभिकल्प के चरण

अनुसंधानकर्ता द्वारा निदानात्मक अनुसंधान अभिकल्प के तहत निम्न वैज्ञानिक चरणों को अपनाया जाता है–

1- चारों की पहचान

निदानात्मक अनुसंधान अभिकल्प में सर्वप्रथम चरों की पहचान की जाती है तथा यह निश्चित कर लिया जाता है कि संबंधित अध्ययन हेतु कौन सा चर आश्रित है तथा कौन सा चर स्वतंत्र है। इनके पहचान के आधार पर ही समस्या तथा शोध की अगली प्रक्रिया पर ध्यान केन्द्रित किया जाता है।

2- चारों के मापन हेतु प्रविधियों का निर्धारण

चरों की प्रकृति तथा प्रकार की पहचान कर लेने के पश्चात यह निर्धारित कर लेना आवश्यक रहता है कि उन चरों के मापन हेतु कौन सी वैज्ञानिक तकनीकों तथा यंत्रो का प्रयोग किया जाएगा। निदानात्मक अनुसंधान अभिकल्प के मुख्य चरों के बारे में सटीक और विस्तृत जानकारीप्राप्त करने के लिए आवश्यक रहता है कि अनुसंधान में सही वैज्ञानिक तकनीक व यंत्र का चयन किया जाय।

3- चरों के मध्य के संबंध को जानना

निदानात्मक अनुसंधान अभिकल्प के अगले चरण में इन्हीं तकनीकों तथा यंत्रों की सहायता से चरों के मध्य के संबंध को ज्ञान किया जाता है। चरों के मध्य के संबंध के आधार पर ही समस्या की गहराई को समझा जा सकता है।

4- हस्तक्षेप की रणनीतियों का निर्माण

इसके पश्चात हस्तक्षेप (इंटर्वेंशन) के लिए कुछ आवश्यक रणनीतियाँ निर्मित की जाती हैं। इसके लिए निम्न बिन्दुओं को ध्यान में रखा जाना चाहिए –

- इसमें अध्ययन क्षेत्र तथा उत्तरदाताओं के बारे में यथासंभव ऐतिहासिक और व्यावहारिक जानकारी संकलित कर ली जाती है।
- मानवशास्त्रीय अथवा नैदानिक तकनीकों की सहाता से उत्तरदाताओं के बारे में व्यवस्थित और तुलनात्मक जानकारी भी प्राप्त कर लेनी चाहिए।
- इसके बाद संकलित किए गए तथ्यों को नैदानिक तरीके से परिष्कृत कर जांच लेना चाहिए।

5- तथ्यों का विश्लेषण

तथ्यों के संकलन के पश्चात उनका विश्लेषण उचित वैज्ञानिक प्रविधि से किया जाता है तथा इस विश्लेषण के साथ ही कुछ सुझावों को भी प्रस्तावित किया जाता है। ये सुझाव ही इस सम्पूर्ण अनुसंधान की सैद्धान्तिक और व्यावहारिक परिणति को साकार करने में सहायता करता है।

2.4.6. प्रयोगात्मक अनुसंधान

प्रयोगात्मक अनुसंधान, अनुसंधान की एक प्रमुख विधि है। प्रयोगात्मक अनुसंधान मे कार्य कारण सम्बन्ध स्थापित किया जाता है। कार्य कारण सम्बन्ध स्थापित करने के लिए दो स्थितियों को संतुष्ट करना होता है। पहली स्थिति मे यह सिद्ध करना होता है कि यदि कारण है तो उसका प्रभाव होगा। यह स्थिति आवश्यक है पर पर्याप्त नही। दूसरे मे हमे यह सिद्ध करना होता है कि यदि कारण न हो और फिर भी प्रभाव है तो उसका अर्थ यह हुआ कि प्रभाव का वह कारण नही है जिसकी हम अपेक्षा कर रहे थे। प्रयोगात्मक अनुसंधान मे कारण की उपस्थिति प्रभाव को दर्शाती है तथा कारण की अनुपस्थिती प्रभाव को नही दर्शाती है। इन्ही दोनो स्थितियों को संतुष्ट करने के बाद हम सही कार्य कारण सम्बन्ध स्थापित कर सकते है। इस प्रकार हम कह सकते है कि प्रयोगात्मक अनुसंधान मे दो समूह होते है'?- एक प्रयोगात्मक समूह तथा दूसरा नियंत्रित समूह।

प्रयोगात्मक समूह मे शोधकर्ता द्वारा स्वतंत्र चर मे जोड़- तोड़ किया जाता है। इस जोड़-तोड़ का प्रभाव आश्रित चर पर देखा जाता है। नियंत्रित समूह मे शोधकर्ता द्वारा कोई जोड़-तोड़ नही किया जाता है और यह भी सिद्ध किया जाता है कि यदि कारण नही है तो इसका प्रभाव भी नही है।

2.4.7. प्रयोगात्मक अनुसंधान अभिकल्प

प्रयोगात्मक अनुसंधान प्रारूप/अभिकल्प ऐसा अनुसंधान प्रारूप होता है जिसमे अध्यन समस्या के विश्लेषण के लिए किसी न किसी प्रकार का प्रयोग समाहित होता है। यह प्रारूप नियंत्रित स्थिति में होता है, जैसे कि प्रयोगशाला मे ज्यादा उपयुक्त होता है।

सामाजिक अध्ययनों मे सामान्यतः प्रयोगशाला का प्रयोग नहीं होता है। इस प्रकार के अभिकल्प का प्रयोग ग्रामीण समाजशास्त्र और विशेषकर कृषि सम्बन्धी अध्ययनों मे ज्यादा होता है। ग्रामीण प्रयोगात्मक अध्ययनों मे प्रयोगो के आधार पर यह पता लगाया जाता है कि संचार माध्यमों का क्या प्रभाव पड़ रहा है योजनाओं का लाभ लेने वालों और न लेने वालो की सामाजिक-आर्थिक प्रस्थिति मे क्या अन्तर आया है, इत्यादि। इसी प्रकार के बहुत से विषयों या प्रभावों को इस प्रारूप के द्वारा स्पष्ट करने की कोशिश की जाती है। चरों के बीच कारणात्मक संबंधों का परीक्षण इसके द्वारा प्रामाणित तरीके से हो पाता है।

प्रयोगात्मक अनुसंधान अभिकल्प का प्रयोग शोधकर्ता किसी प्रयोगशाला की तरह करता है। इस अभिकल्प का प्रयोग दो चरों के परस्पर संबंध के अध्ययन करने के लिए किया जाता है। इसमें दो समूह होते हैं, पहला, नियंत्रित समूह तथा दूसरा, प्रयोगिक समूह। नियंत्रित समूह को जैसे का तैसा रहने दिया जाता है तथा उसे किसी भी बाहरी प्रभाव से दूर रखा जाता है। जबकि प्रयोगिक समूह पर उस कारक को आरोपित किया जाता है, जिसका कि प्रभाव शोधकर्ता को देखना अथवा जाँचना होता है। इस अध्ययन में शोधकर्ता द्वारा वैज्ञानिक विधि के सभी चरण अपनाए जाते हैं।

नियंत्रण हेतु दो विधियों को प्रयोग में लाया जाता है –

- पहली विधि में एक समूह के सदस्यों को दूसरे समूह के सदस्यों के साथ समानता स्थापित करने के प्रयोजन से दैव निदर्शन विधि द्वारा दो अलग-अलग समूहों में वर्गीकृत कर दिया जाता है। इस प्रकार की विधि में पक्षपात की संभावना बिलकुल नहीं रहती है तथा सभी इकाइयों का वितरण बराबर-बराबर हो जाता है।
- दूसरी विधि में एक समूह की इकाई को दूसरे समूह की इकाई के साथ बराबर करने के लिए प्रत्येक इकाई को दूसरी इकाई से बराबर किया जाता है। इस विधि को मैचिंग विधि के नाम से जाना जाता है।

प्रयोगात्मक अनुसंधान अभिकल्प को हम तीन प्रकार के रूप में समझ सकते हैं –

क) केवल पश्चात् परीक्षण

इसमें सर्वप्रथम सभी दृष्टि से प्रायः समान विशेषताओं व प्रकृति वाले दो समूहों को चयनित कर लिया जाता है। इन दो समूहों में एक समूह को नियंत्रित समूह तथा दूसरे समूह को प्रयोगिक समूह के रूप में संज्ञा प्रदान की जाती है। नियंत्रित समूह में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं लाया जाता है तथा प्रयोगिक समूह में उस कारक के प्रभाव को आरोपित किया जाता है, जिसके प्रभाव का अध्ययन शोधकर्ता को करना होता है। इसके पश्चात यदि प्रयोगिक समूह, नियंत्रित समूह से भिन्न हो जाता है, तो यह इस परिवर्तन का कारण उस आरोपित कारक को ही मान लिया जाता है।

उदाहरणस्वरूप: दो समान प्रकृति और विशेषताओं वाले समूह को चयनित किया गया तथा उसमें से एक समूह में सह-शिक्षा का प्रसार किया जात और दूसरे समूह को जैसे का तैसा ही रहने दिया जाय। यदि परिणामस्वरूप सह-शिक्षा का प्रसार किए हुये समूह में प्रेम-विवाह की घटनाएँ अधिक देखने को मिलती हैं, तो इस परिवर्तन के पीछे कारक के रूप में सह-शिक्षा को समझा जाएगा।

ख) पूर्व-पश्चात् परीक्षण

इस प्रकार के अभिकल्प में आश्रित चरों पर प्रभाव की अध्ययन उपचार के पश्चात् ही नही किया जाता, अपितु पहले भी किया जाता है ताकि दोनों समूहों की समानता तथा अन्य चरो का पूर्वानुमान लगाकर प्रयोग को अधिक विश्वनीय बनाया जा सके। पूर्व-पश्चात् परीक्षण मे एक ही समूह होता है अथवा एक से अधिक समूह ले सकते है। यदि एक ही समूह चुना जाता है ते उसका अवलोकन जिस कारक का प्रभाव देखना है उससे उपचार के पूर्व तथा पश्चात् किया जाता है। यदि अन्त परिवर्तनशील समूहो को चुना जाए तो प्रायोगिक चर की प्रारम्भिक माप की समस्या समाप्त हो जाती है यदि दो समूह चुने गए है तो एक का पूर्व प्रभाव नही देखा जाता परन्तु प्रायोगिक चर का अध्ययन किया जाता है।

उदाहरणस्वरूप: प्रेम विवाह का अध्ययन सह-शिक्षा के पूर्व और पश्चात किया जाय। इसमें चयनित समूह के बारे में विस्तृत व पूर्ण जानकारी प्राप्त कर ली जाती है तथा उसके पश्चात सह-शिक्षा को चयनित समूह में लागू किया जाता है। इसके पश्चात दोनों अध्ययनों में गहन तुलना की जाती है और यदि

परिणामस्वरूप प्रेम-विवाह की घटनाएँ अधिक देखने को मिलती हैं, तो इस परिवर्तन के पीछे कारक के रूप में सह-शिक्षा को समझा जाएगा।

ग) कार्योत्तर अथवा कार्यान्तर तथ्य परीक्षण

एक्स-पोस्ट-फैक्टो अनुसंधान से तात्पर्य वैसे अनुसंधान से होता है जिसमे शोधकर्ता किसी प्रभाव के आधार पर उसके सम्भागीय कारणों का पता लगाने की कोशिश करता है। इस प्रकार के अनुसंधान मे घटना घटने के बाद शोधकर्ता अनुसंधान को प्रारम्भ करता है। प्रभाव आश्रित चर होता है। पहले बीत चुकी घटनाएं जिन्हे कारण कहा जाता है स्वतंत्र चर होते है। इस तरह के एक्स-पोस्ट फैक्टों अनुसंधान मे स्वतंत्र चर की अभिव्यक्ति आश्रित चर के सामने आने के बहुत पहले ही हो चुकी होती है। यही कारण है कि इस तरह के अनुसंधान मे शोधकर्ता चाह कर भी स्वतंत्र चर मे किसी प्रकार का कोई जोड़-तोड़ नही कर सकता है।

उदाहरणस्वरूप: मान लिया जाए कि कोई शोधकर्ता फेफड़े का कैंसर का अध्यन करना चाहता है। वह ऐसे रोगियों का अवलोकन करके इस आधार पर पहुचता है कि धूम्रपान तथा हमेशा आने वाली खाँसी इससे संबंधित है। अतः वह ऐसे रोगियों मे इस बात का पता लगाने की कोशिश करेगा कि उनमे धूम्रपान की आदल किस तरह की है, प्रतिदिन कितनी सिगरेट पीता है तथा यह भी पता लगायेगा कि रोगी मे खाँसी का स्वरूप कैसा है अर्थात् कितने दिनों से उसे खाँसी आ रही है। तथा यह खाँसी आम तरह से आने वाली खाँसी से भिन्न है या उसी प्रकार की है आदि।

2.4.8. प्रयोगात्मक अनुसंधान अभिकल्प की विशेषताएँ

1- प्रयोगात्मक अनुसंधान अभिकल्प का प्रयोग दो चरों के परस्पर संबंध के बारे में जानकारी प्राप्त करने के प्रयोजन से किया जाता है।

2- प्रयोगात्मक अनुसंधान अभिकल्प में प्राथमिक तथ्यों की सत्यता के बारे में भी पता लगाया जाता है।

3- अग्रिम रूप से अनुसंधान की प्राथमिकताओं को तलाशने के पश्चात उनकी जांच हेतु प्रयोगात्मक अनुसंधान अभिकल्प का प्रयोग किया जाता है।

4- इसमें परीक्षण द्वारा तथ्यों की वैधानिकता के बारे जांच की जाती है।

5- इसमें अध्ययन हेतु घटित हो चुकी घटना अथवा समस्या का चयन पुनर्परीक्षण हेतु किया जाता है।

2.4.9. प्रयोगात्मक अनुसंधान अभिकल्प के चरण

अनुसंधानकर्ता द्वारा प्रयोगात्मक अनुसंधान अभिकल्प के तहत निम्न वैज्ञानिक चरणों को अपनाया जाता है–

I- उपकल्पना का निरूपण

प्रयोगात्मक अनुसंधान अभिकल्प में सर्वप्रथम उपकल्पना का निरूपण किया जाता है तथा सम्पूर्ण परीक्षणात्मक अनुसंधान इसी उपकल्पना के परीक्षण पर ही आधारित रहता है। उपकल्पना के निर्माण हेतु अनुसंधाकर्ता को संबंधित साहित्यों का अध्ययन करना आवश्यक रहता है तथा साहित्यों से प्राप्त ज्ञान और जानकारी के आधार पर ही अनुसंधाकर्ता द्वारा एक प्राक्कथन निर्मित किया जाता है, जिसकी जांच परीक्षणात्मक अनुसंधान में की जाती है।

II- चरों की पहचान और संकल्पनीकरण

उपकल्पना के निर्माण के बाद चरों की पहचान की जाती है तथा साथ ही उनके संकल्पनीकरण पर भी ध्यान आकृष्ट किया जाता है। चरों को संकल्पनीकृत कर उनके क्षेत्र को सीमित व निश्चित किया जाता है, ताकि अनुसंधान के उद्देश्यों के अनुरूप कोई भटकाव की समस्या न आ सके।

III- अध्ययन क्षेत्र का चयन

इसके पश्चात अध्ययन क्षेत्र और सम्पूर्ण जनसंख्या की पहचान कर ली जाती है। इसमें यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि अध्ययन के उद्देश्यों के अनुसार ही जनसंख्या का चयन किया जाय, अन्यथा इसका दुष्परिणाम अनुसंधान के परीक्षण और निष्कर्ष पर परिलक्षित होगा।

IV- इकाइयों का चुनाव

इसके बाद निर्धारित की गई उपयुक्त निदर्शन तकनीक का प्रयोग कर इकाइयों को तथ्य संकलन हेतु चुन लिया जाता है।

V- तथ्य संकलन

प्रयोगात्मक अनुसंधान अभिकल्प के अगले चरण में तथ्यों के संकलन हेतु मानक प्रविधियों व तकनीकों का सहारा लिया जाता है। प्रयोगात्मक अनुसंधान अभिकल्प में तथ्यों के संकलन हेतु अनुसंधानकर्ता को सावधानी के साथ-साथ आलोचनात्मक दृष्टिकोण रखने की जरूरत रहती है।

VI- तथ्यों का विश्लेषण

इसके पश्चात तथ्यों के विश्लेषण हेतु उचित सांख्यिकीय प्रविधि की पहचान कर ली जाती है तथा इसकी सहायता से तथ्यों को विश्लेषित किया जाता है। इसके अलावा इस प्रविधि की सहायता से संकल्पनीकृत किए गए चरों के मध्य के संबंध का पता लगाया जाता है और निरूपित की गई उपकल्पना के परीक्षण हेतु भी यह प्रविधि आवश्यक भूमिका का निर्वहन करती है।

VII- निष्कर्ष

सम्पूर्ण विश्लेषण व परीक्षण के पश्चात निष्कर्ष प्रस्तुत किया जाता है जो सम्पूर्ण परीक्षणात्मक अनुसंधान का प्रतिनिधित्व करता है।

2.4.10. सारांश

इस इकाई के अंतर्गत निदानात्मक तथा परीक्षणात्मक अनुसंधान अभिकल्प के बारे में चर्चा प्रस्तुत की गई। इसके अलावा इन दोनों अनुसंधान अभिकल्पों की प्रमुख विशेषताओं के बारे में जानकारी प्रस्तुत की गई। प्रस्तुत की गई विशेषताओं की सहायता से संबंधित अनुसंधान अभिकल्प के बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त करने में सरलता होगी। साथ ही निदानात्मक व परीक्षणात्मक अनुसंधान अभिकल्प हेतु आवश्यक चरणों के बारे में भी विवरण प्रस्तुत किया गया। इन चरणों की सहायता से अनुसंधान अभिकल्प से जुड़े गूढ व गहन मुद्दे भी उद्घाटित होते हैं तथा साथ ही यह भी भान होता है कि वैज्ञानिक तरीके से किसी भी अनुसंधान अभिकल्प हेतु अपनाए जाने वाले आवश्यक कदम क्या हैं?

2.4.11. बोध प्रश्न

बोध प्रश्न 1: निदानात्मक अनुसंधान तथा निदानात्मक अनुसंधान अभिकल्प के बारे में विवरण प्रस्तुत कीजिये।

बोध प्रश्न 2: निदानात्मक अनुसंधान अभिकल्प की विशेषताओं व चरणों के बारे में बताइये।

बोध प्रश्न 3: परीक्षणात्मक अनुसंधान तथा परीक्षणात्मक अनुसंधान अभिकल्प के बारे में चर्चा प्रस्तुत कीजिये।

बोध प्रश्न 4: परीक्षणात्मक अनुसंधान अभिकल्प की विशेषताओं व चरणों पर प्रकाश डालिए।

2.4.12. कुछ उपयोगी पुस्तकें

- मुकर्जी, पी. एन. (2000). *मैथडोलॉजी इन सोशल रिसर्च: डिलेमाज एण्ड पर्सपैक्टिव्स*. नई दिल्ली: सेज पब्लिकेशन्स.
- सारन्ताकोस, एस. (1988). *सोशल रिसर्च*. लन्दन: मैकमिलन.
- गूडे, डब्ल्यू जे. एवं हॉट, पी.के. (1952). *मैथड्स इन सोशल रिसर्च*. न्यूयॉर्क: मैकग्रा हिल.
- सैलिट्, जी. एवं सहयोगी. (1973). *रिसर्च मैथड्स इन दी सोशल रिलेशन्स*. (तृतीय संस्करण). होल्ड, न्यूयॉर्क: राइनहार्ट एवं विन्सटन.
- यंग, पी.वी. (1953). *साइन्टिफिक सोशल सर्विस एण्ड रिसर्च*. (चौथा संस्करण), एन्जेलवुड क्लिफ, प्रेन्टिस हॉल, एन. जे.
- बैली, कैनथे डी. (1978). *मैथड्स ऑफ सोशल रिसर्च*. लंदन: द फ्री प्रैस.
- कोहेन, एल. एवं मैनियन, एल. (1989). *रिसर्च मैथड्स इन एजुकेशन*. (तृतीय संस्करण), लंदन: रूटलेज.
- कर्लिन्जर, एफ़. आर. (1964). *फाउन्डेशन ऑफ बिहेवियोरल रिसर्च*. दिल्ली: सुरजीत पब्लिकेशन्स.

- कोठारी, एल.आर. (1985). *रिसर्च मैथडोलॉजी*. नई दिल्ली: विश्व प्रकाशन.
- लाल दास, डी.के. (2000). *प्रेक्टिस ऑफ सोशल रिसर्च: सोशल वर्क पर्सपेक्टिव्स*. जयपुर: रावत पब्लिकेशन्स.
- लाल दास, डी.के. (2005). *डिजाइन्स ऑफ सोशल रिसर्च*. जयपुर: रावत पब्लिकेशन्स.
- एकॉफ आर. एल. (1953). *दि डिजाइन ऑफ सोशल रिसर्च*. शिकागो: यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागों प्रेस.
- मिल,जे.एस. (1930). *एसिस्टम ऑफ लॉजिक*. (आठवाँ संस्करण). न्यूयॉर्क: लॉगमैन.
- ब्लैक, जे. ए. एवं चैम्पियन, डी. जे. (1976). *मैथेड्स एण्ड सोशल रिसर्च*, न्यूयार्क: जॉन विले.
- डाबी, जॉन टी. (1954). *एन इन्ट्रोडक्शन टू सोशल रिसर्च* (सम्पादित). लन्दन: द स्टेकवेल कम्पनी.

खंड-3 शोध पद्धतियां

इकाई- 2 वैयक्तिक अध्ययन एवं इतिहास पद्धति

इकाई की रूपरेखा

3.1.0. उद्देश्य

3.1.1. प्रस्तावना

3.1.2. वैयक्तिक अध्ययन पद्धति की परिभाषा

3.1.3. वैयक्तिक अध्ययन की आधारभूत मान्यताएँ

3.1.4. वैयक्तिक अध्ययन के अन्तर्गत प्रयुक्त चरण/कार्य-विधि

3.1.5. वैयक्तिक अध्ययन में सूचनाओं के स्रोत

3.1.6. वैयक्तिक अध्ययन का महत्व एवं सीमा

3.1.7. ऐतिहासिक पद्धति की परिभाषा-

3.1.8. ऐतिहासिक तथ्यों के स्रोत

3.1.9. ऐतिहासिक पद्धति का महत्व एवं सीमा

3.1.10. सारांश

3.1.11. स्व-मूल्यांकन हेतु प्रश्न

3.1.12. शब्दावली

3.1.13. संदर्भ ग्रंथ सूची

3.1.0. उद्देश्य कथन

- वैयक्तिक अध्ययन एवं इतिहास पद्धति की विभिन्न परिभाषाओं को भिन्न-भिन्न चिंतकों के दृष्टिकोणों से समझ सकेंगे।
- वैयक्तिक अध्ययन एवं इतिहास पद्धति ऐतिहासिक जानकारी प्राप्त कर पाएंगे।
- वैयक्तिक अध्ययन एवं इतिहास पद्धति के महत्त्व एवं उद्देश्यों को समझ सकेंगे।
- वैयक्तिक अध्ययन एवं इतिहास पद्धति के विभिन्न प्रकारों से प्रयोग कर पाएंगे।
- वैयक्तिक अध्ययन एवं इतिहास पद्धति के लाभों एवं समस्यायों के प्रति जागरूक हो सकेंगे।

3.1.1. प्रस्तावना

वैयक्तिक अध्ययन सामाजिक शोध की एक महत्वपूर्ण पद्धति/विधि है। जिसका विकास विशेषत: अमेरिका में हुआ। इस पद्धति का गहन एवं विस्तारपूर्वक प्रयोग मनोविज्ञान, शिक्षाशास्त्र, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र तथा राजनीतिशास्त्र जैसी विधाओं में किया गया। शनै: शनै: किसी सामाजिक समस्या के विभिन्न पहलुओं के उद्विकास एवं वृद्धि को रेखांकित करने की एक अत्यधिक सुविधाजनक पद्धति के रूप में इसे मान्यता प्रदान की गयी। यह पद्धति एक अर्द्धविकसित अथवा विकासशील राष्ट्र के अन्तर्गत विशेष रूप से उपयोगी समझी जाती रही है, जहाँ विभिन्न प्रकार की सामाजिक संस्थाएँ पारस्परिक अन्त:क्रिया करती हैं। जी. वोन बूलो जैसे कुछ विद्वानों ने समाजशास्त्र को इतिहास से अलग एक विज्ञान के रूप में स्वीकार ही नहीं किया है, अभी तो यह मत भी व्यक्त किया है कि समाजशास्त्री अध्ययन में ऐतिहासिक पद्धति ही एकमात्र उपयुक्त पद्धति हो सकती है। इसीलिए इतिहासकार, दर्शन शास्त्री और समाज विज्ञानी अपने अध्ययन कार्य में ऐतिहासिक दृष्टिकोण को अपनाते हैं ताकि निरंतर विकासशील एवं परिवर्तित व रूपांतरित होने वाले समाज की गतिशील सावयव उसकी संरचना व कार्यों को समझाना उनके लिए सरल हो जाए। समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से सामाजिक घटनाओं के अध्ययन में भी इसलिए ऐतिहासिक पद्धति का अपना एक अलग महत्व है। प्रस्तुत इकाई में हम आपको इन पद्धतियों के प्रारम्भिक विकास, परिभाषाओं, मान्यताओं, कार्यविधियों/चरणों, सूचनाओं के स्रोत इत्यादि से अवगत करवाते हुए इसके महत्व और सीमाओं को भी बतलायेगें। इकाई के अध्ययन के उपरान्त आपके लिए भी यह सम्भव होगा कि भविष्य में सामाजिक शोधों में इसका प्रयोग कर सकें।

3.1.2. वैयक्तिक अध्ययन पद्धति की परिभाषा

पी.वी. यंग (1977) का कहना है कि, ''किसी एक सामाजिक इकाई चाहे वह इकाई एक व्यक्ति, एक समूह, एक संस्था, एक जिला अथवा एक समुदाय ही हो, का विस्तृत अध्ययन वैयक्तिक अध्ययन कहलाता है।'' सरलतम शब्दों में हम कह सकते हैं कि इसमें किसी भी सामाजिक इकाई को सम्पूर्णता की दृष्टि से देखा जाता है। ऐसा ही विचार गुडे और हाट (1952) ने भी व्यक्त किया है। बीसेन्ज तथा बीसेन्ज ने अपनी पुस्तक 'माडर्न सोसाईटी (1982) में लिखा है कि, ''वैयक्तिक अध्ययन गुणात्मक विश्लेषण का एक विशेष स्वरूप है जिसके अन्तर्गत किसी व्यक्ति, परिस्थिति अथवा संस्था का अत्यधिक सावधानीपूर्वक और पूर्ण अवलोकन किया जाता है।''

सिन पाओ येंग ने अपनी पुस्तक, 'फैक्ट फाईडिंग विद रूरल पीपुल (1971)' में लिखा है कि, ''वैयक्तिक अध्ययन पद्धति को किसी एक छोटे, सम्पूर्ण तथा गहन अध्ययन के रूप में परिभाषित किया जा सकता है, जिसके अन्तर्गत अनुसंधानकर्ता किसी व्यक्ति के सम्बन्ध में पर्याप्त सूचनाओं का व्यवस्थित संकलन करने के लिए अपनी समस्त क्षमताओं और विधियों का उपयोग करता है, जिससे यह ज्ञात हो सके कि एक स्त्री अथवा पुरुष समाज की एक इकाई के रूप में किस प्रकार कार्य करता है।''

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि, वैयक्तिक अध्ययन से अभिप्राय सामाजिक शोध में प्रयुक्त एक विधि (पद्धति) से है, जो एक व्यक्ति, परिवार, संस्था अथवा समुदाय के रूप में एक सामाजिक इकाई से

संबंधित गुणात्मक सामग्री के संग्रह को सम्भव बनाती है। इस विधि की प्रकृति को समुचित रूप से समझने के लिए यह आवश्यक है कि इस प्रत्यय से संबंधित प्रमुख विशेषताओं को स्पष्ट किया जाये।

1. यह सापेक्षतया अधिक गुणात्मक है।
2. यह विधि एक विशिष्ट सामाजिक इकाई का सम्पूर्ण अध्ययन है।
3. इस विधि द्वारा किया जाने वाला अध्ययन अत्यधिक सूक्ष्म एवं गहन होता है।
4. इस विधि में अतीत एवं वर्तमान दोनों का समन्वय होता है। इस विधि में अध्ययनकर्ता किसी इकाई से संबंधित अतीत के तथ्यों को जानने के साथ ही उनका वर्तमान स्थिति से सह-सम्बन्ध ज्ञात करने का प्रयत्न करता है।
5. इस विधि के द्वारा अध्ययन की इकाई के विभिन्न तत्वों के एकीकरण एवं समग्रता की स्थिति को स्वीकार करते हुए विभिन्न सूचनाओं को एकत्रित करने का प्रयास किया जाता है।
6. इस विधि का प्रमुख उद्देश्य किसी चयनित इकाई की विभिन्न परिस्थितियों के बीच कार्य-कारण के सम्बन्धों को ज्ञात करना है। इस विधि के माध्यम से चयनित इकाई के व्यवहार को प्रेरणा अथवा प्रोत्साहन देने वाले कारकों के विषय में जानकारी प्राप्त की जाती है तथा यह जानने का भी प्रयत्न किया जाता है कि, वर्तमान परिस्थितियाँ अतीत की परिस्थितियों से किस प्रकार प्रभावित अथवा अप्रभावित हैं।

संक्षेप में, वैयक्तिक अध्ययन विधि की उपर्युक्त विशेषताओं के सन्दर्भ में यह कहा जा सकता है कि, इस विधि का प्रयोग करते हुए यह ज्ञात होता है कि, प्रमुख रूप से किसी चयनित इकाई के आन्तरिक संरचना संबंधित पहलू क्या है तथा इस आन्तरिक संरचना के अतीत एवं वाà¥य वातावरण के बीच क्या सम्बन्ध हैं इसी आधार पर वैयक्तिक अध्ययन विधि को बर्गेस (1949) ने 'सामाजिक सूक्ष्म-दर्शक यंत्र' (सोशल माइक्रोस्कोप) नाम से सम्बोधित किया है।

वैयक्तिक अध्ययन विधि की विशेषताओं को ज्ञात कर लेने के पश्चात यह भी आवश्यक प्रतीत हो जाता है कि, सामाजिक विज्ञानों के अन्तर्गत इस विधि के उद्विकास पर प्रकाश डाला जाये। हॉवर्ड ओडम तथा कैथरीन जोचर (1929) ने वैयक्तिक अध्ययन के उद्विकास पर अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किए हैं, ''वास्तव में सामाजिक विज्ञानों के अन्तर्गत वैयक्तिक विधि के सबसे पहले प्रयोग इतिहासकारों के व्यक्तियों एवं राष्ट्रों के विवरण थे, जिनका अनुगमन बाद में अधिक छोटे समूहों, गुटों एवं व्यक्तियों के विस्तृत अध्ययनों द्वारा किया गया।'' सर्वप्रथम फ्रेडरिक लीप्ले (1806.1882) ने सामाजिक विज्ञान में वैयक्तिक अध्ययन विधि का प्रयोग पारिवारिक बजट के अपने अध्ययनों के अन्तर्गत किया। तत्पश्चात् हरबर्ट स्पेन्सर (1820.1903) ने नृशास्त्रीय अध्ययनों में वैयक्तिक अध्ययन का प्रयोग किया । बाद में बाल अपराधियों के अध्ययन में मनोचिकित्सक विलियम हीली ने इस पद्धति को अपनाया। पी.वी. यंग (1977) ने वैयक्तिक अध्ययन पद्धति के उद्विकास पर विस्तृत प्रकाश डाला है। थामस और नैनिकी की पुस्तक 'दी पोलिश पीजेन्ट इन यूरोप एण्ड अमेरिका' के प्रकाशन होने के बाद ही इस अध्ययन विधि को एक व्यवस्थित समाजशास्त्रीय क्षेत्र शोध के वास्तविक प्रयोग एवं स्वीकृति मिल पायी। इस पुस्तक में

वैयक्तिक दस्तावेजों- डायरियाँ, पत्रों, आत्मकथाओं का प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया गया था। इस विषय पर बेन्जामिन पाल की पुस्तक 'वेल्थ, कल्चर एण्ड कम्युनिटी' महत्वपूर्ण है, जिसने विश्व के विभिन्न भागों में सामुदायिक स्तर पर किए गये वैयक्तिक अध्ययनों को सम्मिलित कर विश्व समुदाय के समक्ष इस विधि को प्रकाशित किया।

साधारण रूप से 'वैयक्तिक अध्ययन' (Case Study) एवं 'वैयक्तिक कार्य' (Case Work) के प्रत्यय सामाजिक शोध के अन्तर्गत प्रयोग में आते रहें हैं। प्रचलन के तौर पर यह कहा जा सकता है कि जहाँ 'वैयक्तिक अध्ययन' किसी एक विशेष इकाई के गहन अन्वेषण के रूप में स्थापित है, वहीं 'वैयक्तिक कार्य' विकासात्मक एवं समायोजनात्मक प्रक्रियाएँ जो निदान का अनुगमन करती हैं, के सन्दर्भ में प्रयुक्त होता रहा है। यहाँ यह ध्यान देने योग्य है कि, ये दोनों विधियाँ एक सामाजिक अथवा वैयक्तिक समस्या के प्रति समान अभिगम/उपागम का स्वरूप हैं, तथा अन्तर्सम्बन्धित एवं अनिवार्यत: दोनों एक-दूसरे के सम्पूरक हैं। वैयक्तिक अध्ययन प्राय: एक पद्धति (विधि), कभी तकनीक अन्य अवसरों पर अभिगम तथा समय-समय पर किसी चयनित इकाई के परिदृश्य में आँकड़ों को संगठित करने के ढंग के रूप में परिभाषित होता रहा है। यह भी समझा जाता रहा है कि वैयक्तिक अध्ययन पद्धति का तात्पर्य अध्ययन के एक ऐसे तरीके से है, जिसके द्वारा किसी व्यक्ति के क्रियाकलापों, मनोवृत्तियों और जीवन-इतिहास का गहन अध्ययन किया जाता है। परन्तु यह भी मत व्यक्त किया जाता रहा है कि, इस विधि के द्वारा केवल एक व्यक्ति का ही गहन अध्ययन नही किया जाता है, बल्कि किसी भी एक सामाजिक इकाई जैसे व्यक्ति, परिवार, समूह, संस्था अथवा समुदाय को केन्द्र मानते हुए प्रयोग किया जा सकता है। यहाँ यह कहना उचित होगा कि, ''समग्र रूप में वैयक्तिक अध्ययन सामाजिक शोध के अन्तर्गत प्रयोग में लाया जाने वाला एक ऐसा ढंग है जो अनुसंधानकर्ता को तीव्र एवं सूक्ष्म अन्तदृष्टि प्रदान करने, इकाईयों का अधिक गहराई में पैठकर अध्ययन करने, समस्याओं का मनो-सामाजिक अध्ययन करने, निदान करने एवं समाधान के उपाय प्रस्तुत करने, अन्य ढंगों तथा पर्यवेक्षण अत्यादि की सहायता लेते हुए निष्कर्षों को अधिक से अधिक यथार्थ एवं पूर्ण बनाने तथा नवीन परिकल्पनाओं को प्रतिपादित करने के लिए उपयुक्त आधार प्रदान करने में सहायक सिद्ध होता है।'' (सुरेन्द्र सिंह, 1975)

उपरोक्त परिपेक्ष्य में, वैयक्तिक अध्ययन का प्रयोग विशेषतया मनोचिकित्सा, समाज कार्य तथा सामाजिक शोध में किया जाता है। आधुनिक समाज की जटिल समस्याओं की गहनता के सन्दर्भ में, वैयक्तिक अध्ययन पद्धति का प्रयोग ''मनोचिकित्सा के अन्तर्गत मानसिक बीमारियों का उपचार करने हेतु मनो-सामाजिक अध्ययन करने एवं निदान प्रस्तुत करने के लिए तथा सामाजिक अनुसंधान के अन्तर्गत समस्या समाधान प्रस्तुत करने हेतु आवश्यक सूचना का संग्रह करने के लिए किया जाता है।'' (सुरेन्द्र सिंह, 1975) वैयक्तिक अध्ययन के प्रत्यय को प्रमुख रूप से दो दृष्टिकोणों से समझा जा सकता है : पहला, पद्धति (विधि) के रूप में और दूसरा, उपागम के रूप में। पद्धति के रूप में, वैयक्तिक अध्ययन सामाजिक शोध के अन्तर्गत गुणात्मक सामग्री के संग्रह में सहायता प्रदान करता है और जो इसी सन्दर्भ में गणनात्मक एकत्रीकरण को सम्भव बनाने वाली विधियों जैसे प्रश्नावली तथा साक्षात्कार से भिन्न है। उपागम के रूप में, वैयक्तिक अध्ययन एक अधिक विस्तृत क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करने वाले एक सूक्ष्म एवं

सीमित क्षेत्र का अध्ययन करने से संबंधित होता है। एक उपागम के रूप में स्वीकार करने पर किसी भी जटिल परिस्थिति तथा उससे समिश्रित कारकों का अध्ययन करना तथा उसे निदानात्मक स्वरूप प्रदान करने में वैयक्तिक अध्ययन को प्रयोग में लाना सम्भव हो जाता है।

प्राय: वैयक्तिक अध्ययन एवं सांख्यिकीय उपागमों के स्वरूपों के बीच अन्तर किया जाता रहा है, तथा दोनों को विरोधी की संज्ञा भी प्रदान की जाती रही है, क्योंकि वैयक्तिक अध्ययन को प्रमुखतया शोध की गैर-सांख्यिकीय प्रणाली के रूप में स्वीकार किया जाता है। एक सांख्यिकीविद विशेषतया गुणात्मक/परिमाणात्मक सूक्ष्मता उपागम से अभिप्रेरित रहता है। वह समाज के समस्तर दृश्य लेते हुए आँकड़ों के एक विस्तृत क्षेत्र को प्रकट करता है। वह एक दी हुई परिस्थिति के अन्तर्गत विभिन्न कारकों के घटित होने तथा अन्तर्सम्बन्धित सामान्यीकरणों के आकार को दर्शाता है। इसके विपरीत, वैयक्तिक अध्ययन सामाजिक प्रक्रियाओं का निर्धारण करता है तथा विभिन्न कारकों की जटिलता को स्पष्ट करते हुए निदानात्मक अभिव्यक्ति हेतु कार्यक्रमों एवं हस्तक्षेप-युक्त कार्यप्रणाली को प्रदर्शित करता है। सामाजिक प्रक्रियाओं के निर्धारण में एकरूपता प्रदान करने हेतु वैयक्तिक अध्ययनों की एक कड़ी विशिष्ट एवं सामान्य भिन्नताओं की तुलना करने तथा उनमें विभेद स्थापित करने के उद्देश्य से समानताओं एवं विभिन्नताओं की खोज करती है।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि, सांख्यिकीय उपागम केवल कुछ सीमित कारकों के साथ तुलना करता है, जो किसी भी सामाजिक समस्या पर सूक्ष्म दृष्टि प्रदान करने में सुविधाजनक प्रतीत नही होते हैं। किन्तु यह भी सत्य है कि एक सांख्यिकीविद् साहचर्य की मात्रा, बारम्बारता तथा सीमा को समझते हुए सामाजिक परिस्थिति को अधिक गहराई के साथ समझने का प्रयास करता है। इस रूप में सांख्यिकीय उपागम वैयक्तिक अध्ययन के लिए शोधकर्ता को उत्तरदाताओं के चुनाव में मार्गदर्शन प्रदान कर सकता है, तथा विशिष्ट एवं अधिक पूर्ण अध्ययन की आवश्यकता रखने वाले कारकों को सामने लाने में सहायक हो सकता है। दूसरी तरफ, वैयक्तिक अध्ययन सांख्यिकीय विश्लेषण के लिए आधारभूत सामग्री प्रदान कर सकते हैं।

वैयक्तिक अध्ययन एवं सांख्यिकीय उपागम की पारस्परिक निर्भरता को पी.वी. यंग (1977) ने इस प्रकार समझाने की चेष्टा की है- ‘‘एक विद्यार्थी जो वैयक्तिक अध्ययन पद्वति का प्रयोग करता है, सापेक्षतया छोटी संख्या में उत्तरदाताओं का प्रयोग करने में समर्थ होता है। किन्तु जहाँ तक वैयक्तिक अध्ययन पद्धति से उत्पन्न होने वाले प्रतिबन्धों का सम्बन्ध है, एक व्यक्ति से संबंधित लक्षणों अथवा कारकों की सम्पूर्ण संख्या असीमित होती है। यह वैसे ही है जैसे कि एक सांख्यिकीविद एक समस्तर दृश्य ले रहा हो, जो आँकड़ों के एक विस्तृत क्षेत्र को काटता हो, जबकि वैयक्तिक अध्ययन पद्वति का प्रयोग करने वाला विद्यार्थी कम संख्या में वैयक्तिक उत्तरदाताओं का सीधा दर्शन उन अनेक विस्तारों पर गौर करते हुए करता है जो उसके ध्यान में आते हैं। विस्तार के प्रति मनोवृत्ति की यह भिन्नता कुछ सीमा तक दोनों अभिगमों में विभेद स्थापित करती है, क्योंकि सांख्यिकीविद सामान्य आधारों की प्रकृति से संबंधित होता है, जबकि वैयक्तिक अध्ययन पद्धति का प्रयोग करने वाला विद्यार्थी उस सामग्री को बड़ी मात्रा में सम्मिलित करने के लिए उत्सुक होता है, जो कम से कम उस समय विशिष्ट प्रतीत होती है। इसके

अतिरिक्त वैयक्तिक अध्ययन पद्धति द्वारा अध्ययन के अन्तर्गत व्यक्तियों में बड़ी संख्या में प्रतीत होने वाले लक्षणों एवं कारकों को एक साथ जोड़ना तथा अन्तिम रूप से कार्य-कारण सम्बन्धों की स्थापना करना सम्भव है, जबकि सह-सम्बन्ध का सांख्यिकीय ढंग एक समय पर तीन अथवा सम्भवत: चार कारकों से अधिक के साथ कार्य नहीं कर सकता है।''

3.1.3. वैयक्तिक अध्ययन की आधारभूत मान्यताएँ -

वैयक्तिक अध्ययन विधि, जिसका प्रमुख प्रयोजन एक अथवा कुछ इकाइयों का सर्वांगीण अध्ययन के आधार पर सम्पूर्ण समूह अथवा क्षेत्र की विशेषताओं के विषय में अवगत होना होता है, वाᳵय रूप से कुछ त्रुटिपूर्ण प्रतीत हो सकता है, परन्तु यह विधि कुछ ऐसी मान्यताओं पर आधारित है जिनको समझकर इस प्रकार की आशंकाओं का निराकरण किया जा सकता है। इस दृष्टि से वैयक्तिक अध्ययन की आधारभूत मान्यताओं पर दृष्टिपात कर लेना आवश्यक प्रतीत होता है, जो निम्नलिखित है :-

1. वैयक्तिक अध्ययन की सर्वप्रमुख मान्यता यह है कि सभी व्यक्तियों के व्यवहारों में उनकी विभिन्न परिस्थितियों के अनुसार भिन्नता होने के बाद भी मानव स्वभाव में कुछ मौलिक एकता विद्यमान रहती है, जिसके माध्यम से सभी व्यक्तियों के व्यवहारों को समझा जा सकता है। इस विषय पर आल्पोर्ट (1942) के विचार महत्वपूर्ण हैं, जिसने यह प्रतिपादित किया कि मानव प्रकृति से संबंधित कुछ विशेषताएँ ऐसी होती हैं जिन्हें सभी व्यक्तियों तथा एक समूह के प्रत्येक सदस्य पर लागू किया जा सकता है। इस आधार पर वैयक्तिक अध्ययन विधि के माध्यम से किसी इकाई अथवा एक विशेष समूह की विशेषताओं को समझना एक वैज्ञानिक विधि कहा जा सकता है।
2. वैयक्तिक अध्ययन विधि इस मान्यता पर भी आधारित रहती है कि, प्रत्येक मानव व्यवहार कुछ विशेष परिस्थितियों से प्रभावित होता है। अत: यदि एक विशेष परिस्थिति के अन्तर्गत किसी व्यक्ति अथवा समूह के सदस्य के व्यवहार को समझ लिया जाये तो उसी परिस्थिति में अन्य व्यक्ति एवं समूह भी उसी प्रकार का व्यवहार करते हुए पाये जायेंगे। इस सन्दर्भ में यह भी सत्य है कि परिस्थितियों में पुनरावृत्ति होती रहती है। इस अर्थ में, विभिन्न स्थानों एवं विभिन्न समय पर उत्पन्न होने वाले मानव व्यवहारों का अनुमान लगाया जा सकता है।
3. वैयक्तिक अध्ययन की यह भी मान्यता है कि मानवीय क्रियाओं एवं व्यवहारों पर 'समय तत्व' का भाव अनिवार्य रूप से परिलक्षित होता है। इस सन्दर्भ में यह समझना आवश्यक है कि जो घटना आज वर्तमान में घटित हो रही है, उसका बीजारोपण आज काफी समय पूर्व किसी न किसी कारक के प्रभाव से हो चुका होता है। अत: वैयक्तिक अध्ययन विधि के माध्यम से किसी विशेष घटना को प्रभावित करने वाले कारकों को एक विशेष अवधि अथवा समय के सन्दर्भ में समझा जा सकता है। उदाहरण के तौर पर यह कहा जा सकता है कि किसी समाजिक समस्या,

क्रान्ति अथवा युद्ध की स्थिति केवल तात्कालिक दशाओं से उत्पन्न नहीं होती बल्कि इनका बीजारोपण काफी पहले हो चुका होता है।

4. वैयक्तिक अध्ययन की एक महत्वपूर्ण मान्यता है कि, किसी सामाजिक इकाई का सम्यक् अध्ययन उसे सर्वांगीण रूप से देखकर ही प्राप्त किया जा सकता है, न कि उसके किसी एक अथवा कुछ अन्यत्र पहलुओं के आधार पर। यहाँ यह समझना आवश्यक प्रतीत होगा कि बहुत सी इकाईयों के एक अथवा दो पक्षों का अध्ययन करने से अधिक अच्छा है कि एक या दो इकाइयों के सभी पहलूओं का समग्र रूप में अध्ययन कर निष्कर्ष प्राप्त कर लिया जाये।
5. वैयक्तिक अध्ययन की उपयुक्तता इस मान्यता पर आधारित है कि मानवीय व्यवहार एवं सामाजिक क्रियायें इतनी जटिल होती हैं कि उन्हें केवल अवलोकन अथवा साक्षात्कार 86 के माध्यम से समुचित रूप से समझा नही जा सकता, अपितु किसी सामाजिक इकाई के व्यवहारों, मनोवृत्तियों, प्रेरणाओं एवं प्रक्रियाओं पर सम्यक् दृष्टि प्राप्त करने हेतु उनका वैयक्तिक एवं समग्र अध्ययन करना आवश्यक होता है। इसी सन्दर्भ में जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है कि वैयक्तिक अध्ययन को एक 'सामाजिक सूक्ष्मदर्शक यंत्र' की संज्ञा भी प्रदान की गई है।

3.1.4. वैयक्तिक अध्ययन के अन्तर्गत प्रयुक्त चरण/कार्य-विधि -

वैयक्तिक अध्ययन की विषय वस्तु सामाजिक इकाइयों की आन्तरिक संरचना तथा उसके वाह्य वातावरण से संबंधित रहती है, जो स्वभावतया इतनी जटिल एवं अव्यवस्थित होती है कि उनका सम्यक् अध्ययन करने के लिए एक व्यवस्थित कार्य-प्रणाली को उपयोग में लाना आवश्यक हो जाता है। वास्तव में वैयक्तिक अध्ययन के अन्तर्गत सामाजिक इकाइयों का सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक पक्षों का इस प्रकार अध्ययन करना होता है जिससे कि उनकी आन्तरिक संरचना एवं वाण्य परिवेश की मौलिक विशेषताओं को समझा जा सके। इस पृष्ठभूमि में, वैयक्तिक अध्ययन के अन्तर्गत प्रयोग में लाए जाने वाले चरणों एवं सोपानों को समझ लेना आवश्यक प्रतीत होता है जिससे कि इस विधि का व्यवस्थित रूप से उपयोग किया जा सके- वैयक्तिक अध्ययन पद्धति के प्रमुख चरण अथवा उसकी कार्य-विधि के मुख्य पक्ष निम्नलिखित हैं।

(1) समस्या के पक्षों का निर्धारण

सर्वप्रथम वैयक्तिक अध्ययन के लिए अध्ययन की इकाई अथवा समस्या की प्रकृति का समुचित स्पष्टीकरण करना, इकाइयों का निर्धारण करना तथा अध्ययन क्षेत्र से पूर्णतया अवगत होना आवश्यक होता है। वास्तव में, वैयक्तिक अध्ययन की सफलता भी इसी प्रारम्भिक सोपान पर अत्यधिक आधारित होती है। अत: इस परिदृश्य में, अनुसंधानकर्ता को सामाजिक इकाई अथवा समस्या के विभिन्न पक्षों से संबंधित निम्नलिखित तथ्यों पर ध्यान देना विशेष रूप से महत्वपूर्ण होता है।

1. **समस्या का चुनाव :** वैयक्तिक अध्ययन हेतु सर्वप्रथम अध्ययन से संबंधित समस्या अथवा विषय का चयन करना अति आवश्यक होता है। वास्तव में, इसी चयनित समस्या के आधार पर ही किसी भी अनुसंधान को व्यवस्थित रूप से सम्पन्न किया जा सकता है। उदाहरण के तौर पर,

यह समस्या बाल-अपराध, मद्यपान, अनुशासन हीनता, पारिवारिक विघटन, सामाजिक तनाव, इत्यादि किसी विषय से संबंधित हो सकती है।

2. **इकाइयों का निर्धारण :** समस्या का चुनाव कर लेने के पश्चात् उससे संबंधित इकाईयों का निर्धारण करना आवश्यक हो जाता है। उदाहरण के लिए यदि अध्ययन मादक द्रव्यों के उपयोग से संबंधित है, तो इस तथ्य का निर्धारण करना आवश्यक होता है कि मादक द्रव्य व्यसन के अध्ययन हेतु उससे संबंधित कौन सी इकाई का चयन किया जाना है। इसके अन्तर्गत ये इकाइयाँ कोई भी व्यक्ति, समूह अथवा विशेष संस्थाएँ, इत्यादि हो सकती हैं।
3. **इकाइयों की संख्या का निर्धारण :** इसी क्रम में वैयक्तिक अध्ययन के लिए यह निर्धारित करना आवश्यक प्रतीत होता है कि, अध्ययन की जाने वाली इकाइयों की संख्या क्या होगी। इस संख्या का निर्धारण अनुसंधानकर्ता के पास उपलब्ध साधनों और समय पर आधारित होता है। यहाँ यह ध्यान देने योग्य है कि, यह संख्या इतनी कम नहीं होनी चाहिए कि अध्ययन से संबंधित सभी प्रकार के तथ्यों का संकलन न किया जा सके और न ही इतनी अधिक होनी चाहिए कि उनका गहन अध्ययन करना सम्भव न हो सके।

(2) अध्ययन के क्षेत्र का निर्धारण

वैयक्तिक अध्ययन के लिए समस्या के विभिन्न पक्षों का निर्धारण (जो उपरोक्त ‘क’, ‘ख’ तथा ‘ग’ के माध्यम से वर्णित किया गया है, के पश्चात् अनुसंधानकर्ता द्वारा उस स्थान अथवा क्षेत्र का निर्धारण करना भी आवश्यक होता है, जहाँ विभिन्न इकाइयों का अध्ययन किया जाना है। उदाहरण के तौर पर, मादक द्रव्य व्यसन संबंधित समस्या के अन्तर्गत इस समस्या से पीड़ित व्यक्ति, समूह किन संस्थाओं, सुधार-गृहों, चिकित्सालयों में रह रहें हैं, उनमें से किस स्थान पर वैयक्तिक अध्ययन करना है, इसका निर्धारण करना आवश्यक होता है।

(3) विश्लेषण क्षेत्र का निर्धारण

वैयक्तिक अध्ययन के अन्तर्गत समस्या के विशिष्ट क्षेत्र के निर्धारण के पश्चात अध्ययन की इकाई के विश्लेषण-क्षेत्र को पूर्णतया स्पष्ट कर लेना आवश्यक होता है। विश्लेषण क्षेत्र से अभिप्राय है अध्ययन की जाने वाली इकाई से संबंधित वे कौन से पक्ष महत्वपूर्ण हैं तथा कौन से पक्ष उपयोगी नही हैं। इस प्रकार विश्लेषण क्षेत्रों की उपयोगिता एवं अनुपयोगिता दोनों का निर्धारण करना वैयक्तिक अध्ययन को व्यवस्थित करने से संबंधित हैं।

(4) समय या अवधि के अन्तर्गत घटनाओं के अनुक्रम का वर्णन

अध्ययन की इकाई के विश्लेषण क्षेत्रों के निर्धारण के पश्चात् अध्ययन से संबंधित समस्या अथवा इकाई को एक विशेष समय या अवधि के सन्दर्भ में समझने का प्रयास करना आवश्यक होता है, अर्थात् इस तथ्य को समझना कि सामाजिक इकाई की कुछ विशेष घटनायें किस अवधि में घटित हुई तथा उन घटनाओं से संबंधित विभिन्न समय/अवधि में कौन-कौन सी विशेषताएँ सम्बद्ध रही हैं, तथा भविष्य में इकाई से संबंधित कौन-सी घटनाओं के घटित होने की सम्भावना की जा सकती है, इत्यादि।

(5) निर्धारक अथवा प्रेरक

तत्व वैयक्तिक अध्ययन की यह प्रमुख मान्यता रही है कि, कोई भी घटना शून्य में नही घटती, अर्थात् प्रत्येक घटना अथवा समस्या को उत्पन्न करने वाले कुछ-न-कुछ निर्धारक या प्रेरक तत्व विद्यमान रहते हैं। अत: घटनाओं के क्रम को स्पष्ट कर लेने के पश्चात अध्ययन के लिए समस्या अथवा इकाई के अन्तर्गत घटनाओं के निर्धारक तत्वों को ज्ञात कर लेना आवश्यक होता है। उदाहरणार्थ, मादक-द्रव्य व्यसन को प्रेरणा देने वाले अनेक कारक हो सकते हैं, जैसे पारिवारिक स्थिति, पड़ोस, मित्र की संगति, इत्यादि। वैयक्तिक अध्ययन के लिए ऐसे सभी प्रेरक तत्वों का ज्ञान वास्तविक अध्ययन को व्यवस्थित विधि से सम्पन्न करने हेतु आवश्यक होता है।

(6) विश्लेषण एवं निष्कर्ष

वैयक्तिक अध्ययन पद्धति के अन्तिम एवं सबसे महत्वपूर्ण चरण सभी संकलित तथ्यों का वर्गीकरण एवं उनका विश्लेषण कर निष्कर्ष प्राप्त करना होता है। इस विश्लेषण एवं निष्कर्ष का प्रमुख अभिप्राय है, एक विशेष अवधि अथवा वास्तविकता के अन्तर्गत होने वाली चयनित इकाई/इकाइयों के व्यवहार के स्वभाव से पूर्णतया अवगत होना तथा उन दशाओं अथवा कारकों से परिचय प्राप्त करना जो चयनित समस्या या मानव व्यवहार के लिए उत्तरदायी होते हैं।

सारांश में, यह कहा जा सकता है कि, वैयक्तिक अध्ययन के अन्तर्गत वैज्ञानिक ढंग को अपनाकर कार्य करते हुए अनुसंधानकर्ता चयनात्मक प्रत्यक्ष ज्ञान के माध्यम से अध्ययन प्रारम्भ करता है। वह एक सम्पूर्ण विश्लेषक की भूमिका में वैज्ञानिक वस्तुओं, तथ्यों एवं घटनाओं को एक विशिष्ट दृष्टिकोण तथा एक विशिष्ट प्रकार की अभिरुचि की दृष्टि से समझता है तथा उनका संग्रह, संकलन, अभिलेखन एवं निर्वचन करता है। वह यहाँ पर यद्यपि एक जटिल सामाजिक परिस्थिति/ वास्तविकता में पाये जाने वाले तत्वों की आत्मनिर्भरता को ध्यान में रखते हुए, किन्तु फिर भी इन सभी तत्वों का विवरण एक साथ प्रस्तुत न कर एक-एक करके उनका विश्लेषण एवं विवेचन करता है। वह वैयक्तिक अध्ययन प्रक्रिया से संबंधित आवश्यक गुणों जैसे अध्ययन विषय का समुचित ज्ञान, सूक्ष्म अवलोकन की क्षमता, विश्लेषण की क्षमता, तार्किक व्याख्या की कुशलता तथा प्रतिवेदन में वस्तुनिष्ठता इत्यादि के माध्यम से वैयक्तिक अध्ययन के विभिन्न चरणों/सोपानों को पार करता है।

3.1.5. वैयक्तिक अध्ययन में सूचनाओं के स्रोत

वैयक्तिक अध्ययन में अनुसंधानकर्ताओं द्वारा विविध प्रकार के स्रोतों एवं प्रविधियों का उपयोग किया गया है। इस दृष्टिकोण से, इसे बहमुखी प्रकृति वाली विधि की संज्ञा प्रदान की जा सकती है। नेल्स एण्डरसन (1923) ने 'होबों' लोगों के जीवन पद्धति की आन्तरिक संरचना का अध्ययन हेतु सर्वप्रथम उनके समूह में गाये जाने वाले लोक गीतों, गाथाओं तथा उनकी कविताओं का उपयोग किया। तत्पश्चात् विभिन्न संस्थाओं द्वारा 'होबो लोगों' के जीवन के बारे में ज्ञान प्राप्त करने हेतु प्रकाशित सांख्यकीय तथ्य एकत्र किये गये। इसी क्रम में, उनकी वंशावलियाँ, फोटो तथा निकटवर्ती व्यक्तियों से भी विविध प्रकार की सूचनाओं का संग्रह किया गया। इन्हीं स्रोतों के माध्यम से एण्डरसन 'होबों लोगों' के जीवन की

आन्तरिक विशेषताओं तथा उनके सामाजिक संगठन के बारे में व्यावहारिक नियमों के स्थापना में सफल हो पाया। यदि हम वैयक्तिक अध्ययन के अन्तर्गत प्रयोग में लाये जाने वाले स्रोतों की प्रकृति का ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं, तो उन्हें दो भागों में विभाजित कर उनका अध्ययन किया जा सकता है : वैयक्तिक अध्ययन के प्राथमिक स्रोत एवं वैयक्तिक अध्ययन के द्वैतियक स्रोत।

1. **प्राथमिक स्रोत :** वैयक्तिक अध्ययन में अनुसंधानकर्ता चयनित इकाई से संबंधित विविध तथ्यों का संग्रह प्राथमिक सूचनाओं के माध्यम से करता है। इस दृष्टिकोण से वह व्यक्तिगत स्तर पर अवलोकन एवं साक्षात्कार प्रणालियों द्वारा प्रत्यक्ष रूप से आवश्यक सूचनाओं को एकत्र करता है। तत्पश्चात अन्य प्रकार के तथ्य प्राप्त करने तथा संकलित सूचनाओं का सत्यापन करने के उद्देश्य से उसके द्वारा अध्ययन की इकाई से संबंधित व्यक्ति के मित्रों, पड़ोसियों, पारिवारिक सदस्यों तथा अन्य सम्बन्धियों से सम्पर्क स्थापित किया जाता है। प्राथमिक स्रोतों के माध्यम से न केवल विविध प्रकार की आवश्यक सूचनाओं को संग्रह किया जाता है बल्कि उनकी विश्वसनीयता भी स्थापित की जाती है। प्राथमिक स्रोतों द्वारा प्राप्य तथ्य अनोपचारिक तथा आन्तरिक प्रकृति दोनों प्रकार के हो सकते हैं।
2. **द्वैतियक स्रोत :** प्राथमिक स्रोतों के अतिरिक्त वैयक्तिक अध्ययन के अन्तर्गत सूचनाओं के संकलन के लिए द्वैतियक स्रोत भी महत्वपूर्ण होते हैं। सामान्य तौर पर ये द्वितीयक स्रोत अनेक प्रकार के वैयक्तिक प्रलेखों जैसे डायरी, वैयक्तिक पत्र एवं लेख इत्यादि के रूप में होते हैं जो व्यक्तियों, समूहों, समुदायों से संबंधित महत्वपूर्ण सूचनायें प्रदान करते हैं। ये वैयक्तिक प्रलेख इच्छित अथवा अनिच्छित रूप से रचनाकार की मानसिक विशेषताओं तथा वाॅय परिवेश से संबंधित विविध प्रकार के तथ्य प्रस्तुत करते हैं, जो वैयक्तिक अध्ययन के विभिन्न सोपानों के दौरान उपयोगी सूचनायें प्रदान करते हैं। इस विधि के अन्तर्गत जिन द्वितीयक स्रोतों का उपयोग किया जा सकता है, उनमें डायरियाँ, पत्र, जीवन इतिहास, लेख, वंशावली प्रलेख, जीवन गाथा तथा विभिन्न संगठनों द्वारा सुरक्षित रिकार्ड इत्यादि हैं। कुछ प्रमुख द्वैतियक स्रोत का विवरण निम्नवत् है-
    1. **दैनन्दिनियाँ (डायरियाँ) :** दैनन्दिनियाँ (डायरियाँ) अत्यन्त महत्वपूर्ण द्वैतियक स्रोत हैं जो अन्य स्रोत से प्राप्त वैयक्तिक आंकड़ों को अधिक पूर्ण बनाती हैं। दैनन्दिनियाँ व्यक्ति द्वारा स्वयं लिखी जाती हैं तथा इसमें व्यक्ति अत्यधिक स्वाभाविक रूप से अपने जीवन की महत्वपूर्ण घटनाओं एवं संस्मरणों को लेखबद्ध करता रहता है। ये व्यक्ति के नये सम्पर्कों तथा उसके द्वारा आवश्यक समझे गये अनुभवों पर प्रकाश डालती हैं, तथा उसके व्यक्तिगत अनुभवों को स्पष्ट करने वाली टीकाएँ प्रदान करती हैं। इनकी प्रकृति गोपनीय होती है अत: इसमें व्यक्ति के जीवन सम्बन्धी अनेक महत्वपूर्ण सूचनाओं और रहस्यों का उल्लेख होता है। चूँकि यह प्रतिदिन लिखी जाती है, अत: इसमें व्यक्ति के जीवन से संबंधित छोटी सी छोटी बातों का समावेश होता रहता है। इसके माध्यम से व्यक्ति की भावनाओं, मनोवृत्तियों, गोपनीय क्रियाओं, सफलताओं तथा असफलताओं

को बहुत स्वाभाविक रूप से समझा जा सकता है। दैनन्दिनियाँ द्वितीयक स्रोत में महत्वपूर्ण इसलिए भी हैं, क्योंकि इसके माध्यम से उन अनेक तथ्यों से अवगत हुआ जा सकता है जिन्हें साक्षात्कार अथवा अवलोकन के द्वारा नहीं समझा जा सकता।

2. **वैयक्तिक पत्र :** वैयक्तिक पत्रों के अन्तर्गत अन्तरंग सामग्री उपलब्ध होती है। ये व्यक्तिगत मनोवृत्तियों, संदेशों, संवेगात्मक प्रतिक्रियाओं तथा निजी अभिरूचियों को स्पष्ट करते हैं, जिन्हें अन्य दस्तावेज स्पष्ट करने में असमर्थ होते हैं। थामस और नैनकी ने अपने शोध अध्ययनों में विस्तृत स्तर पर पत्रों का प्रयोग किया। उनकी आधारभूत मान्यता यह थी कि व्यक्ति का विश्व के प्रति अभिमुखीकरण जानने के लिए भावनात्मक कारकों का अध्ययन करना आवश्यक है। उनके अनुसार इस मानवीय दस्तावेज के माध्यम से ही उन वास्तविक मानवीय अनुभवों एवं मनोवृत्तियों जो पूर्ण जीवित एवं वास्तविक सामाजिक वास्तविकता का निर्माण करते हैं, तक पहुँचा जा सकता है।
3. **जीवन-इतिहास :** किसी व्यक्ति के जीवन-इतिहास से वैयक्तिक अध्ययन में विस्तृत एवं स्पष्ट जानकारी प्राप्त होती है। वैयक्तिक जीवन इतिहास को सामान्यतया इसमें लेखक स्वयं अपने जीवन की भावनाओं एवं अनुभवों के बारे में अपनी ही भाषा में लिखता है। थामस और नैनकी ने जीवन इतिहास दस्तावेजों का व्यापक प्रयोग किया है। इनका उद्देश्य सम्पूर्ण जीवन चक्र अथवा उसकी किसी एक विशिष्ट प्रक्रिया का अध्ययन करना होता है। यह जीवन चक्र किसी एक व्यक्ति, परिवार, संस्था, संगठन, सामाजिक समूह अथवा समुदाय के रूप में किसी एक वैयक्तिक इकाई से संबंधित हो सकता है।
4. **अन्य वैयक्तिक दस्तावेज :** उपरोक्त द्वितीयक सामग्रियों जैसे दैनन्दिनियाँ, वैयक्तिक पत्र, जीवन-इतिहास के अतिरिक्त अन्य वैयक्तिक दस्तावेज, जैसे आत्मकथायें, स्वीकारोक्तियां भी वैयक्तिक अध्ययन में सहायक हो सकते हैं। आल्पोर्ट (1942 रू 12) ने इन्हें आत्म-प्रकटन करने वाले अभिलेख कहा है, ''जो इरादे के बिना अथवा इरादे के साथ लेखक के मानसिक जीवन की संरचना, गतिकी तथा क्रिया से संबंधित सूचना प्रदान करते हैं।'' वैयक्तिक दस्तावेज जीवन की उन परिस्थितियों में अनुभव की निरन्तरता का प्रतिनिधित्व करते हैं जो उसके व्यक्तित्व, सामाजिक व्यवहार तथा जीवन दर्शन पर प्रकाश डालते हैं और जो सामाजिक वास्तविकता से सम्बन्ध बनाते हुए सम्पूर्ण जीवन परिस्थिति तथा वैयक्तिक संगठन के सम्बन्ध में अन्तदर्ष्टि प्रदान करते हैं।

3.1.6. वैयक्तिक अध्ययन का महत्व

सामाजिक घटनाओं तथा समस्याओं के अत्यधिक सूक्ष्म एवं गहन अध्ययन में वैयक्तिक अध्ययन पद्धति अत्यधिक व्यावहारिक एवं उपयोगी सिद्ध हुई है। वर्तमान में यह तथ्य प्रमुख रूप से स्वीकार किया जाने लगा है कि, अधिकांश सामाजिक समस्याओं की प्रकृति व्यक्तिगत होती है तथा वैयक्तिक अध्ययन के आधार पर ही उनके समाधान के व्यावहारिक आधारों को ढूढ़ा जा सकता है। मानसिक चिकित्सा का तो सम्पूर्ण विकास वैयक्तिक अध्ययन और उसके सफल प्रयोग से ही संबंधित रहा है। वास्तव में, वैयक्तिक अध्ययन-विधि सैद्धान्तिक एवं व्यवहारिक दोनों दृष्टियों से उपयोगी समझी गई है। इसी परिप्रेक्ष्य में इस विधि के गुणों एवं उपयोगिता को निम्नांकित रूप से समझा जा सकता है :

1. वैयक्तिक अध्ययन के द्वारा किसी भी सामाजिक इकाई अथवा इकाईयों का अत्यधिक सूक्ष्म एवं गहन अध्ययन किया जा सकता है।
2. वैयक्तिक अध्ययन के द्वारा विभिन्न इकाईयों को सूक्ष्म एवं गहन अध्ययन की सहायता से अनेक उपयोगी तथा व्यवस्थित परिकल्पनाओं का निर्माण किया जा सकता है, जो इस अध्ययन के साथ-साथ नये अध्ययनों के लिए आधार के रूप में काम कर सकती है।
3. वैयक्तिक अध्ययन के अन्तर्गत अनेक महत्वपूर्ण तथ्यों की जानकारी प्राप्त होने के बाद उस अध्ययन अथवा अन्य संबंधित अध्ययन के परिप्रेक्ष्य में प्रयोग लाये जाने वाले प्रपत्रों जैसे, प्रश्नावली अथवा साक्षात्कार-अनूसूची में सुधार करने का समुचित अवसर प्राप्त हो जाता है।
4. वैयक्तिक अध्ययन के द्वारा ही यह सम्भव हो सकता है कि अध्ययन से संबंधित क्षेत्र, विभिन्न विशेषताओं का प्रतिनिधित्व करने वाली इकाइयों तथा एक ही श्रेणी की इकाइयों में से किस प्रकार सर्वोत्तम निदर्शन प्राप्त किया जा सकता है।
5. सामाजिक सर्वेक्षण तथा अनुसंधान में केवल विषय से संबंधित इकाइयों का अध्ययन करना ही पर्याप्त नहीं होता बल्कि प्राय: जो इकाईयाँ सर्वप्रथम ऊपर से अध्ययन की विरोधी अथवा निरर्थक प्रतीत होती हैं, उनके द्वारा भी कुछ महत्वपूर्ण तथ्यों का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। ऐसी विरोधी अथवा निरर्थक इकाइयों का ज्ञान वैयक्तिक अध्ययन के अतिरिक्त अन्य विधि से प्राप्त नहीं किया जा सकता।
6. वैयक्तिक अध्ययन विधि के द्वारा चयनित सामाजिक इकाई से सम्बद्ध प्रलेखों का विस्तार से अध्ययन करते-करते अनुसंधानकर्ता के ज्ञान में ही वृद्धि नहीं होती बल्कि अध्ययन के प्रति उसकी रूचि में भी वृद्धि हो जाती है, जिससे उसे अध्ययन के विभिन्न पक्षों का विश्लेषण करने की स्वयं ही एक अन्रतदृष्टि प्राप्त हो जाती है। विषय के प्रति अनुसंधानकर्ता में रूचि एवं ज्ञान बहुत बड़ी सीमा तक अध्ययन की सफलता का परिचायक होता है।
7. चूँकि सामाजिक तथ्य प्रकृति से गुणात्मक होते हैं, वैयक्तिक अध्ययन सामाजिक इकाई/इकाइयों से सम्बन्धी व्यक्तियों की रूचियों, मनोवृत्तियों, सामाजिक मूल्यों तथा विशेष परिस्थितियों में उनकी प्रतिक्रियाओं से भली-भाँति संबंधित होने के बाद वैज्ञानिक हो जाता है। इस दृष्टि से,

मनोवृत्तियों से सम्बन्धी गुणात्मक विशेषताओं का अध्ययन करने में वैयक्तिक अध्ययन विधि ही सबसे उपयोगी है।

8. वैयक्तिक अध्ययन एक ऐसी विधि है जिसके द्वारा चयनित इकाई के अतीत, वर्तमान तथा भविष्य को समझकर एवं उनका समन्वय करके निष्कर्ष प्राप्त करना सम्भव होता है।
9. वैयक्तिक अध्ययन विधि के माध्यम से प्रारम्भिक स्तर पर समस्या से सम्बद्ध इकाईयों की जानकारी प्राप्त कर लेने के पश्चात् किसी भी बड़े अध्ययन को प्रारम्भ करने के लिए उसके समग्र का निर्धारण, निदर्शन की प्राप्ति तथा उपकरणों के निर्माण में सहायता मिलती है।

सारांश में, वैयक्तिक अध्ययन से प्राप्त निष्कर्ष उस समय अत्यधिक उपयोगी हो सकते हैं जब हम विशिष्ट क्षेत्रों में कुछ विशिष्ट स्रोत एवं प्रविधियों के प्रयोग से अध्ययन कार्य से प्राप्त परिणामों (निष्कर्षों) में एकीकरण करने का प्रयास करें। यह एकीकरण विभिन्न विधा विषयों के स्तर भी किया जाना चाहिए। आज सामाजिक अनुसंधान के क्षेत्र में प्रयोग किये जाने वाले सभी अभिगम अन्तर्विषयी है, और हम विभिन्न क्षेत्रों में उपलब्ध ज्ञान का अधिक से अधिक उपयोग करते हुए सामाजिक अनुसंधान की सभी विधियों, जिसमें वैयक्तिक अध्ययन विधि भी सम्मिलित है, को संचालित करना चाहते हैं। ऐसा इसलिए है, क्योंकि हम आधुनिक नागरिक औद्योगिक समाज की जटिलता तथा उसके परिप्रेक्ष्य में किसी भी घटना के घटित होने के लिए उत्तरदायी कारकों की बहुलता को स्वीकार करते हैं। अत: अन्तर्विषयी केन्द्रित वैयक्तिक अध्ययन सामाजिक वास्तविकता को उसकी अधिक पूर्णता में तथा अधिक वस्तुनिष्ठ ढंग से देखने का अवसर प्रदान कर सकते हैं।

वैयक्तिक अध्ययन की सीमाएँ

इसमें कोई संदेह नहीं है कि वैयक्तिक अध्ययन अपने गुणात्मक प्रकृति के कारण बहुत महत्वपूर्ण विधि प्रमाणित हुई है। परन्तु साथ-साथ यह भी स्वीकार किया गया है कि इसकी कुछ अंतनिर्हित सीमाएँ हैं, जो इसे दोष रहित स्थापित नहीं कर पाती। ब्लूमर (1939) ने तो यहाँ तक कह दिया कि वैयक्तिक अध्ययन-विधि स्वतन्त्र रूप से अपर्याप्त और अवैज्ञानिक होने के साथ ही सिद्धान्तों के निर्माण में अव्यवहारिक सिद्ध हुआ है। ब्लूमर का यह कथन वैयक्तिक अध्ययन को केवल एक पूरक विधि के रूप में ही उपयोगी मानता है।

वैयक्तिक अध्ययन विधि के अन्तर्गत तैयार किये गये अभिलेखों द्वारा प्रत्यक्षीकरण, स्मृति, निर्णय, असामान्य घटनाओं इत्यादि पर आवश्यकता से अधिक बल दिये जाने की विशेष प्रवृत्ति के कारण अचेतन रूप से पूर्वाग्रह की त्रुटियाँ हो जाती हैं। आंकड़ों की प्रकृति भावानात्मक होने के कारण इनकी वस्तुनिष्ठ रूप से जाँच नहीं की जा सकती है। निदर्शन का प्रयोग न किये जाने के कारण प्रतिनिधित्वपूर्णता की कमी होती है तथा किये जाने वाले सामान्यीकरण विश्वसनीय नहीं होते क्योंकि ये कुछ विशेष प्रकार के व्यक्तियों से प्राप्त की गई सूचना पर आधारित होते हैं। इस विधि के अन्तर्गत कोई ऐसी तकनीक नहीं होती जिसके द्वारा वैयक्तिक दस्तावेजों की प्रमाणिकता की जाँच हो सके। अध्ययन के

लिए जिन इकाइयों का चुनाव किया जाता है उनका प्रतिचयन किसी वैज्ञानिक प्रणाली द्वारा न करके सुविधापूर्वक रूप से कर लिया जाता है।

रीड बेन (1929) ने सामाजिक अनुसंधानों में वैयक्तिक अध्ययनों द्वारा सार्थक वैज्ञानिक सामग्री उपलब्ध कराने में सन्देह व्यक्त करते हुए कहा कि, अवैयक्तिकता, सार्वभौमिकता, गैरनैतिकता, गैर-व्यावहारिक तथा घटनाओं की पुनरावृत्ति की दृष्टि से जीवन अभिलेख महत्वपूर्ण नहीं होते।' रीड बेन ने इसकी निम्नांकित सीमाओं/कमियों का उल्लेख किया है :-

1. जितना अधिक तारतम्य स्थापित होगा उतना ही ज्यादा सम्पूर्ण प्रक्रिया वस्तुगत होगी।
2. विषय स्व-न्याय प्रतिपादक हो जाता है न कि तथ्यात्मक।
3. उत्तरदाता की साहित्यिक चाह उसे बहका सकती है।
4. उत्तरदाता वास्तविकता की तुलना में आत्म-औचित्य पर अधिक बल दे सकता है।
5. अनुसंधानकर्ता स्वयं यह देखना चाहता है कि उसके उद्देश्यों की पूर्ति हो रही है अथवा नहीं।
6. जीवन दस्तावेज प्रदान करने वाले अधिकतर उत्तरदाता समस्याग्रस्त होते हैं।
7. अनुसंधानकर्ता प्राय: उत्तरदाता की सहायता करता है।
8. बहुसंख्यक चरों के समग्र में वैयक्तिक परिस्थितियाँ प्राय: अतुलनीय होती हैं।
9. जीवन दस्तावेजों के लिए वैज्ञानिक शब्दावली का विकास किया जाना होता है।

उपरोक्त सीमाओं के होते हुए भी, वैयक्तिक अध्ययन की कमियों पर अनुसंधानकर्ताओं को विशेष रूप से प्रशिक्षित कर विजय प्राप्त की जा सकती है। इस विशेष प्रशिक्षण का यह प्रमुख उत्तरदायित्व होना चाहिए कि, सुप्रशिक्षित व्यक्ति किसी-न-किसी स्रोत का प्रयोग करते हुए आंकड़ों को एकत्रित करें, उनकी जाँच करें, उन्हें प्रतिदर्शित एवं विश्लेषित करें। सुप्रशिक्षित व्यक्तियों से यह अपेक्षा की जा सकती है कि वे इस विशेष प्रशिक्षण के माध्यम से वैयक्तिक अध्ययन के अन्तर्गत अन्वेषण एवं अभिलेखन के क्रमबद्ध ढंगों को विकसित करते हुए उनका अधिक से अधिक उपयोग करने में सक्षम होंगे।

ऐतिहासिक पद्धति

3.1.7. ऐतिहासिक पद्धति की परिभाषा- ऐतिहासिक पद्धति अध्ययन कि वह प्रणाली है जिसके अंतर्गत ऐतिहासिक घटनाओं या अतीत के तथ्यों के क्रम विकास, अनियमितताओं एवं सामाजिक प्रभाव के संदर्भ में वर्तमान सामाजिक सांस्कृतिक घटनाओं की व्याख्या व विश्लेषण किया जाता है।

संक्षेप में, हम यह कह सकते हैं कि 'अतीत' की सहायता से 'वर्तमान' को समझने की पद्धति को ही ऐतिहासिक पद्धति कहते हैं। ऐतिहासिक पद्धति की प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित हैं-

रेडक्लिफ-ब्राउन के अनुसार ऐतिहासिक पद्धति वह पद्धति है जिसमें की वर्तमान काल में घटित होने वाली घटनाओं को भूतकाल में घटित हुई घटनाओं के धाराप्रवाह वह क्रमिक को एक कड़ी के रूप में मानकर अध्ययन किया जाता है।

पी वी यंग के अनुसार ऐतिहासिक पद्धति का आगमन के सिद्धांतों के आधार पर अतीत की उग्र सामाजिक शक्तियों की खोज है जिन्होंने की वर्तमान को ढाला है।

ऐतिहासिक पद्धति के अंतर्गत भूतकाल की विभिन्न घटनाओं व सामाजिक शक्तियों की अनुक्रम के अध्ययन के आधार पर आगमन प्रणाली के अनुसार (अर्थात विशिष्ट से सामान्य, सूक्ष्म से व्यापक सत्य की प्रतिष्ठापना) करते हैं। इस प्रकार ऐतिहासिक पद्धति व अध्ययन प्रणाली है जिसमें की सर्वप्रथम घटनाओं, तथ्यो तथा मनोवृत्तियों के भूत कालीन झुकाव या रब अंखियों से तथा मानवीय चिंतन वखरिया में विकास के क्रम को खोज निकाला जाता है और उससे प्राप्त परिणामों तथा उनसे संबंधित नियमों को प्रतिपादित करने का प्रयत्न किया जाता है।

ऐतिहासिक पद्धति की आवश्यकताएं- ऊपरी तौर पर देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि ऐतिहासिक पद्धति(अतीत के आधार पर वर्तमान की अध्ययन पद्धति) अत्यंत सरल है। परंतु वास्तविकता यह है कि यह अन्य पद्धतियों से कहीं अधिक जटिल है क्योंकि इस पद्धति को काम में लाने के लिए अपने अध्ययन विषय से संबंधित अतीत के कथित करने तथा एक विशिष्ट संदर्भ में उन तथ्यों के वास्तविक महत्व को आंकने के लिए पर्याप्त अनुभव की आवश्यकता होती है। जब तक यह न समझ लिया जाए कि पक्षियों का एक वर्ग किस विशिष्ट पर्यावरण से संबंधित है तब तक उन तथ्यों से वैज्ञानिक उद्देश्यों की पूर्ति संभव नहीं है। पर यह कार्य सरल नहीं है क्योंकि कोई भी पर्यावरण सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक आदि अवस्थाओं की
एक जटिलता होती है।

अतः ऐतिहासिक पद्धति को उपयोग में लाने के लिए अनुसंधानकर्ता में कुछ बातों का होना आवश्यक है। ऐतिहासिक पद्धति की इन अनिवार्य आवश्यकताओं को हम इस प्रकार प्रस्तुत कर सकते हैं-

1. सामाजिक अंतर्दृष्टि- सामाजिक घटनाओं के कार्य कारण संबंध व परिणामों को समझने के लिए सामाजिक अंतर्दृष्टि का होना आवश्यक है। घटनाएं, मत तथा संस्थाएं एक समय विशेष के एक विशिष्ट परिस्थिति या पर्यावरण की उपज होती हैं। इस सामाजिक परिस्थितियां पर्यावरण को समझने की शक्ति का होना आवश्यक है क्योंकि उसे समझे बिना सामाजिक घटनाओं को समझाना संभव नहीं है। यही सामाजिक अंतर्दृष्टि है जिसका वास्तव में अर्थ है पर्यावरण के संबंध में घटनाओ में तथ्यों का अध्ययन।
2. ऐतिहासिक अभिस्थापना- ऐतिहासिक पद्धति को काम में लाने के लिए यह भी आवश्यक है कि तथ्यों या घटनाओं को उनकी जाति आशिक पृष्ठभूमि पर देखा जाए। ऐतिहासिक पद्धति के अंतर्गत जो व्यक्ति अतीत की घटनाओं की विवेचना कर रहा है उसे ठीक ठीक किया भी खोज निकालना होगा कि कोई घटना विचार या संस्था कैसे कब और क्यों घटित हुई अर्थात ऐतिहासिक तौर पर एक घटना के कार्य कारण को स्पष्ट करना आवश्यक है। इस ऐतिहासिक दृष्टिकोण को अपनाए बिना अतीत के संदर्भ में वर्तमान का अध्ययन संभव नहीं है।
3. विश्लेषणात्मक व सामान्वयात्मक दृष्टिकोण - ऐतिहासिक पद्धति को काम में लाते समय विश्लेषणात्मक व समन्वय आत्मक दृष्टिकोण को अपनाना आवश्यक है। इतिहास अतीत के

आंचल पर बिखरे हुए आश्रम पद्धति आओं का एक दस्तावेज या रिकॉर्ड मात्र नहीं अभी तो एक समय और परिस्थिति विशेष में पाई जाने वाली संबंधित सामाजिक जीवन का विश्लेषणात्मक विवरण है अतः ऐतिहासिक पद्धति के अंतर्गत अध्ययन करने वाले अनुसंधानकर्ता के लिए यह आवश्यक है कि वह अध्ययन विषय से संबंधित समस्त अतिथियों का शब्द रूप से विश्लेषण करें और साथ ही अतीत के साथ वर्तमान का समन्वय करने वाले आधारों को खोज निकाले।

4. वस्तुनिष्ठ अध्ययन- यथार्थ का किसी भी विज्ञान की प्रथम आवश्यकता है। वास्तव में जैसा है उसी रूप में उस घटना विशेष का अध्ययन करना वस्तुनिष्ठ अध्ययन कहलाता है। अतः इस पद्धति के अंतर्गत वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण का अपनाया जाना अत्यंत आवश्यक है।
5. विश्वसनीय तथा संबद्ध तथ्यों का संकलन- वस्तुनिष्ठ अध्ययन के लिए यह आवश्यक है कि केवल विश्वसनीय एवं संबंधित तथ्यों का ही संकलन किया जाए। ऐतिहासिक स्रोतों से हमें असंख्य विविध प्रकार के तथ्यों की प्राप्ति हो सकती है। परंतु ऐतिहासिक पद्धति को वस्तुनिष्ठ वैज्ञानिक आधार पर प्रतिष्ठित करने के लिए यह आवश्यक है कि हम उन विविध वसंत प्रकार के तत्वों में से केवल उन तथ्यों को ही सावधानी से चुलने जो कि अध्ययन विषय से वास्तविक अर्थ में संबंधित हैं तथा जो कि उस विषय पर वास्तव में कुछ रोशनी डाल सकते हैं।
6. कार्य के सामान्य क्षेत्र से परिचित होना- ऐतिहासिक पद्धति को काम में लाने के लिए यह भी आवश्यक है कि अनुसंधानकर्ता को उसके अध्ययन विषय के क्षेत्र के संबंध में स्पष्ट ज्ञान हो। अता ऐतिहासिक पद्धति को प्रभावशाली ढंग से उपयोग में लाने के लिए पर्याप्त विस्तृत शैक्षिक योग्यता की आवश्यकता होती है।
7. व्यक्तिगत सीमाओं के संबंध में जागरूकता- अनुसंधानकर्ता को इस संबंध में जागरूक रहना होगा कि ऐतिहासिक तथ्यों या घटनाओं को समझने व उनका विश्लेषण करने एवं तथ्यों के स्रोतों तक पहुंचने के मामले में उसकी व्यक्तिगत सीमाएं क्या हैं साथ ही उसे अपनी सीमा को स्वीकार करना होगा कि विश्व में उपलब्ध इतिहासिक तथ्यों के सभी स्रोतों तक उसकी पहुंच संभव नहीं है। पर इससे उसे हताश होने की कोई जरूरत नहीं, अपितु प्राप्त हो सकता है उसी की सहायता से वस्तुनिष्ठ अध्ययन करने में अधिक उत्साह जुड़ जाना चाहिए।
8. प्रचुर कल्पनाशक्ति- ऐतिहासिक पद्धति को काम में लाने वाले अनुसंधानकर्ता में प्रचुर मात्रा में कल्पना शक्ति का होना भी आवश्यक है। वह बुद्धिमान हो, केवल इतना ही पर्याप्त नहीं जब तक की अनुसंधान कार्य में अंतर्निहित समस्त संभावित ऐतिहासिक परिस्थितियों के विषय में पहले से ही कल्पना कर लेने की शक्ति उसमें नहीं है।

3.1.8. ऐतिहासिक तथ्यों के स्रोत

ऐतिहासिक पद्धति का प्रमुख आधार ऐतिहासिक तथ्य ही है और इन पक्षियों को एकत्रित करने में 3 स्रोत हैं-

1. वे प्रलेख तथा अन्य ऐतिहासिक सामग्री जिन तक की स्वयं इतिहासकार की पहुंच है।
2. सांस्कृतिक इतिहास तथा विश्लेषणात्मक इतिहास की सामग्री।
3. विश्वसनीय निरीक्षकों तथा गवाहों की व्यक्तिगत सूचना।

लुंडबर्ग ने ऐतिहासिक तथ्यों के दो स्रोतों का उल्लेख किया है-

1. प्रलेख, कागजात, शिलालेख, सिक्के आदि और

2. भू वैज्ञानिक स्तरण, खुदा यू से प्राप्त वस्तुएं आदि।

हम जानते हैं कि ऐतिहासिक दस्तावेज, प्राचीन ग्रंथ, शिलालेख आदि के माध्यम से हमें प्राचीन समाजों के बारे में अनेक महत्वपूर्ण रचनाएं प्राप्त होती रहती हैं। उदाहरणार्थ, ऋग्वेद के अध्ययन में उस काल के समाज व संस्कृति के संबंध में जानकारी प्राप्त की जाती है। उसी प्रकार मोहनजोदड़ो, हड़प्पा आदि से जो विविध अवश्य से प्राप्त हुए हैं उनसे सिंधु घाटी की सभ्यता के संबंध में कितने ही अद्भुत रहस्य उद्घाटित हुए हैं।

सांस्कृतिक इतिहास विभिन्न ऐतिहासिक युग में एक समाज की संस्कृति की उपलब्धियों के क्रम विकास को प्रस्तुत करता है जिसके माध्यम से समाज के सांस्कृतिक जीवन से संबंधित अनेक महत्वपूर्ण तथ्यों को संकलित किया जा सकता है।

आशिक पद्धति के प्रमुख चरण व सावधानियां- ऐतिहासिक पद्धति को वास्तव में उपयोगी बनाने के लिए अध्ययन प्रक्रिया के अलग-अलग चरण में निम्नलिखित सावधानियां बरतने की आवश्यकता होगी-

1. समस्या का चुनाव करना- वास्तव में अध्ययन विषय का चुनाव अनुसंधानकर्ता की अपनी योग्यता, अनुभव, दूरदर्शिता एवं अंतर्दृष्टि के संदर्भ में होना चाहिए। विषय का चुनाव करते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए-

क. अध्ययन का विषय इस प्रकार का होना चाहिए कि उसमें अनुसंधानकर्ता की रुचि हो। क्यों नहीं से सर्वेक्षण करता अधिक लगन और परिश्रम से कार्य करेगा और साथ ही विषय की गहराई तक पहुंचने का प्रयत्न कर सकता है। यदि समस्या का अध्ययन कठिन भी है तो भी उसने अपनी रुचि के कारण अनुसंधानकर्ता अधिक परिश्रम करने का प्रयत्न करता है कठिनाई को पार करने के प्रति प्रयत्नशील रहता है। उदाहरणार्थ, राष्ट्रीय महिला आयोग से जुड़ी सदस्य अक्षर महिलाओं पर हुए अत्याचार से संबंधित विषयों पर शोध करवाती हैं। ऐसी समस्याओं में से अनेक खुद पीड़ित होती हैं।

ख. अध्ययन का विषय ऐसा होना चाहिए जिस के संबंध में थोड़ा-बहुत पूर्व ज्ञान हमें हो, ढंग से आयोजित करने में अत्यधिक सहायक सिद्ध होता है। विज्ञान की प्रगति के लिए संबंधी विषयों का अध्ययन अधिक आवश्यक है।

ग. अध्ययन विषय को साधन सीमा के अंतर्गत होना भी आवश्यक है। इसका तात्पर्य है कि विषय इतना विस्तृत ना हो कि उसका अध्ययन यथार्थ रूप से संभव ना हो सके। अतः विषय का चुनाव अध्ययन के दृष्टिकोण से व्यावहारिक है या नहीं, यह जान लेना आवश्यक है, इसके लिए केवल काल्पनिक विचार पर्याप्त नहीं है।

घ. विषय का चुनाव करते समय उसकी गीता के संबंध में सचेत रहना आवश्यक है। उसे पहले यह देख लेना चाहिए कि उस विषय के संबंध में अध्ययनरत होने पर ज्ञान की वृद्धि के साथ-साथ सामाजिक उद्देश्य की पूर्ति या सामाजिक समस्याओं का निदान होने हेतु कारगर नीतियां बन सकती हैं या नहीं। सामाजिक समाज सुधार व सामाजिक प्रगति में भी सहायक सिद्ध हो, इस बात को ध्यान में रखते हुए विषय का चुनाव करना चाहिए।

ङ. अध्ययन की लागत दूसरी महत्वपूर्ण बात है जिसे ध्यान में रखना आवश्यक है। भारत जैसे विकासशील देशों में ऐतिहासिक तथ्यों को एकत्रित करने के स्रोत सीमित है। अतः इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि सीमित साधनों के अंतर्गत तथ्यों का संकलन किया जाए।

च. तथ्यों का संकलन- विश्वसनीय ऐतिहासिक तथ्यों का संकलन कोई सरल काम नहीं है और इसके लिए अत्यंत सावधानी बरतने की आवश्यकता होती है। सरकारी प्रलेख , गैर सरकारी प्रलेखों, मैं उपलब्ध प्रलेख या इंटरनेट पर उपलब्ध पर लेख किस हद तक और कब तक के तथ्य संकलन करने हैं, यह विषय भी शोधकर्ता की योग्यता पर निर्भर करता है। अक्सर इन स्रोतों का चुनाव करने का काम बहुत कठिन होता है, इसे सरल बनाने के लिए अपने से पूर्व के अध्ययनों के विषय में जानकारी प्राप्त करना आवश्यक हो जाता है।

4. संकलित तत्वों का परीक्षण- वैज्ञानिक निष्कर्ष तक पहुंचने के लिए आवश्यक तथ्यों का संकलन हो, वेद अध्ययन विषय से संबंध हूं तथा उन तथ्यों में पारस्परिक संबंध हो- इन सब बातों का भी ध्यान अनुसंधानकर्ता को रखना होगा संकलित सभी तथ्यों का सही उपयोग अनुसंधान की सफलता के लिए आवश्यक है। बैठ के तथा संबंधित तथ्यों के संकलन से सावधानीपूर्वक बचना चाहिए।

5. तत्वों का वर्गीकरण एवं संगठन का स्तर- तथ्यों का वर्गीकरण इस भांति होना चाहिए कि विभिन्न श्रेणी के तथ्य अलग अलग हो जाएं और साथ ही उनका तुलनात्मक महत्व ही स्पष्ट हो जाए। ऐतिहासिक तथ्य पौधा गुणात्मक तथा वर्णनात्मक होते हैं। अतः इनका वर्गीकरण करने में विशेष सावधानी बरतने की आवश्यकता है। सफल वर्गीकरण सफल अध्ययन के लिए बहुत जरूरी है।

तथ्यों का विश्लेषण एवं व्याख्या- वस्तुनिष्ठ विश्लेषण व व्याख्या वैज्ञानिक अध्ययन की कसौटी है। ऐतिहासिक पद्धति के अंतर्गत वस्तुनिष्ठता को बनाए रखना कठिन है क्योंकि इसमें बेतुके विचारों, कल्पना ओ, पक्षपातपूर्ण दृष्टिकोण, पूर्व धारणा याआदि के प्रवेश पा लेने की संभावनाएं अधिक होती हैं। इनसे सावधानीपूर्वक बचते हुए यथार्थ निष्कर्ष तक पहुंचने के लिए प्रयत्नशील होना आवश्यक है।

3.1.9. ऐतिहासिक पद्धति का महत्व - ऐतिहासिक पद्धति के महत्व को इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है-

1. किसी संस्कृतिक तत्व या संस्था अथवा सामाजिक घटना का वर्तमान रूप किस प्रकार से ऐतिहासिक विकास की प्रक्रिया का परिणाम है, इसकी व्याख्या को ऐतिहासिक पद्धति अपनाकर ही अधिक सरलता से प्रस्तुत किया जा सकता है।
2. ऐतिहासिक पद्धति सामाजिक सांस्कृतिक परिवर्तन की प्रक्रिया को समझाने में सहायक होती हैं। उमा शास्त्री आर्य समाज वैज्ञानिकों की विशेष रुचि परिवर्तन में होती है। जब सामाजिक परिस्थितियों, सामाजिक संस्थाओं आदि में परिवर्तन होता है, तो समाज की विभिन्न निर्माणक इकाइयों तथा सामाजिक संगठन के स्वरूपों में भी परिवर्तन हो जाता है। परिवर्तन व रूपांतरण की इस प्रक्रिया को ऐतिहासिक पद्धति के रूप में प्रयोग करके ही उचित व अच्छे ढंग से समझा जा सकता है।
3. ऐतिहासिक पद्धति का एक और महत्व यह भी है किसकी सहायता से समाज पर पड़ने वाले अतीत के महत्व का वैज्ञानिक मूल्यांकन संभव होता है। वर्तमान समाज केवल कुछ घटनाओं व इकाइयों का संकलन मात्र नहीं है- वह तो उन असंख्य तथ्यों व घटनाओं की संख्या में एक कड़ी मात्र है जिन्हें कि उस समाज की ऐतिहासिक परिस्थितियों ने उत्पन्न ने किया है। इसीलिए इतिहास जितना लंबा होगा, अतीत का प्रभाव भी उतना ही अधिक होगा और इस प्रभाव का सही ज्ञान ऐतिहासिक पद्धति के माध्यम से ही संभव है।
4. ऐतिहासिक पद्धति केवल अतीत के महत्व को ही नहीं अपितु वर्तमान की सही स्थिति को समझने में भी मदद करती है। अतीत वर्तमान की कुंजी है क्योंकि अतीत का वर्तमान दिशा सदैव कार्य कारण संबंध होता है। इस सत्य को मानना ही पड़ेगा कि किसी भी समाज का वर्तमान रूप अनेक स्तरों से गुजरता हुआ विकसित व संगठित होता है और इस विकास और संगठन की दिशा में असंख्य पीढ़ियों की घटनाओं का योगदान होता है।
5. ऐतिहासिक पद्धति का एक और महत्व यह है कि इसकी सहायता से उन ऐतिहासिक सामाजिक शक्तियों का सही परिचय मिल जाता है जो कि समाज की वर्तमान व्यवस्था के लिए उत्तरदाई है। अतीत वर्तमान के अनेक रहस्य को उद्घाटित करने में सहायक सिद्ध हो सकता है। सामाजिक शक्तियों के इस क्रम विकास को समझने में ऐतिहासिक पद्धति हमारी सहायक है।

ऐतिहासिक पद्धति की सीमाएं- ऐतिहासिक पद्धति जिस के महत्व पर वैज्ञानिकों नहीं है इसके बावजूद की कुछ सीमाएं हैं निम्न बिंदुओं में रेखांकित किया गया है-

1. विश्वसनीय वह पर्याप्त तथ्यों के संकलन में कठिनाई होती है। यह इस पद्धति की सबसे बड़ी सीमा है। इसके कारण सभी शोधार्थियों को विभिन्न समस्याओं का सामना करना पड़ता है। विश्वसनीय वह पर्याप्त तथ्यों को एकत्रित करना समस्या बन कर सामने आता है। तथ्य जितने ही प्राचीन होंगे शोधार्थी को आंकड़ों के संकलन में उतनी ही मुश्किल होगी।

2. इस पद्धति की दूसरी सबसे बड़ी सीमा यह है कि इसमें ऐतिहासिक तथ्यों का रिकार्ड उचित ढंग से नहीं रखा जाता है। सरकारी या गैर सरकारी तथ्यों पर शोधार्थी अधिक केंद्रित रहता है जबकि उन्हें एक क्रम से वर्गीकृत व्यवस्थित ढंग से रखने पर वह ध्यान नहीं देता।
3. प्रलेखों का बिखराव भी इस पद्धति की एक महत्वपूर्ण समस्या है। प्रलेखों के बिखरे हुए होने से तथ्यों के संकलन में समस्या होती है। इस प्रकार आवश्यकता संग्रह अत्यधिक समय तथा धन सापेक्ष होता है और पर्याप्त तथ्यों के अभाव में एक तरफा या त्रुटिपूर्ण निष्कर्षों की संभावना सदा ही बनी रहती है।
4. ऐतिहासिक पद्धति शोध प्रविधि में खोया घटनाओं की परीक्षा व पुनरावृति संभव नहीं होती है। कभी-कभी तो अति प्राचीन तथ्यों व घटनाओं का सहारा ऐतिहासिक पद्धति के अंतर्गत लेना पड़ता है। और कठिनाइयां है कि उन तथ्यों या घटनाओं की ना तो पुनः परीक्षा की जा सकती है और ना ही उस घटना को फिर दोहराया जा सकता है। यह दोनों ही सीमाएं ऐतिहासिक पद्धति की एक उल्लेखनीय कमियां बन जाती हैं वैज्ञानिक निष्कर्ष तक पहुंचने के लिए तथ्यों की पुनर परीक्षा आवश्यक है।
5. ऐतिहासिक पद्धति में सांख्यिकी पद्धतियों की भांति गणना एवं माप की गुंजाइश नहीं होती है। ऐतिहासिक तथ्य प्रायः गुणात्मक या वर्णनात्मक होते हैं और इसीलिए उनमें पक्षपात, दांत धारणाएं, अति रंजना आदि होने की संभावना सदा ही बनी रहती है जिसके कारण वैज्ञानिक निष्कर्षों तक पहुंचना कठिन हो जाता है।

उपरोक्त सीमाओं के कारण ही ऐतिहासिक पद्धति द्वारा किए गए अध्ययनों का विश्लेषण, व्याख्या निष्कर्ष उतना यथार्थ नहीं होता जितना कि दूसरी पद्धतियों द्वारा प्रस्तुत विश्लेषण व निष्कर्ष यथार्थ होते हैं। वास्तव में ऐतिहासिक अध्ययन व्यक्ति निष्ठ खोज ही होते हैं जो कि यथार्थ था या वास्तविकता के निकट तक ही पहुंच पाते हैं, यथार्थ या वास्तविक नहीं होते हैं। उपरोक्त सीमाओं के बावजूद कुछ विशिष्ट शोध हूं मैं पद्धति का प्रयोग अनिवार्य होता है।

3.1.10. सारांश

दोनों ही प्रविधियां गुणात्मक प्रविधियों के मध्य एक विशेष स्थान रखती हैं. दोनों का प्रयोग आवश्यकताओं के अनुरूप करना अनिवार्य हो जाता है. कई प्रकार शोध समस्याएं ऐसी होती हैं जिनका अध्ययन शोध की अत्यधिक प्रचलित विधियों से करना संभव नहीं होता है ऐसे में इन प्रविधियों का महत्त्व बढ़ जाता है. अतः अनेक सीमाओं के बावजूद उक्त दोनों प्रविधियां वर्तमान परिप्रेक्ष में भी अति प्रासंगिक हैं।

3.1.11. स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. वैयक्तिक अध्ययन प्रविधि को परिभाषित करें ?
2. वैयक्तिक अध्ययन प्रविधि के लाभ एवं समस्यायों का वर्णन करें
3. वैयक्तिक अध्ययन प्रविधि की प्रक्रिया एवं आंकड़ों के स्रोतों का वर्णन उदहारण सहित करें?
4. वैयक्तिक अध्ययन प्रविधि की सीमाओं का वर्णन.
5. वैयक्तिक अध्ययन प्रविधि के उद्देश्य एवं महत्वों को रेखांकित करें.
6. ऐतिहासिक पद्धति को परिभाषित करें ?
7. ऐतिहासिक पद्धति में उपयुक्त होने वाले तथ्यों के स्रोतों का वर्णन करें
8. ऐतिहासिक पद्धति के लाभ एवं समस्यायों का वर्णन करें
9. ऐतिहासिक पद्धति की प्रक्रिया का वर्णन उदहारण सहित करें?
10. ऐतिहासिक पद्धति के उद्देश्य एवं महत्वों को रेखांकित करें.

3.1.12. शब्दावली : ऐतिहासिक पद्धति, वैयक्तिक अध्ययन

3.1.13. संदर्भ ग्रंथ सूची

- सिंह, ए.के.(2008). सामाजिक विज्ञान में शोध विधियाँ. मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली.
- रावत, एच.(2013). सामाजिक शोध की विधियाँ.रावत प्रकाशन. जयपुर.
- त्रिपाठी, एल.बी.(2012). मनोवैज्ञानिक अनुसंधान पद्धतियाँ. एचपी भार्गव बुक हाउस, आगरा.
- कपिल, एच.के.(2004). व्यवहारिक अनुसंधान में शोध विधियाँ. विनोद पुस्तक मंदिर. आगरा.
- आर, मुखर्जी. (1969). सामाजिक शोध एवं सांख्यिकी. सरस्वती सदन, नई दिल्ली.

इकाई- 2 अंतर्वस्तु विश्लेषण

इकाई की रूपरेखा

3.2.0. उद्देश्य कथन
3.2.1. प्रस्तावना
3.2.2. अंतर्वस्तु विश्लेषण की परिभाषा
3.2.3. अंतर्वस्तु विश्लेषण विधि की विशेषताएं
3.2.4. अंतर्वस्तु विश्लेषण का संक्षिप्त इतिहास
3.2.5. अंतर्वस्तु विश्लेषण का उद्देश्य एवं महत्त्व
3.2.6. अंतर्वस्तु विश्लेषण की प्रक्रिया
3.2.7. अंतर्वस्तु विश्लेषण प्राविधि के प्रकार
3.2.8. अंतर्वस्तु विश्लेषण के लाभ
3.2.9. अंतर्वस्तु विश्लेषण की समस्याएं
3.2.10. सारांश
3.2.11. स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न
3.2.12. शब्दावली
3.2.13. संदर्भ ग्रंथ सूची

3.2.0. उद्देश्य कथन

- अंतर्वस्तु विश्लेषण प्रविधि की विभिन्न परिभाषाओं को भिन्न-भिन्न चिंतकों के दृष्टिकोणों से समझ सकेंगे।
- अंतर्वस्तु विश्लेषण प्रविधि ऐतिहासिक जानकारी प्राप्त कर पाएंगे।
- अंतर्वस्तु विश्लेषण प्रविधि के महत्त्व एवं उद्देश्यों को समझ सकेंगे।
- अंतर्वस्तु विश्लेषण प्रविधि के विभिन्न प्रकारों से प्रयोग कर पाएंगे।
- अंतर्वस्तु विश्लेषण प्रविधि के लाभों एवं समस्यायों के प्रति जागरूक हो सकेंगे।

3.2.1. प्रस्तावना

मानव व्यवहार का अध्ययन कई प्रकार से किया जा सकता है। सामाजिक विज्ञान के विषय में भिन्न-भिन्न प्रकार की विधियों का प्रयोग किया जाता है। बहुत सारे विज्ञान पूर्णतः प्रयोगात्मक विधियों का प्रयोग का प्रयोगशाला के अंदर करते हैं जिन्हें हम प्रयोगात्मक यह प्रयोगशाला शोध कहते हैं। हम समाज में व्यक्तियों का साक्षात्कार कर सकते हैं, उन्हें प्रश्नावली भरने को दे सकते हैं, उन पर प्रयोगशाला में परीक्षण कर सकते हैं, उन पर प्रक्षेपि विधियों का प्रयोग कर सकते हैं। यह सभी समाजशास्त्रीय तथ्यों के संकलन की प्रत्यक्ष विधियां हैं। किंतु, कई ऐसे शोध विषय और स्थितियां होती हैं, जिनके अध्ययन में इन विधियों का प्रयोग संभव नहीं होता या इनके द्वारा संकलित तथ्य विश्वसनीय नहीं होते। ऐसी स्थिति में कुछ अन्य विधियों का प्रयोग किया जाता है जिन्हें अप्रत्यक्ष विधियां कहा गया है। अंतर्वस्तु विश्लेषण या विषय-वस्तु विश्लेषण विधि भी इसी वर्ग में आती है। इस विधि में 'प्रयोज्य' या 'सूचनादाता' से प्रत्यक्ष सरोकार न रखते हुए विचारों, विश्वासों, मतों को दूसरे माध्यमों से जाना जाता है। इनमें से कुछ माध्यम तथ्य संकलन के द्वितीयक स्रोत की श्रेणी में आते हैं।

3.2.2. अंतर्वस्तु विश्लेषण प्रविधि की परिभाषा

कथावस्तु विश्लेषण (कंटेंट एनालिसिस) एक ऐसी पद्धति है जिसके माध्यम से लिखित, वाचिक अथवा दृश्य संदेशों का विश्लेषण किया जाता है (Cole,1988). इस विधि का सर्वप्रथम उपयोग समाचार पत्र, पत्रिका, लेख, विज्ञापनों एवं भाषणों के विश्लेषण के लिए किया गया था (Harwood & Garry 2003). वर्तमान में इसका प्रयोग संचार, पत्रकारिता, समाजशास्त्र, मनोविज्ञान व व्यापार में किया जा रहा है (Neundorf 2002).

कंटेंट एनालिसिस किसी घटना के वर्णन एवं विश्लेषण के लिए एक व्यवस्थित और वस्तुनिष्ठ शोध प्रविधि है(Krippendorff 1980, Downe-Wamboldt 1992, Sandelowski 1995). इसे *दस्तावेजों के विश्लेषण की विधि* भी कहा जाता है. कंटेंट एनालिसिस शोधार्थी की सैद्धांतिक मुद्दों के प्रति समझ को विस्तृत करने का कार्य करता है. विषयवस्तु विश्लेषण के माध्यम से हम बड़े शब्द समूहों को छोटे-छोटे सम्बंधित श्रेणियों में रख सकते हैं. ऐसा मान लिया जाता है कि एक श्रेणी के शब्दों, कथनों इत्यादि का अर्थ समान है (Cavanagh 1997).

विषय-वस्तु विश्लेषण आंकड़ों के लिए अनुकरणीय एवं वैध अनुमान की विधि जो आंकड़ों को उनके सन्दर्भ में विश्लेषित करती है, जिसका उद्देश्य ज्ञान का विस्तार, नई अन्तरदृष्टि, व्यवहार के लिए तथ्य एवं व्यावहारिक मार्गदर्शन उपलब्ध करवाना है Krippendorff 1980. परिघटना का संक्षिप्त एवं विस्तृत वर्णन, जिसका परिणाम संप्रत्ययों एवं श्रेणियों के रूप में होता है. प्रायः ऐसे सम्प्रत्ययों या श्रेणियों का उद्देश्य एक मॉडल का निर्माण, विचार की पद्धति का विकास, वैचारिक नक्सा या श्रेणियों का निर्माण होता है. शोधार्थी के समक्ष्य संप्रत्यय एवं श्रेणी, दो विकल्प होते हैं जिनमे से वह किसी का भी प्रयोग कर सकता है (Kyngas & Vanhanen 1999). उदाहरण के लिए जब शोधार्थी का उद्देश्य सिद्धांत निर्माण

होता है तो उसके लिए श्रेणी की अपेक्षा संप्रत्यय का उपयोग अधिक लाभदायक होता है जबकि विश्लेषण पद्धति को बताने के लिए श्रेणी का उपयोग किया जाता है.

पहले विषयवस्तु विश्लेषण विधि की आलोचना मात्रात्मक विधि से तुलना करके की जाती थी उनका कहना था की यह बहुत आसान विधि है तथा इसमें सांख्यिकी का कोई उपयोग नहीं होता है. दूसरी तरफ विषयवस्तु विश्लेषण को पुर्णतः गुणात्मक भी नहीं मन जाता था(Morgan 1993). कुछ समय पूर्व से विषयवस्तु विश्लेषण का प्रयोग मात्रात्मक एवं गुणात्मक दोनों रूपों में किया जाता है (Hsieh & Shannon 1993). इसमें अर्थ, भाव, महत्व तथा सन्दर्भ को अधिक महत्त्व दिया जाता है (Downe-Wamboldt 1992).

सामाजिक विज्ञान में जब शोध सामग्री शाब्दिक, सांकेतिक या गुणात्मक प्रकृति की होती है, तब इस प्रकार की सामग्री को व्यवस्थित बनाने, उसका वर्गीकरण करने हेतु जिस विधि का प्रयोग किया जाता है, उसे अंतर्वस्तु विश्लेषण विधि के नाम से जाना जाता है। पी वी यंग(1977) के अनुसार, "यह साक्षात्कारों, प्रश्नावलियों, अनुसूचियां तथा अन्य लिखित एवं मौखिक अभिव्यक्तियों द्वारा प्राप्त शोध तथ्यों (सामग्री) की विषयवस्तु के व्यवस्थित, वस्तुपरक और परिमाणात्मक विश्लेषण की एक शोध विधि है।"

बर्लसन (1952) इसे परिभाषित करते हुए लिखा है, "अंतर्वस्तु विश्लेषण शोध की एक ऐसी विधि है जिसके द्वारा संचार में व्यक्ति विषयवस्तु का वस्तुपरक, व्यवस्थित और परिमाणात्मक विश्लेषण किया जाता है।"

इसी प्रकार, होलेस्टि (1968) के अनुसार, "अंतर्वस्तु विश्लेषण एक ऐसी तकनीक है जिसके द्वारा व्यवस्थित एवं वस्तुपरक तरीके से संदेशों की विशिष्ट विशेषताओं के अर्थ को ज्ञात किया जाता है।"

एलेन ब्रायमैन (2001) के अनुसार, "अंतर्वस्तु विश्लेषण दस्तावेजों और अवतरणों के विशेषण का एक ऐसा उपागम या तरीका है जिसके द्वारा पूर्व निर्धारित श्रेणियों में व्यवस्थित एवं पुनरावृत्ति योग्य ढंग से अंतर्वस्तु का परिमाण किया जाता है।"

उपरोक्त परिभाषा ओं से स्पष्ट है कि इस विधि का प्रयोग मुख्यतः संचार सामग्री के विश्लेषण में किया जाता है। संचार या संप्रेषण का माध्यम मुद्रित, अखबार, पत्र-पत्रिकाएं, पंपलेट, पुस्तकें, सरकारी गैर/सरकारी प्रलेख, दस्तावेज, डायरियां, क्षेत्र प्रलेख, बैठकों की कार्रवाई, आदि आती हैं तथा श्रव्य दृश्य सामग्री में रेडियो, टीवी, फिल्म, इंटरनेट से प्राप्त संचार सामग्री हो सकती है। संक्षेप में, इन संचार माध्यमों से प्राप्त सामग्री के वस्तु परक, व्यवस्थित और परिमाणात्मक विश्लेषण को ही अंतर्वस्तु विश्लेषण कहते हैं।

3.2.3. अंतर्वस्तु विश्लेषण विधि की विशेषताएं

अंतर्वस्तु विश्लेषण की उपरोक्त सभी परिभाषाओं में इस विधि की तीन प्रमुख विशेषताओं पर जोर दिया गया है।

1. **वस्तुपरकता-** वस्तुपरकता प्रत्येक वैज्ञानिक विधि की एक प्रमुख विशेषता है। वस्तुपरकता से तात्पर्य ऐसे विश्लेषण से है जो कि निश्चित नियमों के आधार पर किया जाता है। जब विभिन्न शोधकर्ता समान संचार संदेशों या दस्तावेजों का अध्ययन करते हैं तो उनके निष्कर्षों में भी समानता होना आवश्यक है। यह वस्तुपरकता की जांच की एक प्रमुख कसौटी है।

   संचार की विषय वस्तु का विश्लेषण करते समय वर्गीकरण की क्या योजना होगी, अर्थात वर्ग 'अ' को वर्ग 'ब' से अलग करने के मापदंड क्या होंगे? इनकी क्या परिभाषाएं होंगी? अंतर्वस्तु की इकाई के संबंध में निर्णय किन मापदंडों के आधार पर किया जाएगा? इन प्रश्नों के बारे में निर्णय करते समय स्पष्ट एवं सुनिश्चित नियम निर्देशों का पालन करना जरूरी है। ये नियम निर्देश शोधकरता की अभिनति को नियंत्रित कर शोध निष्कर्षों को वस्तु पर बनाते हैं। तथ्यों के चयन के मान्य मापदंड एवं निर्देश शोधकर्ता की मनमानी प्रकृति पर नियंत्रण लगा विश्लेषण को वस्तुपरक बनाने में उसकी सहायता करते हैं। मापदंडों की शर्तों के कारण शोधकर्ता अपने अध्ययन में ऐसे तत्वों का समावेश नहीं कर पाता जो उसकी प्राकल्पना का उसकी इच्छा अनुसार समर्थन करने वाले होते हैं।
2. **व्यवस्थितता या क्रमबद्धता** - क्रमबद्धता विषय वस्तु विश्लेषण की एक महत्वपूर्ण विशेषता है। किसी भी शोध की यह प्राथमिक आवश्यकता होती है कि वह क्रमबद्ध तरीके से किया गया हो। क्रमबद्धता भंग होने पर शोध की विश्वसनीयता भी बाधित होती है। यह एक प्रकार से सुनिश्चित कार्यप्रणाली पर जोर देती है, अर्थात शोध की क्या प्रक्रिया होगी, इसके क्या चरण होंगे, इन चरणों में कम पता होना आवश्यक है।
3. **परिमाणीकरण-** 'परिमाणीकरण' या 'परिमाणन' प्रक्रिया विषय वस्तु की गणना और सांख्यिकी वर्गीकरण पर जोर देती है, अर्थात संचार की विषय वस्तु को निश्चित संख्यात्मक रूप में प्रस्तुत किया जाए। संख्यात्मकता सामग्री को संक्षिप्त रूप प्रदान कर उसे तुलना योग्य बनाती है। संख्यात्मक तथ्यों को समझना भी सरल होता है। जब हम यह कहते हैं कि भारत में 70% पुरुष और 30% स्त्रियां शिक्षित हैं, तब हमारा यह कथन परिमाणात्मकता को ही प्रकट करता है।
4. **सामान्यता-** शोध अध्ययन के निष्कर्षों की सैद्धांतिक सार्थकता होना भी जरूरी है। पूर्णता वर्णनात्मक अध्ययनों का कोई विशेष महत्व नहीं होता। ऐसी अध्ययन वैज्ञानिकता की कसौटी पर खरे नहीं उतरते। यदि हम किसी उपन्यास लेखक की पुस्तकों की विषय वस्तु के विश्लेषण के द्वारा निष्कर्ष निकालते हैं कि उक्त लेखक ने अपनी पुस्तकों में गरीबी शब्द का 250 पर प्रयोग किया है, करके विश्लेषण का तब तक कोई विशेष मूल्य नहीं होगा, जब तक हम इस शब्द को विषय वस्तु की कुछ अन्य विशेषताओं अथवा कथानक के पात्रों के चरित्रों आदि के साथ नहीं जोड़ते हैं। संचार की विषय वस्तु का कोई भी तक अब तक अर्थहीन रहता है जब तक उसे

किसी अन्य तथ्य के साथ नहीं जोड़ा जाता है और तथ्यों को जोड़ने का यह कार्य सिद्धांत द्वारा किया जाता है।

5. **संचार की विषयवस्तु विश्लेषण की विधि-** संचार की विषय वस्तु से तात्पर्य उन संकेतों (जो मौखिक, संगीतात्मक, चित्रात्मक, मूर्तिपरक, या मुखा भावात्मक हो सकते हैं) के पीछे छुपे अर्थ से जिसके द्वारा संप्रेषण किया जाता है। हमारा अधिकांश संप्रेषण शाब्दिक या प्रतीकात्मक व्यव्हार के द्वारा होता है। शाब्दिक संप्रेषण का रूप लिखित या मौखिक हो सकता है। क्या बोला जाता है अथवा क्या लिखा जाता है, इसका मानव जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ता है। अतः मानवीय व्यवहार के अध्ययन में संप्रेषण की अंतर्वस्तु का अध्ययन आवश्यक है। यहां 'अंतर्वस्तु' तात्पर्य उन साधनों से है जिनके द्वारा एक व्यक्ति अथवा कोई समूह दूसरे व्यक्ति या समूह को विचाराभिव्यक्ति करता है।

   संप्रेषण का मानवीय अंतरक्रिया में केंद्रीय स्थान है। सभी समूहों, संस्थाओं, संगठनों और यहां तक कि राष्ट्रों का अस्तित्व भी संप्रेषण पर आधारित है। संप्रेषण की कमी के कारण सभी प्रकार के संबंधों(पति-पत्नी के संबंधों से लेकर अंतरराष्ट्रीय संबंधों तक) में व्यवधान उत्पन्न हो जाता है, व्यवस्थाओं का अस्तित्व डगमगाने लगता है। यही कारण है कि कोहन (1963) में इसे सभ्यता का हृदय कहा है। अतः मानव इतिहास, व्यवहार, विचार, कला और संस्थाओं के अध्येता के संप्रेषण की प्रक्रिया और निष्पत्तियों का अध्ययन आवश्यक है। संप्रेषण में केंद्रीय स्थान विषय वस्तु का होता है और इसी का अध्ययन अंतर्वस्तु विश्लेषण विधि द्वारा किया जाता है।

6. **द्वितीयक तथ्यों के विश्लेषण की एक विधि-** इस विधि द्वारा द्वितीयक स्रोत जैसे दस्तावेज, अखबार, पत्रिका में छपे लेख, पुस्तक, पत्र, डायरियों आदि से प्राप्त तथ्यों का विश्लेषण किया जाता है। इस विश्लेषण की प्रक्रिया में तथ्यों का संकेतन वर्गीकरण और सारणीकरण करके निष्कर्ष निकाले जाते हैं। द्वितीयक तथ्य वे होते हैं जिनका संकलन अन्य शोधकर्ताओं द्वारा किसी अन्य उद्देश्य किया गया होता है। शोधकर्ता को इस प्रकार के ढेर सारे तथ्य विश्लेषण के लिए उपलब्ध हो सकते हैं।

7. **यह गुणात्मक और परिमाणात्मक दोनों प्रकार की एक विधि है-** एकहार्ड और हरमन (1977) के अनुसार, एक गुणात्मक विधि के रूप में अंतर्वस्तु विश्लेषण मनोभाव, प्रेरणाओं, और मूल्यों जैसी व्यक्तिपरक सूचनाओं का अध्ययन करता है जबकि एक परिमाणात्मक विधि के रूप में इसका प्रयोग किसी घटना की समय-आवृत्ति या समय-अवधि के निर्धारण में किया जाता है। एक परिमाणात्मक विधि के रूप में इसके द्वारा व्यक्तियों और समूहों के आचरण उद्देश्यों विचारधाराओं भावनाओं और मूल्यों के बारे में पता लगाया जाता है।

3.2.4. अंतर्वस्तु विश्लेषण : एक संक्षिप्त इतिहास

अंतर्वस्तु विश्लेषण शोध नामक इस नवीन विधि का विकास अभी कुछ वर्षों पूर्व हुआ है। इसके द्वारा जन संचार के साधनों के माध्यम से प्रचारित एवं प्रसारित व गुणात्मक प्रकृति की विषय सामग्री(अखबार, पत्र-पत्रिकाएं, पंपलेट, पुस्तकें, सरकारी गैर/सरकारी प्रलेख, दस्तावेज, डायरियां, क्षेत्र प्रलेख) को वैज्ञानिक तथ्यों में बदलने का प्रयास किया जाता है यद्यपि इसके पूर्व भी इतिहासकार और साहित्य समालोचक आदि अपने-अपने क्षेत्र की सामग्री का विश्लेषण करते रहे हैं किंतु उनके विश्लेषण में आज की इस नवीन विधि की भांति व्यवस्थितता था और वस्तुपरकता की कमी थी। उनका विश्लेषण और अपरिष्कृत, व्यक्तिपरक और अवैज्ञानिक अधिक था।

इस विधि का विकास मूलतः आधुनिक सामूहिक संचार के बढ़ते हुए साधनों से हुआ है। इस का सर्वप्रथम प्रयोग पत्रकारिता के क्षेत्र में और बाद में समाजशास्त्र में हुआ। ऐसा माना जाता है कि इन का सर्वप्रथम प्रयोग मेलकॉम बिल्ले ने सन 1926 में समाचार पत्रों की विषय सामग्री के विश्लेषण में किया। लगभग इसी समय सन 1930 में वुडलैंड ने अमेरिकी प्रातः कालीन समाचार पत्रों की विषय सामग्री (विशेषता विदेश के समाचारों) के विश्लेषण में इस विधि का प्रयोग किया। इस प्रकार के सभी अध्ययनों में विषय सामग्री के विश्लेषण में प्रत्यक्ष वर्गों जैसे राजनीति, खेलकूद, घरेलू समस्या, श्रम, अपराध, और तलाक आदि का प्रयोग किया गया। समाचार पत्रों के अलावा साहित्य के क्षेत्र में अंग्रेजी गद्य व पद्य की विभिन्न शैलियों की विशेषताओं के विश्लेषण में भी इस विधि का बहुत प्रयोग किया गया।

इस विधि का प्रयोग धीरे-धीरे राजनीति विज्ञान और जनमत अध्ययनों में भी किया जाने लगा। सन 1930 के बाद एच.डी. लासवेल तथा उनके साथियों ने अपने कई अध्ययनों में इस विधि का प्रयोग किया। लगभग इसी समय कोलंबिया विश्वविद्यालय में पॉल. एफ. लेजार्सफील्ड के नेतृत्व में रेडियो द्वारा प्रसारित सामग्री के विश्लेषण का कार्य प्रारंभ हुआ। द्वितीय विश्व युद्ध की कालावधी में कई पो सरकारी विभागों ने जनसंचार के विश्लेषण में रुचि प्रदर्शित की। आजकल इस विधि का प्रयोग अधिकांश पर निम्न क्षेत्रों में प्रमुख रूप से किया जा रहा है:

1. व्यक्तिगत दस्तावेजों का विश्लेषण
2. असंगठित साक्षात्कार ओं का विश्लेषण
3. प्रचिती परीक्षणों के प्रति तरों का विश्लेषण
4. रोगियों के निदानात्मक दस्तावेजों का विश्लेषण

3.2.5. अंतर्वस्तु विश्लेषण के उद्देश्य और महत्व

सैलिज, जहोदा तथा अन्य (1973) ने अंतर्वस्तु विश्लेषण के निम्नलिखित प्रमुख उद्देश्य बताए हैं-

1. अंतर्वस्तु की विशेषताओं को मालूम करना

* संप्रेषण की अंतर्वस्तु की प्रवृत्तियों का वर्णन करना।
* विद्वता के विकास को मालूम करना
* संप्रेषण के प्रति मानों का वर्णन करना

*संदेशों के प्रति जन समूह की ज्ञात विशेषताओं को जोड़ना
* संचार के स्तरों की तुलना करना
* मानदंडों के विपरीत संचार की विषय वस्तु का पता लगाना
* तकनीकी शोध प्रक्रिया में सहायता करना
* संचार सामग्री की पठनीयत को मापना
* लेखकों के व्यक्तित्व की विशेषताओं को ज्ञात करना
* शैली गत विशेषताओं की खोज करना
* प्रचार की तकनीकों का उद्घाटन एवं विश्लेषण करना

2. विषय वस्तु के कारणों को पता लगाना

* संप्रेषणकर्ताओं की अभिप्राय तथा अन्य विशेषताओं की पहचान करना
* व्यक्तियों और समूह की मनोवैज्ञानिक दशाओं का निर्धारण करना
*राजनीतिक और सैनिक खुफिया गिरी का पता लगाना
* संस्कृति और सांस्कृतिक परिवर्तन के विभिन्न पहलुओं को मालूम करना
* वैधानिक साक्ष्य उपलब्ध कराना

3. अंतर्वस्तु के प्रभाव को जानना

* समुदायों के मनोभावों हितों और मूल्यों के ज्ञात करना
* ध्यान के केंद्र को उजागर करना
* संचार के प्रति विचारात्मक और व्यवहार आत्मक प्रक्रिया का वर्णन करना

अंतर्वस्तु विश्लेषण शोध के उपरोक्त विषयों को देखने से स्पष्ट है कि इस विधि का प्रयोग अनेक प्रकार की समस्याओं के अध्ययन में किया जा सकता है। जहां इस विधि का प्रयोग अंतरराष्ट्रीय महत्व के मसलों को सुलझाने में किया जा सकता है वही प्रचार माध्यमों का जनता पर पड़ने वाले प्रभाव के अध्ययन में इस विधि का महत्वपूर्ण योगदान है। अति संक्षेप में, इस विधि का प्रयोग व्यक्तित्व की विशेषताओं को जानने, जनमत का पता लगाने, सामाजिक-सांस्कृतिक परिवर्तन की प्रवृत्ति को ज्ञात करने में सफलता पूर्वक किया जा सकता है। इस विधि का प्रयोग मनोचिकित्सा के क्षेत्र में भी किया गया है। व्यक्तियों के व्यक्तिगत लेखन तथा पत्र, डायरी, लेख, कविता, आदि के द्वारा व्यक्तित्व का विश्लेषण कर उनकी मानसिक ग्रंथियों और मन रूपी क्षेत्र का पता लगाने का प्रयत्न किया जाता है। अभी हाल कुछ शिक्षण बोर्ड ओं तथा केंद्र सरकार द्वारा गठित शिक्षण संस्थाओं द्वारा प्राइमरी कक्षाओं की पुस्तकों से कुछ ऐसी विषय सामग्री को हटाया गया है जिनका बालकों के व्यवहार पर निर्देशात्मक प्रभाव पड़ने की संभावना व्यक्त की गई थी।

3.2.6. अंतरवस्तु विश्लेषण की प्रक्रिया

विषयवस्तु विश्लेषण पद्धति का प्रयोग गुणात्मक एवं मात्रात्मक आंकड़ों के लिए सफलता पूर्वक किया जाता है। यह आगमनात्मक या निगमनात्मक रूपों में प्रचलित है। इनमें से किस विधि का प्रयोग करना है यह शोध के उद्देश्य पर निर्भर करता है। यदि परिघटना के बारे कोई विशेष पूर्व ज्ञान नहीं है या फिर तथ्य बिखरे हुए हैं तो आगमनात्मक विधि का प्रयोग करना चाहिए(Lauri & Kyngas 2005)। आगमनात्मक विधि में आंकड़ों से श्रेणीयां प्राप्त होती हैं। जब विश्लेषण का स्वरुप पूर्व ज्ञान के द्वारा प्रचालित होता है तथा शोध का उद्देश्य सिद्धांत की जाँच करना होता है तो निगमनात्मक विषयवस्तु विश्लेषण विधि का प्रयोग किया जाता है (Kyngas & Vanhanen 1999)। आगमनात्मक आंकड़ों पर आधारित प्रक्रिया विशिष्ट से सामान्य की ओर उन्मुख होती है, इसलिए निश्चित घटना का प्रेक्षण कर उसे एक बड़े या समान कथन में संगठित किया जाता है (Chinn & Kramer 1999). जबकि निगमनात्मक विधि सामान्य से विशिष्ट की ओर उन्मुख होती है (Burns & Grove 2005). उपरोक्त दोनों सिद्धांतों में कार्यवाही की अवस्थाएं सामान्य होती हैं.

- Preparation phase
- Organizing phase
- Reporting phase

Preparation phase –

आगमनात्मक एवं निगमनात्मक दोनों ही प्रविधियों में उपरोक्त तीन चरणों को क्रमबद्ध रूप से लागू किया जाता है। तैयारी अवस्था का प्रारंभ विश्लेषण की इकाई के चयन से होता है। यह इकाई शब्द या थीम के रूप में हो सकती है। विश्लेषण की इकाई से पूर्व क्या विश्लेषण करना है, किस रूप में और प्रतिदर्श क्या होगा सिनिस्चित करना महत्वपूर्ण होता है (Cavanagh 1997). प्रतिदर्श को प्रतिनिधिक होना अनिवार्य होता है (Duncan 1989)। जब दस्तावेज बहुत बड़ा होता है तब संभाव्य प्रतिदर्शन या निर्णय प्रतिदर्शन विधि का प्रयोग किया जाता है। अर्थ की एक इकाई में एक से अधिक वाक्य हो सकते हैं और कई अर्थ भी हो सकते हैं। दूसरी तरफ विश्लेषण की इकाई अधिक छोटी भी सो सकती है उदा. के लिए एक शब्द, पत्र, वाक्य, पेज का कोई भाग या शब्द या फिर परिचर्चा इत्यादि।

अधिकतर शोध विशेषज्ञों ने विश्लेषण के लिए साक्षात्कार को आदर्श माना है जो अधिकतम लिखित या कम से कम स्मृति में हो सकता है। विश्लेषण के पूर्व शोधार्थी को यह भी सुनिश्चित करना पड़ता है की वह किसका विश्लेषण करेगा केवल प्रकट या प्रत्यक्ष सामग्री का अथवा फिर अप्रकट या अप्रत्यक्ष सामग्री का। अप्रकट विधि में प्रयोज्य के गहरी साँस, आह भरने, हसने एवं मुद्रा को भी ध्यान में रखा जाता है।

आगे शोधार्थी यह जानने का प्रयाश करता है कि आंकड़े वास्तव में क्या कह रहे हैं (Moorse 1990, Burnard 1991)। Dey(1993) के अनुसार प्रदत्त को पड़ते समय निम्न प्रश्नों को ध्यान में रखना चाहिए-

- Who is telling?
- Where is this happening?
- What did it happen?
- What is happening?
- Why?

आंकड़ों को बार-बार पढ़ कर उसमे तल्लीन होने का प्रयास करना चाहिए जिससे पता चले की वास्तविकता क्या है(Burnard 1991, Polit & Beck 2004)। कोई भी सूझ या सिद्धांत आंकड़ों से नहीं निकलना चाहिए जब तक की शोधार्थी थीम के साथ पूर्णतः घुलमिल नहीं जाता है (Polit & Beck 2004)। आंकड़ों को समझने के पश्चात आगमनात्मक या निगमनात्मक विधि का प्रयोग करते हुए विश्लेषण किया जाता है (Kyangas & Vanhanen 1999)।

3.2.7. अंतर्वस्तु विश्लेषण विधि के प्रकार

अंतर्वस्तु विश्लेषण प्राविधि का वर्तमान में प्रयोग काफी बढ़ गया है। चूँकि यह दौर अंतरानुशासनिक अध्ययनों का हैं जहाँ ज्यादाटार विषय विशेषज्ञ त्रिगुणात्मक प्राविधि का प्रयोग ज्यादा उपयोगी समझ रहे हैं। अंतर्वस्तु विश्लेषण प्राविधि का प्रयोग निम्न प्रकारों से किया जा सकता है-

ब. आगमनात्मक विषयवस्तु विश्लेषण (Inductive content analysis)

आगमनात्मक विधि में सबसे पहले गुणात्मक तथ्यों को संगठित किया जाता है। इस प्रक्रिया में ओपेन कोडिंग, श्रेणी निर्माण एवं प्रथकीकरण किया जाता है। ओपन कोडिंग अर्थात टेक्स्ट को पढ़ते समय उसमे संकेतिकरण करना. यह प्रक्रिया कई बार की जाती है कंटेंट के सभी पहलुओं को समझा जा सके। हैडिंग को मार्जिन सहित से लिया जाता है तथा श्रेणियों का निर्माण इस अवस्था में स्वतंत्र रूप से होता है (Burnard, 1991

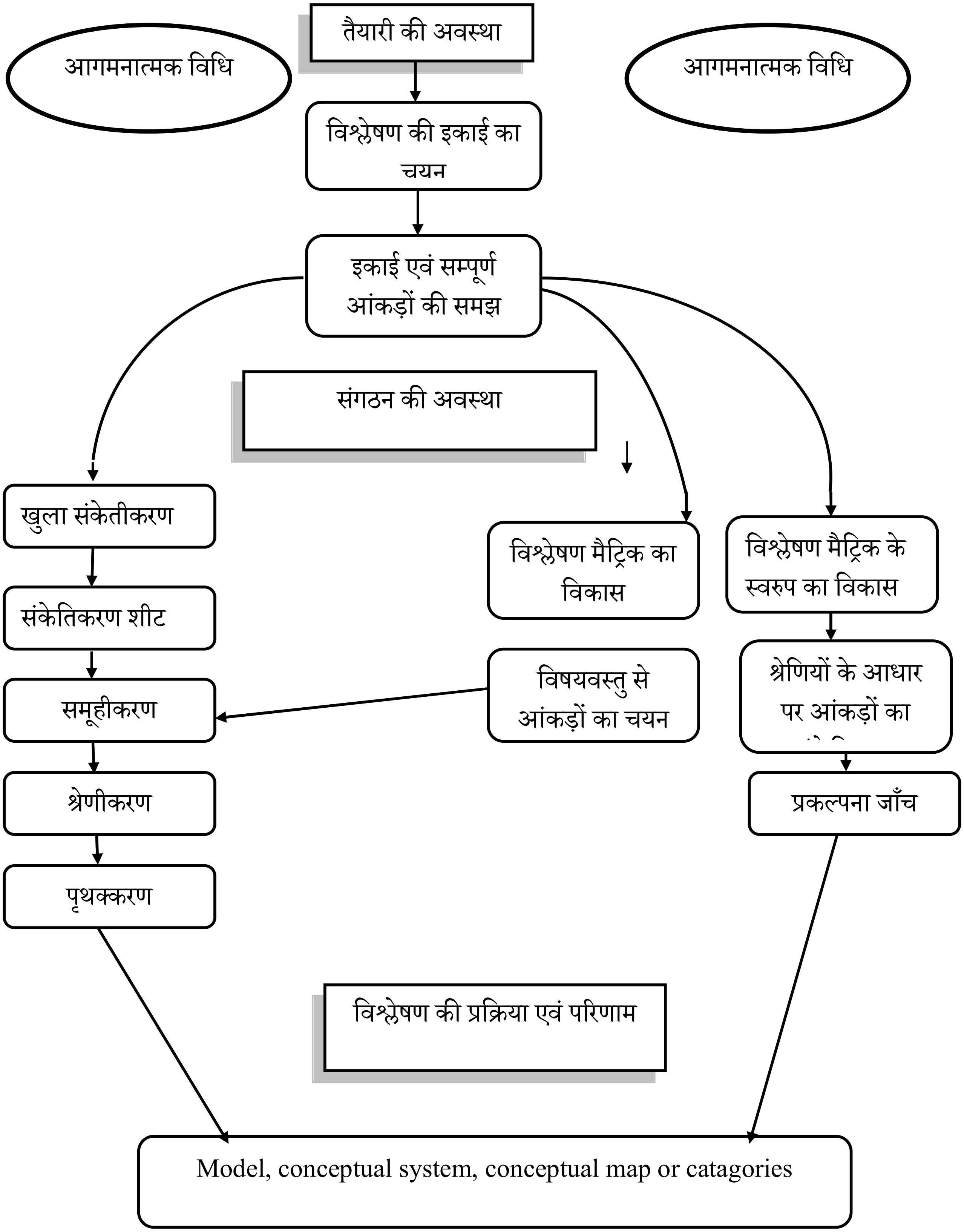
तैयारी की अवस्था
आगमनात्मक विधि
आगमनात्मक विधि
विश्लेषण की इकाई का चयन
इकाई एवं सम्पूर्ण आंकड़ों की समझ
संगठन की अवस्था
खुला संकेतीकरण
विश्लेषण मैट्रिक का विकास
विश्लेषण मैट्रिक के स्वरुप का विकास
संकेतिकरण शीट
विषयवस्तु से आंकड़ों का चयन
श्रेणियों के आधार पर आंकड़ों का
समूहीकरण
श्रेणीकरण
प्रकल्पना जाँच
पृथक्करण
विश्लेषण की प्रक्रिया एवं परिणाम
Model, conceptual system, conceptual map or catagories

- आगमनात्मक विषयवस्तु विश्लेषण में पृथक्करण की प्रक्रिया को एक उदाहरण द्वारा आगे स्पष्ट किया गया है।

उदा.- हिन्द स्वराज में निहित मूल्य

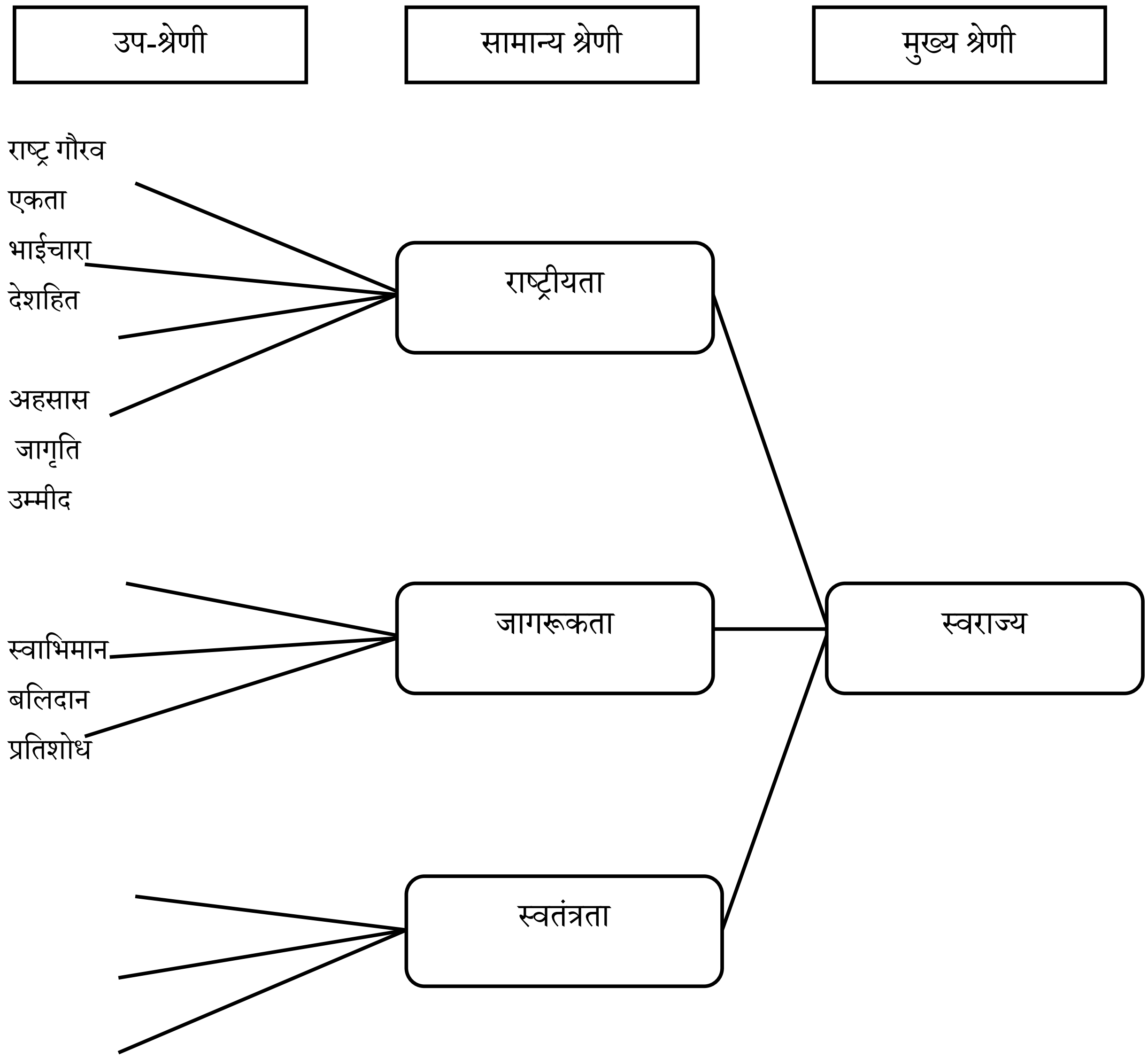

ब. निगमनात्मक विषयवस्तु विश्लेषण-

इस विधि का प्रयोग शोधार्थी द्वारा पूर्व के आंकड़ों को नए सन्दर्भ में विश्लेषण करने के लिए किया जाता है। जिसमे श्रेणियों की जांच, संप्रत्यय, मॉडल्स या प्राकल्पना आदि चरण हो सकते भी हो सकते हैं। यदि विधि का प्रयोग शोधार्थी द्वारा किया जाता है तो इसमें अगला चरण मैट्रिक्स के श्रेणीकरण तथा कोडीकरण का होगा। निगमनात्मक विषयवस्तु विश्लेषण अध्ययन के उद्देश्य के अनुसार संरचित या

असंरचित हो सकता है। प्रायः यह पूर्व के कार्यों जैसे सिद्धांत, मॉडल्स, माइंड मैप्स या साहित्य पुनरावलोकन पर आधारित होता है।

3.2.8. अंतर्वस्तु विश्लेषण के गुण-

1. **अदृश्य तथा अप्रतिक्रियात्मक विधि-** अंतर्वस्तु विश्लेषण विधि के द्वारा अध्ययन किए जाने वाले प्रयोज्य पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है और ना ही प्रयोग शोधकर्ता को किसी भी रूप में प्रभावित कर सकता है। शोध की प्रत्यक्ष विधियां साक्षात्कार, अवलोकन, प्रयोग आदि में शोधकर्ताओं का प्रयोग के साथ सीधा संबंध होता है। प्रत्यक्ष विधियों के प्रयोग में कई बार अस्वाभाविकता और कृत्रिमता उत्पन्न हो जाने के कारण वास्तविक तथ्यों का संकलन कठिन होता है। यह अस्वाभाविकता शोधकर्ता की उपस्थिति या बाह्य परिवेश जहां साक्षात्कार या अवलोकन किया जा रहा है कि प्रभाव से उत्पन्न हो सकती है।
2. **इस विधि के विफल होने का कोई भय नहीं होता-** अर्थात जहां सूचनादाता साक्षात्कार के लिए तैयार नहीं होते या सूचनादाता उपलब्ध नहीं है जैसे सूचनादाता जीवित ही नहीं है या वह बहुत दूर रहते हैं या उनके व्यवहार का अवलोकन संभव नहीं है किंतु उनके बारे में कुछ दस्तावेज फिल्म या अन्य सामग्री उपलब्ध है सुचनादाता से संबंधित द्वितीयक सामग्री का प्रयोग कर उनके बारे में परिणाम निकाले जा सकते हैं। अज्ञात लेखकों के बारे में जानकारी हासिल करना, शत्रु द्वारा प्रचारित किए गए प्रचार के बारे में निष्कर्ष निकालना, अंतरराष्ट्रीय संकट की स्थिति में नेताओं के विचारों को जानने के लिए यह विधि बहुत उपयोगी सिद्ध हुई है।
3. **ऐतिहासिक एवं पुरातात्विक शोधों के लिए विश्वसनीय विधि-** ऐसे व्यक्ति जो हमारे प्रश्नों के उत्तर देने के लिए उपलब्ध नहीं है या किसी काल विशेष में विवाह, परिवार, राज्य, सामाजिक मूल्यों का क्या रूप था इन विषयों की व्यवस्थित जानकारी इस विधि द्वारा उपलब्ध लिखित सामग्री के विश्लेषण से प्राप्त की जा सकती है।
4. **अन्य विधियों की पूरी विधि के रूप में-** इस विधि को अन्य विधियों की एक पूरक विधि या किसी शोध के प्रारंभिक विचार प्रकल्पना की रचना के लिए भी प्रयोग किया जा सकता है। एक चीनी कहावत है कि "अच्छी से अच्छी याददाश्त से धुंधली लिखावट साफ होती है।" एक शोधकर्ता प्रश्नावली साक्षात्कार से प्राप्त तथ्यों की तुलना या उनकी प्रमाणिकता की जांच इस विधि के द्वारा प्राप्त तथ्यों से कर सकता है।
5. इस विधि का प्रयोग ऐसे सामाजिक समूह के अध्ययन में भी किया जा सकता है इनके साथ संपर्क स्थापित करना दुष्कर होता है। यही नहीं इस विधि की पुनरावृत्ति भी की जा सकती है जबकि कई बार घटना विशेष की अवधि समाप्त हो जाती है यह सूचना दाता बार-बार उन्हीं प्रश्नों का उत्तर देने के लिए तैयार नहीं होता।

6. जहां कहीं प्रयोग अध्ययन महत्वपूर्ण होता है वहां इस विधि का प्रयोग किया जाना आवश्यक होता है। मनोविश्लेषणात्मक साक्षात्कारो प्रक्क्षेपि विधियों से प्राप्त तथ्यों अथवा कई अन्य प्रकार के विश्लेषण में भी इस विधि की निर्विवाद उपयोगिता सिद्ध हुई है।

3.2.9. अंतर्वस्तु विश्लेषण शोध की समस्याएं-

सामाजिक शोध की एक अप्रत्यक्ष विधि है। सामान्यतः इसका प्रयोग ऐसे विषयों के अध्ययन में ही किया जाता है जहां अन्य विधियों का प्रयोग संभव नहीं होता। इस विधि की सबसे बड़ी कठिनाई संचार सामग्री की गुणात्मक प्रकृति है जिसके कारण विश्वसनीयता यथार्थता और वस्तुपरकता प्रभावित होती है। यह सोच है कभी-कभी तब सामने आती है जब समान दस्तावेजों के अध्ययन में दो शोधकर्ताओं के निष्कर्षों में भिन्नता प्रकट होती है। इसके अतिरिक्त, इस विधि को सभी प्रलेखों की अध्ययन के लिए भी एक उपयुक्त विधि नहीं कहा जा सकता है। कहां तक सही है या किसी कविता में कौन सा सौंदर्यात्मक गुण है इनका निर्धारण इस विधि से ठीक-ठीक प्रकार नहीं किया जा सकता है। इस विधि की प्रमुख समस्या वस्तुपररकता से जुड़ी हुई है जिस का संक्षेप में वर्णन नीचे किया गया है।

वस्तुपररकता की समस्या- चूँकि संचार की विषय वस्तु का विश्लेषण किसी व्यक्ति विशेष द्वारा किया जाता है, ऐसी अवस्था में वस्तुपरकता बनाए रखना, अर्थात उसके विचार मूल्य आदि निष्कर्षों को प्रभावित नहीं करेंगे इसकी क्या गारंटी है। यह सही है कि इस विधि में संचार सामग्री का विधिवत प्रतिचयन वर्गीकरण और गणना की जाती है, तथापि यह समस्त कार्य अकेले शोधकर्ता द्वारा किया जाता है, अतः अंतर्वस्तु विश्लेषण की समस्त प्रक्रिया में पग-पग पर अभिनति(bias) आने का भय बना रहता है।

बर्लसन (1952) ने अंतर्वस्तु विश्लेषण में वस्तुपररकता को बनाए रखने के लिए निम्नलिखित पांच बातों को अपनाए जाने का सुझाव दिया है-

1. नियम आधारित प्रक्रिया
2. व्यवस्थित प्रक्रिया
3. परिमाणन
4. गुणात्मक विश्लेषण को पर्याप्त महत्व
5. केवल व्यक्त संचार की विषय वस्तु का मूल्यांकन

कुछ समाज वैज्ञानिकों ने इस विधि को विभिन्न समस्याओं के समाधान हेतु अंतर्ज्ञान(Intution) के उपयोग का भी सुझाव दिया है। द्वारा अंतर्ज्ञान को मानव की छठी इंद्री के रूप में स्वीकार किया गया है किंतु अंतर्ज्ञान की अपनी सीमाएं हैं। इसे वस्तुपररकता तथा साक्ष्य का विकल्प नहीं माना जा सकता है। इसके द्वारा व्यक्तिपरकता की ही अधिक संचार होने की संभावना रहती है। अंतर्ज्ञान के प्रयोग में एक अन्य बड़ी कठिनाई भाषा की जटिलता की है। एक कुशल अंतरदृष्टा तथा प्रशिक्षित शोधकर्ता के समक्ष भी अपनी शोध सामग्री का अधिकाधिक उपयोग करने की कठिनाई रहती है, यदि वह व्यवस्थित विधियों का प्रयोग नहीं करता।

उपरोक्त कठिनाइयों के कारण, निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि अंतर्वस्तु विश्लेषण विधि का प्रयोग तभी किया जाना चाहिए जब अध्ययन की समस्या इस विधि की ही अपेक्षा रखती है, अर्थात जब शोध की प्रत्यक्ष विधि या किसी विषय के अध्ययन में विफल रहती हैं या जब अन्य विधियों की अपेक्षा किसी शोध विषय के लिए यही एकमात्र सर्वाधिक उपयुक्त विधि हो।

3.2.10. सारांश

अंतर्वस्तु विश्लेषण प्रविधि का प्रारंभिक प्रयोग यह बताता है की यह विधि मुख्य रूप से जनसंचार में उपयोग की जाती थी परन्तु बदलती तत्कालीन शोध की आवश्यकताओं ने समस्त विषयों की अनुशासशनात्मक जंजीरों को तोडा है. अंतर्वस्तु विश्लेषण प्राविधि वर्तमान में लगभग सभी विषयनुशासन के शोधार्थी प्रयोग में ला रहे हैं. अंतर्वस्तु विश्लेषण प्राविधि में अनेक लाभ जो मात्र इसी प्राविधि में देखने को मिलते हैं, उल्लेखनीय हैं हालांकि कुछ समस्याएं भी हैं. गुणात्मक आंकड़ों को कोडीकरण के माध्यम से संख्यात्मक रूप देकर सरलतम परिणाम इस विधि में प्राप्त होते हैं. निम्न चित्र के माध्यम से हम इसे और आसानी से समझ सकते हैं-

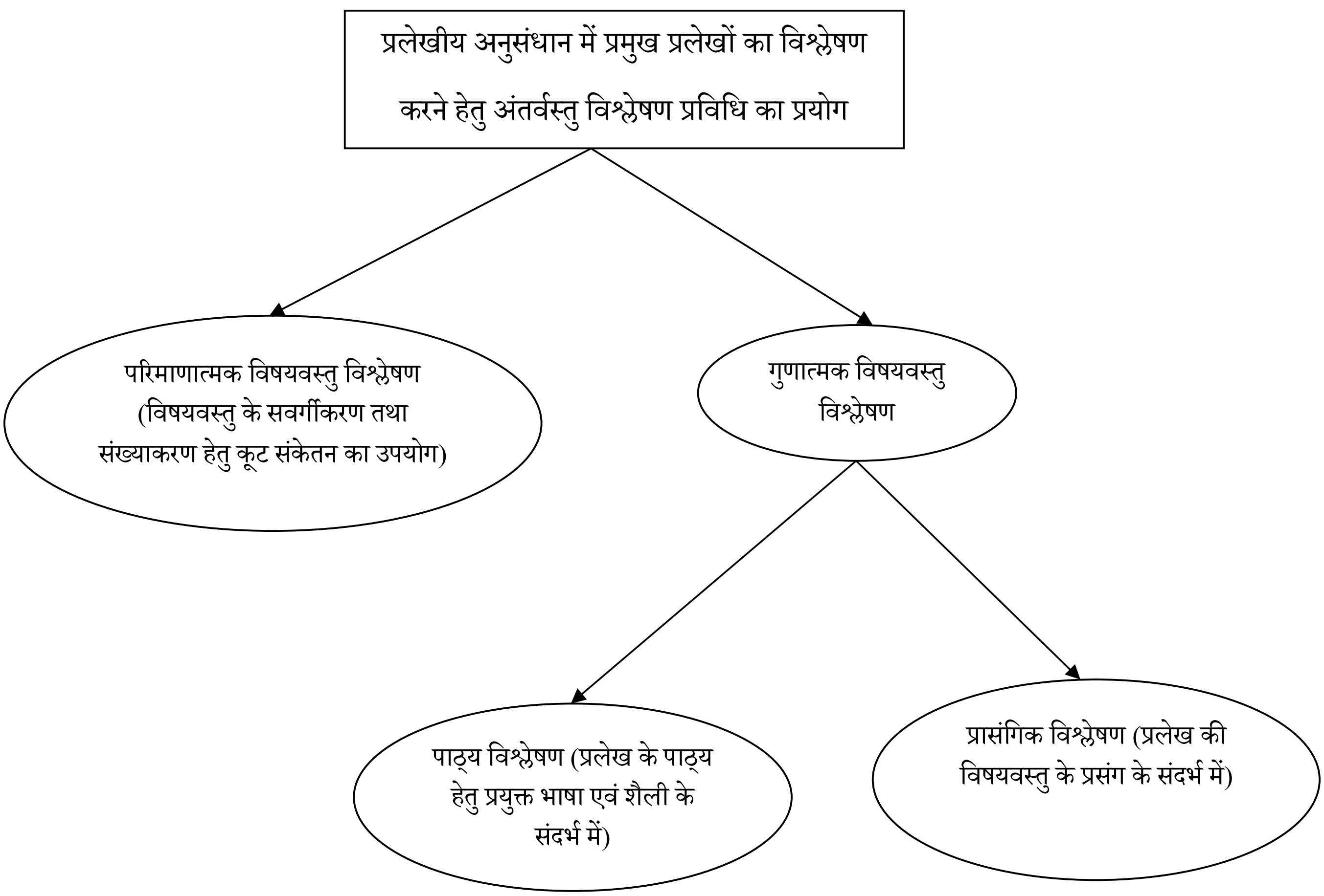

3.2.11. स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. अंतर्वस्तु विश्लेषण प्रविधि को परिभाषित करें ?
2. अंतर्वस्तु विश्लेषण प्रविधि की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का वर्णन करें
3. अंतर्वस्तु विश्लेषण प्रविधि के लाभ एवं समस्यायों का वर्णन करें
4. अंतर्वस्तु विश्लेषण प्रविधि की प्रक्रिया का वर्णन उदहारण सहित करें?
5. अंतर्वस्तु विश्लेषण प्रविधि के प्रकारों को समझाएं।
6. अंतर्वस्तु विश्लेषण प्रविधि के उद्देश्य एवं महत्वों को रेखांकित करें।

3.2.12. शब्दावली : अंतर्वस्तु विश्लेषण, आगमन, निगमन कोडीकरण

3.2.13. संदर्भ ग्रंथ सूची

- सिंह, ए.के.(2008). सामाजिक विज्ञान में शोध विधियाँ. मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली.
- रावत, एच.(2013). सामाजिक शोध की विधियाँ.रावत प्रकाशन. जयपुर.
- त्रिपाठी, एल.बी.(2012). मनोवैज्ञानिक अनुसंधान पद्धतियाँ. एचपी भार्गव बुक हाउस, आगरा.
- कपिल, एच.के.(2004). व्यवहारिक अनुसंधान में शोध विधियाँ. विनोद पुस्तक मंदिर. आगरा.
- आर, मुखर्जी. (1969). सामाजिक शोध एवं सांख्यिकी. सरस्वती सदन, नई दिल्ली.

इकाई-3 समाजमिति एवं प्रक्षेपी प्रविधि

इकाई की रूपरेखा

3.3.0. उद्देश्य
3.3.1. प्रस्तावना
3.3.2. प्रक्षेपी प्रविधियां : अर्थ एवं परिभाषा
3.3.3. प्रेक्षेपी प्रविधि का इतिहास
3.3.4. प्रक्षेपी विधि की विशेषतायें
3.3.5. प्रक्षेपी विधि के प्रकार
3.3.6. प्रक्षेपी विधि की सीमायें
3.3.7. समाजमिति शोध प्रविधि
3.3.8. समाजमिति विधि की विशेषताएं
3.3.9. समाजमिति तकनीक की प्रविधियाँ
3.3.10. समाजमितिक विधि की विश्वसनीयता एवं वैधता
3.3.11. समाजमिति की अनुसंधान उपयोगिता
3.3.12. सारांश
3.3.13. स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न
3.3.14. शब्दावली
3.3.15. संदर्भ ग्रंथ सूची

3.3.0. उद्देश्य कथन

1. प्रेक्षेपी अनुसंधान पद्धति के स्वरुप को समझ पाएंगे.
2. प्रेक्षेपी प्रविधि अन्तरगत आने वाली अनेक विधियों से परिचित हो पाएंगे.
3. प्रेक्षेपी प्रविधि की विशेषताओं से रूबरू हो पाएंगे
4. प्रेक्षेपी प्रविधि की सीमाओं का ज्ञान हो पायेगा.
5. समाजमिति विधि की परिचयात्मक ज्ञान हो जायेगा.
6. समाजमिति विधि के महत्त्व एवं विशेषताओं को जान सकेंगे
7. समाजमिति प्राविधि के द्वारा प्रदत्त विश्लेषण का ज्ञान हो जायेगा.
8. समाजमिति प्राविधि के अन्तरगत आने वाली अन्य प्रविधियों की जानकारी ले पाएंगे.
9. समाजमिति विधि की विश्वसनीयता एवं वैधता का ज्ञान हो जायेगा.

3.3.1. प्रस्तावना

मानवीय सामाजिक व्यवहार बड़ा जटिल एवं पेचीदा है। यह कई गांठ और गुणों से भरा पड़ा है जो दिखाई नहीं देती। इसे समझना आसान नहीं है। यह हिम शहर की भांति है, भाई भाग समुद्र में डूबा होता है और केवल एक चौथाई भाग ही बाहर नजर आता है जिसके कारण कभी-कभी जहाज धोखा खा जाते हैं और क्षतिग्रस्त हो डूब जाते हैं। इसी प्रकार बाहर दिखने वाले मानवीय सामाजिक व्यवहार के पीछे भी अंतर धारा के रूप में कई तक और प्रक्रिया में कार्यरत होती है जो उसे प्रभावित करती रहती हैं। मानवीय व्यवहार के केवल बालस्वरूप को देखकर उसके अंतर्निहित कारणों और उसकी वास्तविकता को मालूम करना कठिन होता है। इसीलिए सामाजिक शोध में कई प्रकार की विधियों का प्रयोग किया जाता है ताकि मानवीय सामाजिक व्यवहार की वास्तविकता का पता लगाया जा सके।

3.3.2. प्रक्षेपी विधियाँ : अर्थ एवं परिभाषा -

प्रक्षेपी विधि को ठीक प्रकार से समझने के लिये सबसे पहले प्रक्षेपण के अर्थ को जानना जरूरी है। ''सिगमण्ड फ्रायड'' पहले ऐसे मनोवैज्ञानिक थे जिन्होंने सर्वप्रथम प्रक्षेपण शब्द का प्रयोग एक ''मनोरचना'' के रूप में किया था। फ्रायड का मत था कि प्रक्षेपण को व्यक्ति रक्षात्मक तंत्र (डिफेंस मैकेनिज्म) के रूप में प्रयुक्त करता है अर्थात्- प्रक्षेपण द्वारा व्यक्ति अपनी अनैतिक, अवांछित असामाजिक इच्छाओं को दूसरे व्यक्तियों पर आरोपित करके अपनी चिन्ता, द्वन्द्व एवं मानसिक संघर्षो का समाधान करता है।

फ्रायड के बाद एल.के. फ्रैंक ने प्रक्षेपण शब्द का प्रयोग और भी व्यापक अर्थ में किया। फ्रैंक के मतानुसार प्रक्षेपण द्वारा व्यक्ति न केवल अपनी अवांछित वरन् वांछित-अवांछित सभी प्रकार की इच्छाओं का आरोपण दूसरों पर करता है। ''प्रक्षेपण प्रक्रिया के द्वारा व्यक्ति अपनी सभी वांछित या अवांछित इच्छाओं तथा प्रेरणाओं को दूसरों पर आरोपित करता है।''

मनोवैज्ञानिक परीक्षण के क्षेत्र में प्रक्षेपण विधि का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। यह परीक्षण की एक अप्रत्यक्ष विधि है। इसमें व्यक्ति या प्रयोज्य के समक्ष कुछ असंगठित तथा अस्पष्ट उद्दीपक उपस्थित किये जाते हैं अथवा ऐसी कोई परिस्थिति दी जाती है। जब प्रयोज्य के सामने ऐसे उद्दीपकों एवं परिस्थितियों को लाया जाता है तो, वह इनके प्रति कुछ-न-कुछ प्रतिक्रिया व्यक्त करता है। इन परीक्षणों में व्यक्ति जो अनुक्रिया करता है, वह वस्तुत: उसके अचेतन मन में दबी इच्छायें, भावनायें एवं मानसिक संघर्ष होते हैं, जिनको वह दूसरे व्यक्तियों अथवा वस्तुओं पर आरोपित करता है। इस अप्रत्यक्ष विधि से व्यक्ति के व्यक्तित्व एवं उसकी योग्यताओं को समझने में मदद मिलती है।

इस प्रकार से हम कह सकते है कि प्रक्षेपण विधि व्यक्तित्व शीलगुणों, मानसिक योग्यताओं के मापन की एक अप्रत्यक्ष या परीक्षा विधि है, जिसके एकांश या प्रश्न संगठित एवं स्पष्ट नहीं होते हैं। इन एकांशों के प्रति प्रतिक्रिया व्यक्त करके व्यक्ति अपनी योग्यताओं, शीलगुणों को परोक्ष रूप से अभिव्यक्त करता है। ''प्रक्षेपण विधि'' को भिन्न-भिन्न मनोवैज्ञानिकों ने अलग-अलग ढंग से स्पष्ट किया है। कुछ

प्रमुख मनोवैज्ञानिकों की परिभाषायें निम्नानुसार हैं- ''प्रक्षेपण वह विधि है जिसमें अपने समाज के प्रति व्यक्ति के प्रत्यक्षीकरण या उस समाज में उसके व्यवहार के विशिष्ट ढंगों को प्रकाशित करने के लिये अस्पष्ट, असंरचित, उद्दीपनों या परिस्थितियों का व्यवहार किया जाता है।'' ''प्रक्षेपी विधि'' पद का सर्वप्रथम प्रतिपादन लारेन्स फ्रैंक ने किया था।

3.3.3. प्रक्षेपी विधि का इतिहास-

प्रक्षेपी विधि के इतिहास पर। 1400 ए.डी में में लियोनार्दो द विन्सी ने कुछ ऐसे बच्चों का चयन किया, जिन्होंने कुछ अस्पष्ट प्रारूपों में विशिष्ट आकार तथा पैटर्न की खोज की। इस खोज से यह स्पष्ट हुआ कि उन बच्चों में रचनात्मकता का गुण विद्यमान था। इसके बाद सन् 1800 के उततरार्द्ध में बिने ने एक खेल जिसका नाम उन्होंने स्लोटो बताया, के माध्यम से बच्चों की निष्क्रिय कल्पना को मापने का प्रयत्न किया। स्लोटो खेल में बच्चों को कुछ स्याही के धब्बे देकर उनसे पूछा जाता था कि इन धब्बों में उन्हें क्या आकार या प्रारूप दिखाई देता है। इसके उपरान्त सन् 1879 में गाल्टन द्वारा एक परीक्षण का निर्माण किया गया। जिसका नाम था- ''शब्द साहचर्य परीक्षण''।

केन्ट तथा रोजानोफ्फ द्वारा परीक्षण कार्यो में गाल्टन द्वारा निर्मित परीक्षण का प्रयोग किया गया। सन् 1910 में युंग द्वारा नैदानिक मूल्यांकन के लिये इसी प्रकार के परीक्षण का प्रयोग किया गया। इविंगहोंस ने बुद्धि मापने के लिये ''वाक्यपूर्ति परीक्षण'' का उपयोग किया। धीरे-धीरे इन अनौपचारिक प्रक्षेपीय प्रतिधियों ने औपचारिक प्रक्षेपी परीक्षणों को जन्म दिया। जो अपेक्षाकृत अधिक मानकीकृत थे और इनके माध्यम से पहले की तुलना में अधिक अच्छे ढंग से मानसिक योग्यताओं का मापन करना संभव हो सका।

3.3.4. प्रक्षेपी विधि की विशेषतायें-

1. अब आपके मन में जिज्ञासा उत्पन्न हो रही होगी कि इन प्रक्षेपी विधियों की प्रमुख विशेषतायें क्या होती हैं? लिण्डजे, 1961 के अनुसार प्रक्षेपी विधियों के स्वरूप का विवेचन निम्न बिन्दुओं के अन्तर्गत किया जा सकता हैं- प्रक्षेपी परीक्षण में ऐसे एकांश होते हैं, जिनके प्रति बहुत सारी अनुक्रियायें उत्पन्न हो पाती है।
2. प्रक्षेपी विधि द्वारा व्यक्तित्व के अनेक पहलुओं का मापन किया जाना संभव होता है।
3. प्रक्षेपी विधि व्यक्ति के अचेतन मन में छिपी हुयी इच्छाओं, प्रेरणाओं को उत्तेजित करती है।
4. प्रक्षेपी विधि में एकांशों के प्रति प्रयोज्यों द्वारा जो प्रतिक्रियायें व्यक्त की जाती है उनका अर्थ प्रयोज्य को मालूम नहीं होता है।
5. प्रक्षेपी विधि में व्यक्ति के सामने असंगठित एवं अस्पस्ट परिस्थितियों एवं उद्दीपकों को उपस्थित किया जाता है।
6. इन विधियों के माध्यम से व्यक्तित्व की एक संगठित तथा सम्पूर्ण तस्वीर सामने आती है।
7. इन विधियों द्वारा अधिक मात्रा में जटिल मूल्यांकन तथ्य एवं आँकड़े एकत्रित किये जाते हैं।
8. इन विधियों द्वारा व्यक्ति में स्वप्न चित्र उत्पन्न होते हैं।

9. इन विधियों में किसी भी अनुक्रिया को सही अथवा गलत नहीं माना जाता हैं।

3.3.5. प्रक्षेपी विधि के प्रकार-

मनोवैज्ञानिकों ने प्रक्षेपी विधि के अनेक प्रकार बताये हैं। इस वर्ग्गीकरण का आधार है- परीक्षण में प्रयुक्त किये जाने वाले उद्दीपक, परीक्षण के निर्माण एवं क्रियान्वयन का तरीका, उद्दीपकों के प्रति व्यक्त की गई अनुक्रिया इत्यादि। इन विभिन्न वर्गीकरणों में लिण्डले द्वारा प्रक्षेपी विधियों का जो विभाजन किया गया, वह अधिक मान्य एवं लोकप्रिय है। इन्होंने प्रक्षेपी विधियों को अनुक्रियाओं की कार्यो के आधार पर निम्न पाँच भागों में वर्गीकृत किया -

1. साहचर्य परीक्षण
2. संरचना परीक्षण
3. पूर्ति परीक्षण
4. चयन या क्रम परीक्षण
5. अभिव्यंजक परीक्षण

1. सहचर्य परीक्षण-

इस परीक्षण कुछ पहले से ही निश्चित उद्दीपक शब्द होते है। इन पूर्व निश्चित शब्द उद्दीपकों को एक-एक करके प्रयोज्य को सुनाया जाता है। इन सभी शब्दों को सुनने के बाद उस व्यक्ति या प्रयोज्य के मन में जो शब्द सर्वप्रथम आता है, उस शब्द को उसे प्रयोगकर्ता को बताना होता है। इस परीक्षण का उपयोग मुख्य रूप से सिगमण्ड फ्रायड और उनके शिष्य कार्ल युंग द्वारा किया गया। शब्द साहचर्य परीक्षण के माध्यम से युंग ने व्यक्ति की सांवेगिक समस्याओं का सफलतापूर्वक निदान किया। इस सफलता से प्रभावित होकर अमेरिका में केन्ट तथा रोजेन्फ द्वारा सन् 1910 में तथा रैपपोर्ट द्वारा सन् 1946 में दूसरे शब्द साहचर्य परीक्षण का निर्माण किया गया। इन परीक्षणों का प्रयोग साधारण मानसिक रोग से ग्रसित व्यक्तियों के व्यक्तित्व को मापने में मुख्य रूप से किया गया।

1. **रोशार्क परीक्षण-** प्रक्षेपण परीक्षणों में ''रोशार्क परीक्षण'' सर्वाधिक लोकप्रिय परीक्षण हे। इस परीक्षण का प्रतिपादन स्विट्जरलैण्ड के मनोश्चिकित्सक हरमान रोशार्क द्वारा सन् 1921 में किया गया था।

2. संरचना परीक्षण -

मनोवैज्ञानिक परीक्षण की प्रक्षेपी विधियों में दूसरी महत्वपूर्ण विधि ''संरचना परीक्षण'' है। संरचना परीक्षण में व्यक्ति को परीक्षण उद्दीपकों के आधार पर एक कहानी अथवा अन्य समान चीजों की संरचना करनी होती है। संरचना परीक्षणों में सर्वाधिक लोकप्रिय परीक्षण कोनजर है? ''विषय आत्मबोध परीक्षण'' जिसको TAT (Thematic Apperception Test) के नाम से जाना जाता है। सबसे अधिक प्रसिद्ध संरचना परीक्षण है। TAT का विस्तृत विवेचन निम्नानुसार है- TAT (The Tatic Apperception Test) - TAT का निर्माण मर्रे द्वारा सन् 1935 में हारवर्ड विश्वविद्यालय में किया गया था। इसके बाद सन् 1938 में मोर्गन के साथ मिलकर उन्होंने इस परीक्षण का संशोधन किया। TAT परीक्षण से संबंधित मुख्य बातें निम्नानुसार हैं-

1. TAT में उद्दीपक या परिस्थितियों रोशार्क परीक्षण की तुलना में अधिक स्पष्ट होती है। अत: यह रोशार्क परीक्षण् से थोड़ा भिन्न है।
2. इस परीक्षण में कुल 31 कार्ड होते है, जिनमें से 30 कार्ड पर चित्र बने होते हैं तथा एक कार्ड साद होता है।
3. TAT परीक्षण का प्रयोग करते समय, जिस व्यक्ति के व्यक्तित्व का परीक्षण किया जाता है। उसकी आयु तथा यौन के अनुसार 31 में से 20 कार्ड को चुन लिया जाता है।
4. इन 20 कार्ड में 19 कार्ड पर चित्र होते हैं तथा एक कार्ड सादा होता है।
5. किसी एक व्यक्ति को 20 कार्ड से अधिक नहीं दिये जाते हैं।
6. प्रयोज्य को प्रत्येक कार्ड के चित्र को देखकर एक कहानी लिखने को कहा जाता है। इस कहानी में चित्र से संबंधित घटना के भूत, वर्तमान, एवं भविष्य तीनों कालों का वर्णन होता है।
7. टैट का क्रियान्वयन परीक्षणकर्ता दो सत्रों में करता है।
8. प्रथम सत्र में 10 कार्ड और द्वितीय सत्र में भी 10 कार्ड देकर प्रयोज्य को उन कार्ड के आधार पर कहानी लिखने को कहा जाता है।
9. 19 कार्ड देने के बाद सबसे अन्त में सादा कार्ड दिया जाता है और उस कार्ड पर अपने मन से किसी चित्र को मानकर उस आधार पर कहानी लिखने को कहा जाता है।
10. मर्रे का मत है कि TAT के इन दो सत्रों के बीच कम से कम 24 घंटे का अन्तर होना चाहिये।
11. जब प्रयोज्य कहानी लिखने का कार्य पूरी कर लेता है तो परीक्षणकर्ता एक साक्षात्कार लेता है। इस साक्षात्कार का उद्देश्य यह जानना होता है कि कहानी लिखने में व्यक्ति की कल्पना शक्ति का स्रोत क्या हैं? कार्ड पर अंकित चित्र अथवा चित्र के अतिरिक्त अन्य कोई घटना अथवा परिस्थिति।

कहानी लेखन के उपरान्त परीक्षणकर्ता इन कहानियों का विश्लेषण करके उस व्यक्ति के व्यक्तित्व का आंकलन करता है। मर्रे के मतानुसार इस परीक्षण का विश्लेषण इन आधारों पर किया जाता है-

1. **नायक -** सर्वप्रथम परीक्षणकर्ता प्रत्येक कहानी में नायक या नायिका कौन है, इस बात का पता लगाता है। कहानी में जिस पात्र की मुख्य भूमिका होती है उसको नायक या नायिका कहते हैं। ये भी संभव है कि कभी-कभी एक ही कहानी में एक से अधिक नायक या नायिका हो। इस परीक्षण में ऐसा माना जाता है कि प्रयोज्य नायक अथवा नायिका के साथ आत्मीकरण (identification) स्थापित कर लेता है और अपनी महत्वपूर्ण आवश्यकताओं को अभिव्यक्त करता है।
2. **आवश्यकता -** नायक या नायिका का पता लगाने के बाद यह जानने की कोशिश की जाती है कि उस नायक या नायिका का प्रमुख आवश्यकतायें क्या-क्या हैं क्योंकि अप्रत्यक्ष रूप से नायक-नायिका के माध्यम से उस व्यक्ति की आवश्यकतायें अभिव्यक्त होती है, जिसमें व्यक्तित्व का मापन किया जा रहा है। मर्रे के अनुसार टैट द्वारा 28 प्रकार की आवश्यकताओं का मापन संभव है। कुछ प्रमुख आवश्यकतायें निम्न हैं-

1 उपलब्धि की आवश्यकता
2 प्रभुत्व की आवश्यकता
3 संबंधन की आवश्यकता

3. **प्रेस -** मर्रे के अनुसार प्रेस से यहाँ पर आशय वातावरण संबंधी बलों से है। इनके कारण कहानी के नायक या नायिका की आवश्यकतायें या तो पूरी हो जाती हैं अथवा पूरी होने से वंचित रह जाती है। मर्रे के अनुसार ऐसे वातावरण संबंधी बलों की संख्या 30 से भी ज्यादा है, जिनमें से कुछ प्रमुख निम्नानुसार हैं-
   1 शारीरिक खतरा
   2 आक्रमण या आक्रामकता- ये दो महत्वपूर्ण प्रेस हैं।
4. **थीमा -** प्रेस के निर्धारण के बाद टैअ के अगले चरण में थीमा का निर्धारण किया जाता है। थीमा से क्या आशय है? थीमा का तात्पर्य हैं- ''नायक या नायिका की आवश्यकता तथा प्रेस (वातावरण संबंधी बल) में हुयी अन्त:क्रिया से उत्पन्न घटना। मर्रे के अनुसार थीमा द्वारा व्यक्तित्व में निरन्तरता का ज्ञान होता है।
5. **परिणाम -** TAT के अगले चरण में कहानी के परिणाम का पता लगाया जाता है अर्थात्- कहानी का समापन किस प्रकार से किया गया है, कहानी का निष्कर्ष किस प्रकार का है? निश्चित अथवा अनिश्चित। कहानी का परिणाम यदि निश्चित एवं स्पष्अ है तो इससे प्रयोज्य के व्यक्तित्व की परिपक्वता एवं वास्तविकता का ज्ञान होने की क्षमता का बोध होता है। आपकी जानकारी के लिये बता दें कि TAT का हिन्दी अनुकूलन कलकत्ता के प्रो, उमा चौधरी ने किया है। भारतीय संदर्भ में अधिकांशत: उसी का प्रयोग किया जा रहा है। TAT के अतिरिक्त भी कुछ अन्य संरचना परीक्षण है, जो हैं-
   1 **बाल आत्मबोधन परीक्षण CAT -** इस परीक्षण का निर्माण सन् 1954 में बेल्लाक द्वारा किया गया।
      1. CAT द्वारा बच्चों के व्यक्तित्व का मापन किया जाता है।
      2. CAT के कार्ड में सभी पात्र पशु हैं, मानव नहीं।
      3. TAT के समान ही CAT में भी बच्चों के व्यक्तित्व का मापन प्रत्येक कार्ड के आधार पर लिखी गई कहानी का विश्लेषण करके किया जाता है।
   2 **रोजेनविग तस्वीर-कुंठ अध्ययन -**
      1. इस परीक्षण का निर्माण प्रख्यात मनोवैज्ञानिक रोजेन विग द्वारा किया जाने के कारण उन्हीं के नाम इसका नाम ''रोजेनविग तस्वीर-कुंठा गध्ययन'' रखा गया है।
      2. इस परीक्षण का निर्माण सन् 1949 में हुआ था।
      3. इस परीक्षण में कुल 24 कार्टून होते हैं, जिसके अन्तर्गत एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से इस प्रकार का व्यवहार करते हुये दिखालाया गया है कि दूसरे व्यक्ति

में उस पहले वाले व्यक्ति के व्यवहार के कारण निश्चित तौर पर कुंठा की भावना उत्पन्न हो।

4. इस परीक्षण में प्रयोज्य को प्रत्येक कार्टून को देखकर यह बताने के लिये कहा जाता है कि ऐसी परिस्थिति में कुंठित व्यक्ति किस प्रकार की प्रतिक्रिया व्यक्त करेगा।

3 रोबर्टस आत्मबोधन परीक्षण : बच्चों के लिये (RATC) -

1. RATC का निर्माण सन् 1982 में मैकअर्थर तथा रोबर्टस ने किया था।
2. इस परीक्षण में कुल 27 कार्ड होते हैं, जिनमें प्रत्येक कार्ड में कुछ बच्चे, अन्य बच्चों या कारकों के साथ अन्त:क्रिया करते हुये दिखाये जाते हैं।
3. प्रयोज्य को प्रत्येक कार्ड को देखकर यह बताना होता है कि उस कार्ड के पात्र क्या कर रहे हैं अथवा क्या करेंगे। तो उपर्युक्त विवेचन के आधार पर आप समझ गये होंगे कि संरचना परीक्षण क्या है और किस प्रकार से इनको क्रियान्वित किया जाता है। इसके बाद अब हम चर्चा करते हैं। प्रक्षेपी विधियों में दी अगली विधि ''पूर्ति परीक्षण'' के विषय में।

3. पूर्ति परीक्षण -

''पूर्ति परीक्षण'' का प्रक्षेपी विधियों में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। पूर्ति परीक्षण से संबंधित मुख्य बातें हैं-

1. इस परीक्षण में प्रयोज्य को उद्दीपक अर्थात् वाक्य का एक हिस्सा दिखाया जाता है और भाग खाली होता है। इस खाली भाग की पूर्ति प्रयोज्य अपने अनुसार वाक्य बनाकर करता है।
2. प्रयोज्य अधूरे वाक्य को जिस ढंग से पूरा करता है, परीक्षणकर्ता उस आधार पर उसके व्यक्तित्व का मापन करता है।
3. सन् 1940 में रोहडे तथा हाइड्रोथ द्वारा तथा सन् 1950 में रौट्टर द्वारा पूर्ति परीक्षण का निर्माण किया गया।
4. भारत में भी इस प्रकार के परीक्षणों का अनेक विद्वानों द्वारा निर्माण किया गया। जिनमें ''विश्वनाथ मुखर्जी'' का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। वाक्यपूर्ति परीक्षण के एकांश के कतिपय उदाहरण नीचे दिये जा रहे हैं। जैसे कि-
5. मेरे माता-पिता मुझसे प्राय: ....
6. मेरी इच्छा है कि ....
7. मैं प्राय: सोचता रहता हूँ कि .... इत्यादि।

4. चयन या क्रम परीक्षण -

प्रक्षेपी परीक्षणों की अन्य विधि चयन या क्रम परीक्षण है। इस प्रकार के परीक्षणों में प्रयोज्य को परीक्षण उद्दीपकों को एक विशिष्ट क्रम में सुव्यवस्थित करना होता है अथवा दिये गये परीक्षण उद्दीपकों में से कुछ उद्दीपकों को अपनी पसंद, इच्छा या अन्य किसी आधार पर चुनना होता है। परीक्षणकर्ता, प्रयोज्य

द्वारा चुने गये उद्दीपकों या उन उद्दीपकों को प्रयोज्य द्वारा जिस क्रम में सुव्यवस्थित किया जाता है, के आधार पर उसके व्यक्तित्व के शीलगुणों का मापन करता है।

उद्दीपकों को एक खास क्रम में सुव्यवस्थित करने तथा बहुत सारे उद्दीपकों में से प्रयोज्य द्वारा कुछ उद्दीपकों का चयन करने के कारण ही इस परीक्षण का नाम क्रम या चयन परीक्षण रखा गया है। इस श्रेणी में आने वाले कुछ प्रमुख परीक्षण हैं-

A. **जोन्डी परीक्षण-** इस परीक्षण का निर्माण सन् 1947 में जोन्डी द्वारा किया गया था।

 I. इसमें प्रयोज्य को अनेक फोटोग्राफ के छ: समूह एक-एक करके दिखलाये जाते हैं।

 II. इन तस्वीरों में से प्रयोज्य को दो ऐसे तस्वीरें चुनने के लिये कहा जाता है, जिनको वह सबसे अधिक पसन्द करता है तथा दो तस्वीरें ऐसी चुननी होती हैं, जिन्हें वह सर्वाधिक नापसंद करता है।

 III.प्रयोज्य द्वारा चयनित तस्वीरों के आधार पर परीक्षणकर्ता द्वारा उसके व्यक्तित्व के शीलगुणों का मापन किया जाता है।

B. **काहन टेस्ट ऑफ सिम्बोल अरेन्जमेन्ट (1955)-** पाठकों, जैसा कि इसके नाम से ही स्पष्ट है कि इसका निर्माण महान् मनोवैज्ञानिक काहन द्वारा सन् 1955 में किया गया था।

 I. इस परीक्षण में प्रयोज्य को 16 प्लास्टिक से बनी हुयी वस्तुऐं दिखायी जाती है। जैसे कि- तारा, पशु, क्रास इत्यादि और इन्हें कई श्रेणियों में छाँटना होता है, जैसे घृणा, प्रेम, अच्छा, बुरा, जीवित मृत इत्यादि।

 II. इसके बाद प्रयोज्य से पूछा जाता है कि उसने जिन-जिन 16 वस्तुओं को देखा है। उन वस्तुओं से वह किस व्यक्ति, वस्तु या घटना को साहचर्चित कर रहा है अथवा वह वस्तु उसे जिसके समान दिखाई दे रही है।

 III.प्रयोज्य द्वारा जो अनुक्रिया व्यक्त की जाती है, उस आधार पर उसके व्यक्तित्व का मापन किया जाता है।

C. **अभिव्यंजक परीक्षण-** जैसा कि इस परीक्षण के नाम से ही आपको स्पष्ट हो रहा होगा कि यह एक ऐसा प्रक्षेपी परीक्षण है, जिसमें प्रयोज्य को स्वयं को अभिव्यक्त करने का मौका दिया जाता है। अब प्रश्न यह उठता है कि व्यक्ति स्वयं को इस परीक्षण में किस प्रकार से अभिव्यक्त करता है अर्थात् अभिव्यक्ति का आधार क्या होता है? इस परीक्षण में प्रयोज्य एक तस्वीर बनाता है। प्रयोज्य द्वारा जिस प्रकार की तस्वीर या चित्र बनाया जाता है, उस आधार पर उसके व्यक्तित्व के शीलगुणों के विषय में अनुमान लगाना संभव हो पाता है। अभिव्यंजक परीक्षणों की श्रेणी में आने वाले कुछ प्रमुख परीक्षण हैं-ः

 I. ड्रा-ए-परसन परीक्षण (DAP Test)

 1. इसका निर्माण मैकोवर ने किया था।
 2. इस परीक्षण में प्रयोज्य को एक व्यक्ति का चित्र बनाने के लिये कहा जाता है।

3. इसके बाद कभी-कभी आवश्यकतानुसार विपरीत लिंग के व्यक्ति, माँ, आत्मन् या परिवार का चित्र बनाने के लिये भी कहा जाता है।
4. मै कोवर का मत है कि व्यक्ति जिस प्रकार से चित्र बनाता है, उसके आधार पर उसके अचेतन मन की अनेक प्रक्रियाओं के बारे में अनुमान लगाना संभव हो पाता है।

II. घर-पेड-व्यक्ति परीक्षण (H-T-P test)-

1. इस परीक्षण का निर्माण प्रसिद्ध विद्वान बक द्वारा सन् 1948 में किया गया था।
2. इसमें व्यक्ति को एक पेड़ तथा एक व्यक्ति का चित्र बनाना होता है।
3. इसके बाद इन चित्रों का विवेचन एक साक्षात्कार में करना होता है।
4. व्यक्ति द्वारा जिस ढंग से चित्र का वर्णन किया जाता है, उसके आधार पर उसके व्यक्तित्व के शीलगुणों का विश्लेषण किया जाता है।

III.बद्ध वेण्डर-गेस्टाल्ट-परीक्षण- इस परीक्षण का निर्माण सन् 1938 में लिऊरेटा वेण्डर द्वारा किया गया था।

1. व्यक्ति के बौद्धिक ह्रास की मात्रा जानने के लिए इस परीक्षण का प्रयोग किया जाता है।
2. इसमें 9 अत्यधिक साधारण चित्र होते हैं।
3. इन चित्रों को देखकर पहले व्यक्ति को उनकी नकल उतारने के लिये कहा जाता है।
4. इसके बाद उसके सामने से चित्र हटा लिये जाते हैं और उसे अपनी स्मृति के आधार पर ही उस चित्र को बनाना होता है।
5. चित्र बनाते समय प्रयोज्य द्वारा प्राय: अनेक गलतियाँ होती हैं। जिनमें से कुछ प्रमुख निम्न हैं, जैसे कि- समन्वय में कमी पुनरावृत्ति चित्र घूर्णन इत्यादि।
6. वेण्डर का मत है कि चित्र को बनाते समय की गई गलतियों के आधार पर व्यक्ति के व्यक्तित्व का विश्लेषण किया जाता है।

3.3.6. प्रक्षेपी विधि की सीमायें -

इस बात में कोई संदेह नहीं है कि मनोवैज्ञानिक परीक्षण के क्षेत्र में प्रक्षेपी विधियों का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। और खासकर व्यक्तित्व के मापन में, फिर भी कुछ विद्वानों ने कतिपय आधारों पर प्रक्षेपी विधियों की आलोचना की है। आइजेन्क ने निम्न आधारों पर प्रक्षेपण परीक्षण की आलोचना की है-

1. **अर्थपूर्ण तथा परीक्षणीय सिद्धान्त का अभाव-** आइजेन्क का कहना है कि प्रक्षेपी विधियों का कोई परीक्षणीय तथा अर्थपूर्ण सिद्धान्त नहीं है। अत: इनके द्वारा जो व्यक्तित्व का मापन किया जाता है, उससे व्यक्तित्व के बारे में कोइ्र ठोस निष्कर्ष नहीं निकलता है।

2. **आत्मनिष्ठ प्राप्तांक लेखन-** प्रक्षेपण परीक्षण की आलोचना इस आधार पर भी की गई है कि इन परीक्षणों का प्राप्तांक लेखन एवं व्याख्या अत्यधिक आत्मनिष्ठ है, जिसके कारण तक ही व्यक्ति के व्यक्तित्व का मापन यदि अलग-अलग व्यक्तियों द्वारा किया जाता है तो उस व्यक्तित्व के बारे में उनके निष्कर्षो में भी भिन्नता पाई जाती है, जो किसी भी प्रकार से अर्थपूर्ण नहीं होता है।
3. **उच्च वैधता का अभाव-** आलोचकों का यह भी मत है कि प्रक्षेपी विधियों में पर्याप्त वैधता का अभाव पाया जाता है।
4. **प्रक्षेपीय परीक्षण के सूचकों तथा शीलगुणों के बीच प्रत्याशित संबंध का वैज्ञानिक आधार नहीं-** आइजेन्क ने प्रक्षेपण परीक्षण की आलोचना इस आधार पर भी की है कि प्रक्षेपीय परीक्षण के सूचकों तथा शीलगुणों के बीच प्रत्याशित संबंध का कोई वैज्ञानिक आधार नहीं है।

इस प्रकार अनेक आधारों पर प्रक्षेपी विधियों की आलोचना की गई है।

उपर्युक्त विवरण से आप जान चुके हैं कि प्रक्षेपी विधि क्या है? प्रक्षेपण क्या हैं? प्रक्षेपी विधि में कौन-कौन से प्रमुख परीक्षण आते हैं और उनके क्रियान्वयन का तरीका क्या है। यद्यपि विद्वानों ने अनेक तर्क देकर प्रक्षेपी विधि की आलोचनायें की है तथापि मनोचिकित्सा की दृष्टि से व्यक्तित्व मापन में प्रक्षेपी विधियों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

3.3.7. समाजमिति शोध प्रविधि

समाजमिति प्रविधि के निर्माण का प्रसिद्ध श्रेय समाजशास्त्री मोरेनो को जाता है। तकनीकी के मूल रूप का विवरण प्रस्तुत करते हुए मेरोने ने बताया कि इस तकनीकी के छः आवश्यक अवयव या पक्ष हैं-

1. इस तकनीकी के माध्यम से किसी समूह के सदस्यों से प्रोडक्ट संग्रह सदस्य के समक्ष समूह की सीमा को परिभाषित करने के बाद किया जाता है।
2. व्यक्ति के समूह की किसी एक या अथवा सीमित संख्या वाली क्रियाओं जैसे पढ़ने कार्यालय में कार्य करने, सिनेमा जाने, यात्रा करने का उल्लेख मापदंड के रूप में किया जाता है।
3. प्रत्येक व्यक्ति को यह चुनाव करना पड़ता है कि वह किन किन व्यक्तियों के साथ मापदंडईय क्रिया करना स्वीकार करेगा और किन किन व्यक्तियों के साथ इन क्रियाओं को करना नहीं चाहेगा। व्यक्तियों की स्वीकृति और अस्वीकृति के संबंध में सदस्य को मनचाहे संख्या में चुनने की स्वतंत्रता दी जाती है।
4. यह चुनाव सदस्य एकांत में निजी तौर पर गोपनीयता के साथ करता है और अनुसंधानकर्ता के अतिरिक्त अन्य किसी को उसके द्वारा चुने गए नाम या नामों की जानकारी नहीं दी जाती।
5. चुनाव के समय उसके समक्ष जो प्रश्न प्रस्तुत किया जाता है उसे ऐसी भाषा में व्यक्त किया जाता है कि प्रयोज्य को वह आसानी से समझ में आ जाए।

6. इन स्वीकृति और अस्वीकृति यों का उपयोग उस समूह को पुनर गठित करने के लिए किया जाता है।

समाजमिति किस मूल रूप का उपयोग जिस रूप में किया जाता है वह मुरैनो द्वारा प्रतिपादित रूप से भिन्न है। आज कहीं भी समाजमिति से प्राप्त शुद्ध तत्वों के आधार पर समूह को पुनरगठित नहीं किया जाता, क्योंकि ऐसा करना अधिकांश स्थितियों में असंभव है। दूसरी ओर बहुत कम अनुसंधानों में व्यक्ति की सीमित संख्या में दूसरों को स्वीकार और अस्वीकार करने का विकल्प समाजमिती प्रक्रिया के अंतर्गत प्रस्तुत किया जाता है। आजकल इस तकनीकी से किए जाने वाले अनुसंधान में एक, दो या तीन लोगों को किसी क्रिया के लिए स्वीकार करने और उतने ही लोगों को अस्वीकृत करने का विकल्प किया जाता है। तीसरी बात यह है कि समाजमिती तकनीकी के उपयोग के लिए यह भी अनिवार्य नहीं माना जाता कि चुनने वाले के समक्ष समूह की सीमा स्पष्ट कर दी जाए, और साथ ही साथ यह भी आवश्यक नहीं माना जाता की आमने-सामने अंतरक्रिया करने वाले और छोटे आकार के समूह को ही लिया जाए। बड़ी संख्या वाले समूहों में भी इस तकनीक द्वारा व्यक्तियों के स्वीकृत या अस्वीकृत विकल्पों का उपयोग किया जाता है। इस तरह समाजमिती तकनीक के वर्तमान रूप में किसी भी क्रिया के लिए किसी भी प्रकार के समूह में पाए जाने वाले व्यक्तियों द्वारा अन्य व्यक्तियों को गोपनीय हृदय से स्वीकार और अस्वीकार करने का विकल्प देकर प्रदत्त प्राप्त किया जाता है। इसीलिए कालिंजर ने समाजमिति की परिभाषा करते हुए बताया है कि इस तकनीकी में किसी समूह के प्रत्येक सदस्य दी हुई संख्या में, गोपनीय रूप से उन व्यक्तियों के नामों की जानकारी की जाती है जिनको वह किसी निर्धारित संकृत्य में सहभागी बनाने के लिए उद्धत है और साथ ही साथ दी हुई संख्या में से उन लोगों के भी नाम जानने की कोशिश की जाती है जिन के साथ वह उस संकृत्य में सहभागी बनने के लिए उद्दत नहीं है। समूह कैसा हो, सहभागी होने के लिए कैसी क्रिया हो और कितने लोगों के नाम संस्कृतय के लिए स्वीकृत और कितने को अस्वीकृत करने का विकल्प दिया जाए, अनुसंधानकर्ता के उद्देश्य और अभिकल्प पर निर्भर करता है। इस प्रकार इस तकनीकी से किसी संकृत्य में सहभागी होने की वरीयता और सहभागी न होने की वरीयता की सूचना प्राप्त होती है।

3.3.8. समाजमिति विधि की विशेषताएं :

समाजमिति एक ऐसी तकनीक है जिसमें किसी समूह के प्रत्येक व्यक्ति से व्यक्ति के आत्मनिष्ठ अनुभवजन्य मापदंड के आधार पर निर्मित उसकी उन भावनाओं को ज्ञात किया जाता है जो वह दूसरे व्यक्तियों के बारे में गोपनीय रीति से रखता है। यह तकनीकी सीमित सामाजिक परिवेशों में बहुत सीमित संख्या वाले सामाजिक समूहों के अध्ययन के लिए उपयोगी है। अंतर वैयक्तिक संबंधों का अध्ययन करने के लिए ही इस विधि का उपयोग किया जा सकता है। व्यक्ति प्रत्यक्षीकरण के अध्ययन में व्यक्ति के गुणों की विशेषताओं की रेटिंग कराकर प्रोडक्ट प्राप्त करने की इस तकनीकी से मिलती जुलती है।

यह तकनीकी अनुसंधानकर्ता के दृष्टिकोण से अत्यंत सरल, कम खर्चीली और थोड़े समय में प्रचुर मात्रा में प्रदत्त संकलित कराने वाली है। प्रयोग के दृष्टिकोण से उसके विकल्पों की गोपनीयता बने

रहने का आश्वासन मिल जाने के बाद अत्यंत रुचिकर और अध्ययन में भाग लेने के लिए प्रेरणादायी है। मात्र यही एक ऐसी तकनीक है जिसके माध्यम से एक ही समय किसी समूह के अंतर क्रियात्मक प्रतिरूप और उस समूह में प्रत्येक व्यक्ति के रोगात्मक संक्रत्य का निरूपण करने के लिए प्रदत्त प्राप्त किया जा सकता है।

समाजमिति तकनीक का प्रयोजन समूह में व्यक्ति विशेष के सामाजिक सम्बन्धों का अध्ययन करना है। इसके द्वारा विशेषकर, एकाकी और उपेक्षितों तथा अस्वीकृत व्यक्तियों की व्यक्तित्व सम्बन्धी समस्याओं का पता लगाने के लिए किया जाता है। व्यक्तियों के सामाजिक व्यवहार का आकलन करने हेतु यह तकनीक सूचना प्राप्त करने का एक उपयुक्त माध्यम है। इस तकनीक में यह प्रयास किया जाता है कि समूह के सदस्यों में, उनसे यह पूछकर कि वे विभिन्न स्थितियों में किसे चुनेंगे या नहीं चुनेंगे। इस तकनीक का प्रयोग विभिन्न शिक्षण स्थितियों में, सामाजिक समायोजन, सामूहिक गतिकीय, अनुशासन तथा अन्य सामाजिक सम्बन्धों की समस्याओं के अध्ययन में प्रयोग किया जाता है। समूहों के अन्दर सामाजिक सम्बन्धों के मापन के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार की तकनीकों का प्रयोग किया जाता है। शिक्षा के क्षेत्र में निम्नलिखित तकनीकों का प्रयोग मुख्य रूप से किया जाता है।

3.3.9. समाजमिति तकनीक की प्रविधियाँ

1. सोशियोग्राम (Sociogram)
2. सामाजिक माप मैट्रिक्स (Sociometric Matrices)
3. समाजमितीय सूचकांक (Sociometric Index)
4. गेस-हू-टेकनीक (Guess who Technic)
5. सामाजिक दूरी स्केल (Social Distance Scale)

1. सोशियोग्राम (Sociogram) - सोशियोग्राम में समूह के सदस्यों द्वारा एक-दूसरें के प्रति किये गये पसन्दों को एक आलेख या सादे कागज पर चित्र बनाकर दिखाया जाता है। शोधकर्ता ऐसे प्रश्नों से आरम्भ करता है जैसे ''प्रत्येक सदस्य से यह पूछा जाता है कि आप किसके साथ कार्य करना सर्वाधिक पसन्द करेंगें? अपनी पहली, दूसरी तथा तीसरी पसन्द बताइए।'' यदि समूह में लड़के तथा लड़कियॉ दोनो हैं तो लड़कों का चिन्ह 'त्रिकोण' (Δ) और लड़कियों का 'वृत्त' (0) हो सकता है। पसन्द का एक दिशा सूचक तीर से प्रदर्शित कर सकते हें और आपसी चयन को दोनों दिशाओं की ओर इंगित करते हुए तीर ($\leftrightarrow$) से प्रदर्शित किया जा सकता है। जो सदस्य सबसे अधिक लोगों के द्वारा चुने जाते हैं उन्हें 'तारा'(Stars) कहा जाता है। जो सदस्य दूसरे के द्वारा नहीं चुने जाते हैं उन्हें 'आइसोलेट्स' कहा जाता है। समूह के सदस्यों द्वारा एक-दूसरे को चुनकर बनाए गये छोटे समूह को 'क्लिक' कहा जाता है। सोशियोग्राम के निर्माण में दूसरे चरण में तालिका बनायी जाती है। तालिका में छात्र का नाम तथा उसकी क्रम संख्या लिखी जाती है । पहले तीन कालमों में विद्यार्थी की अपनी पसन्द /चयन क्रम भरी जाती है।

अगले तीन कालमों में प्रत्येक छात्र दूसरों द्वारा जितनी बार चुना गया तथा अन्तिम कालम में कुल चयनों का योग दर्शाया है।

सामाजिक माप आंकड़ा पत्र

क्र. सं.	छात्र का नाम	उसकी चयन			जितनी बार चुना गया			कुल चयन
		पहली	दूसरी	तीसरी	पहली	दूसरी	तीसरी	
1	अनिल कुमार	3	6	7	0	1	0	1
2	कुलदीप कुमार	1	4	3	1	0	1	2
3	ललित कुमार	7	4	1	0	1	3	4
4	सुरेश	2	3	6	1	1	1	3
5	सतीश	4	6	2	2	3	0	5
6	आशीष	3	4	7	0	1	2	3
7	अखिलेश	1	2	4	0	0	0	0

आंकड़ा पत्र पर पहला छात्र अनिल कुमार है। उसने 'छात्र की चयन' कालम में छात्र संख्या पहले चयन में 3 लिखा, पहला चयन ललित कुमार, दूसरी पसन्द आशीष तथा तीसरी पसन्द अखिलेश है। 'कितनी बार चुना गया' कालम में अनिल कुमार एक छात्र द्वारा दूसरी चयन में चुना गया और पहली व तीसरी चयन में किसी भी विद्याथी ने उसे नहीं चुना। अन्य विद्यार्थियों द्वारा वह केवल एक बार चुना गया और उसे 'कुल चयन' के कालम में दिखाया गया।

कुल चयन कालम में स्पष्ट है कि 'सतीष' तथा 'ललित कुमार' के क्रमश: 5 बार तथा 4 बार चुना गया। यह विद्यार्थी 'स्टार्स' कहे जाते हैं। 'अखिलेश' को किसी अन्य विद्यार्थी द्वारा नही चुना गया। ऐसे विद्यार्थियों को 'आइसोलेट' कहा जाएगा। अनिल कुमार, कुलदीप कुमार, सुरेश, आशीष कम बार चुने गये इन्हें उपेक्षित (नेगेलक्टीज) कहेंगे।

सोशियोग्राम समूह के सम्बन्धों का आकृति चित्र प्रस्तुत किया जाता है। इसके निर्माण में निम्न प्रक्रिया अपनायी

जाती है।

1. 'स्टार्स' के नाम सोशियोग्राम के मध्य में रखा जाता है। लड़को के चिन्ह त्रिकोण में तथा लड़कियों को वृत्त में रखा जाता है।
2. 'आइसोलेट्स' जिन्हें बहुत कम चुना गया, उन्हें सोशियोग्राम के बाहरी क्षेत्र में रखिए।
3. ज्यादा अंक प्राप्त करने वालों को 'स्टार्स' के पास रखा जाता है।

4. पूरी रेखा से पहले चयन को तथा खण्डित रेखा दूसरे चयन को तथा बिन्दु -डैश चिन्ह तीसरे चयन को दर्शाते हैं।

2. वरण तालिका- इस विधि में एक ऐसी तालिका तैयार की जाती है जिसमें समूह के सदस्यों की संख्या के आधार पर एन x एन वर्गो वाली सारणी तैयार हो जाती है। तालिका के बायीं ओर पंक्ति के पहले एक सदस्य का नाम या संकेत नाम लिखा जाता है और तालिका के ऊपरी सिरे पर प्रत्येक कॉलम के ऊपर पंक्ति वाले क्रम में व्यक्तियों के नाम लिख लिए जाते हैं। इस तालिका में उस पंक्ति के व्यक्ति के वर्णों को धन और अस्वीकृतियों को ऋण के चिन्हों से व्यक्त किया जाता है। वह जिसको स्वीकार करता है उसकी पंक्ति में ऋण का चिन्ह बना दिया जाता है।

कालम योग व्यक्ति द्वारा किए गए वर्णों की संख्या के सूचक होते हैं। यह स्वत: स्पष्ट है कि इस तालिका में बाय के ऊपर कोने से नीचे के दाहिने कौने के बीच वाले वृत्त बिल्कुल खाली छूट जाते हैं क्योंकिकि समाजमिति में किसी सदस्य को स्वंय को स्वीकृति या अस्वीकृति करने की सुविधा नहीं होती। इस तालिका के आधार पर व्यक्तियों के वरणोंझका उपयोग कर सदस्यों को कोटि क्रम में प्रदर्शित किया जा सकता है इससे अधिक उपादेयता इस विधि को नहीं है, जब तक कि इन वरणों की संख्या का किसी अन्य सांख्यिकीय विधि से विश्लेषण न किया जाए।

3- समाजमितिक वरण परिच्छेदिका विश्लेषण- इस तकनीक को जेनिंग्स 1943 ने विकसित किया है। इस तकनीक में वरणो का विश्लेषण करने के लिए प्रत्येक व्यक्ति की वरण स्थिति को छह भागों में विभक्त किया जाता है। इस तकनीक का उपयोग तभी हो पाता है जब प्रति सदस्य को समाजमितिक वरण करने के लिए यह सुविधा दी गई हो कि वह जितने लोगों को चाहे प्रासंगिक क्रिया के लिए स्वीकार या अस्वीकार करें ।इसमें प्रत्येक सदस्य के लिए छह कालमों का निर्माण किया जाता है। पहले में व्यक्ति द्वारा किए गए धनात्मक वरणों की संख्या, दूसरे कालम में उसके द्वारा प्राप्त धनात्मक वरणों की संख्या, तीसरे कालम में उसके धनात्मक परस्पर वरण, चौथे में उसके द्वारा वयक्त अस्वीकृतियों की संख्या, पांचवें में उसके द्वारा प्राप्त अस्वीकृतियों की संख्या और अंतिम कॉलम में परस्पर ऋणात्मक वरणों की संख्या दी जाती है। स्वत: यह स्पष्ट है कि प्रथम तीन कालमों में व्यक्ति के वरण संरुप और अंतिम तीन कॉलमों में उसकी अस्वीकृति संरुप को प्रस्तुत किया जाता है। प्रत्येक सदस्य के वरण और अस्वीकृति संरुप को समाजमितिक परिच्छेदिका का नाम दिया जाता है ।इसके आधार पर समूह के साथ व्यक्ति के संबंध की कुछ अंश तक संख्यात्मक जानकारी प्राप्त होती है।

5. **अंतर्वैयक्तिक विशेषताओं के सूचकांक :** समाजमिति प्रदत्तों की कुछ विशेषताओं को लेकर अनेक प्रकार के सूचकांकों की गणना की जा सकती है. इन सूचकांकों को विभिन्न प्रकार के वर्गों में रखा जा सकता है. एक प्रकार के सूचकांक वे हैं जिनसे उन समूह इकाई की अनेक विशेषताओं के बारे में संख्यात्मक सूचकांक ज्ञात किये जाते हैं. कुछ सूचकांक समूह के व्यक्तियों की पृथक विशेषताओं को ज्ञात करने के लिए निकाले जाते हैं. बहुत से सूचकांक व्यक्ति की अन्तरक्रिया के परिमाण की जानकारी करते हैं. इन तीनों प्रकारों में बहुत से सूचकांक ऐसे है जिनकी गणना तभी की जा सकती है जब समाजमिति प्रक्रिया में व्यक्ति को मापदंडीय

क्रिया के लिए असीमित संख्या में व्यक्तियों को स्वीकृति और अस्वीकृति करने की सुविधा प्राप्त हो. दूसरी ओर कुछ सूचकांक ऐसे है जिनकी गणना सिमित संख्या में स्वीक्रति अस्वीकृति की स्थिति में ही संभव है इन सुच्कंको के सम्बन्ध में दूसरी महत्त्वपूर्ण बात यह की कुछ में द्स्विकृति अस्वीकृति की आवृत्ति और संख्या अंकगणितीय प्रक्रिया के माध्य से सूचकांक ज्ञात किये जाते हैं किन्तु अनेक सूचकांकों में समज्मितिक विशेषताओं का परिमानीय करण करने के लिए मनमाने ढंग से मापदंड बना लिया जाता है।

3.3.10. समाजमितिक विधि की विश्वसनीयता एवं वैधता

यह अनिवार्य रूप से माना जाता है कि किसी भी तकनीक से प्राप्त प्रदत्त तब तक वस्तुनिष्ठ और वैज्ञानिक नहीं होते हैं जब तक उनमें विश्वसनीयता और वैधता के गुण न हो। समाजमितिक प्रदत्तो की विश्वसनीयता और वैधता ज्ञात करना अत्यंत कठिन है क्योंकि समाजमितिक प्रदत्तों की वास्तविक प्रकृति विश्वसनीयता वैधता के गुणों के लिए अनुपयुक्त है। सामान्य विश्वसनीयता ज्ञात करने के लिए चार विधियों- निर्णयाको के बीच संगति, समयाअंतराल पर लब्धाकों में संगति, समान परीक्षणों के परिणामों में संगति और आंतरिक संगति का उपयोग किया जाता है। वैधता का निर्धारण करने के लिए विषय वस्तु वैधता, मानदंडोंन्मुख वैधता और निर्मिति की विधियों का प्रमुख रूप से उपयोग किया जाता है। समाजमितिक प्रदत्तों की विश्वसनीयता एवं वैधता का मूल्यांकन करने के लिए इन विधियों की उपयोगिता का निर्धारण करने से पूर्व यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि समाजमिति तकनीक से प्राप्त प्रदत्त वाचिक स्तर पर व्यक्ति की कामनाओं को प्रकट करते हैं और व्यक्ति की कामनाएं और उसके वाचिक व्यवहार, विशेषत: समूह के अंन्तर्क्रिया स्तर पर, अनेक कार्य को से प्रभावित होते हैं, और पर्याप्त शीघ्रता के साथ बदलते भी हैं। इसके फलस्वरूप समाजमितिक प्रदत्तों की विश्वसनीयता का निर्धारण कठिन हो जाता है। वाचिक व्यवहार होने के कारण वैधता का भी निर्धारण जटिल समस्या हो जाती है, तथापि अनेक लोगों ने समाजमितिक प्रदत्तों की विश्वसनीयता और वैधता निर्धारित करने के उद्देश्य से कई विधियों का उपयोग किया गया है।

विश्वसनीयता- अभी तक ने या उपकरण की विश्वसनीयता के निर्धारण में मनोवैज्ञानिक प्राय: चार विधियों का उपयोग करते हैं-

1- निर्णायकों के बीच संगति
2- विभिन्न समयो पर किए गए मापनों में संगति
3- प्रारूप वाले दो उपकरणों से प्राप्त लब्धाकों में संगति, तथा
4- उपकरण की आंतरिक संगति। इन्हीं विधियों का उपयोग कर समाजमितिक तकनीक की विश्वसनीयता का निर्धारण किया गया है।

दो निर्णायकों के बीच संगति का तात्पर्य सरल है। यदि समाजमितिक की एक ही तकनीक से प्राप्त प्रदत्त दो निर्णायकों को दिए जाए और यह कहा जाए कि उससे सामाजिक लेखा चित्र निर्मित करें तो दोनों निर्णायकों द्वारा बनाए गए चित्र एक दूसरे से भिन्न ने दिखाई पड़ेंगे। कारण यह है कि इस प्रकार के लेखा

चित्र निर्माण की कोई प्रमाणिक नियमावली नहीं है, तथापि बाह्य रूप से भिन्न लगने पर भी दोनों लेखाचित्रों से समूह की रागात्मक संरचना एक ही प्रकार की होती है। दोनों चित्र में सितारा, बहिष्कृत, पृथक्कृत, समूह में गुटबंदी, परस्पर आकर्षण- विकर्षण आदि गुणात्मक विशेषताएं एक ही रूप में प्रकट होती हैं। इस प्रकार गुणात्मक दृष्टि से समाजमितिक प्रदत्तों को विश्वसनीय माना जाता है। विभिन्न प्रकार के अंकगणितीय सूचकांकों की गणना चाहे जो भी करें, वे सर्वदा समान मूल्य के होंगे क्योंकि उनकी गणना में किसी प्रकार के आत्मनिष्ठ निर्णय की आवश्यकता नहीं पड़ती।

विभिन्न समयों पर प्राप्त सामाजिक मामलों में संगति का तात्पर्य है कि एक ही समूह में सामाजिक वरणों और अस्वीकृतियों का कुछ अंतराल के बाद मापन करने पर एक समान माप उपलब्ध हो। समाजमितिक में विश्वसनीयता मापन की इस विधि का उपयोग सैद्धांतिक दृष्टिकोण में तर्कसंगत नहीं लगता। अंतर्वैयक्तिक संबंध एक गतिकीय प्रक्रम है। समय के साथ अनुभवों में वृद्धि के कारण तथा अनेक परिवेशीय चरों के हस्तक्षेप से अंतर्वैयक्तिक संबंध बदलते रहते हैं। समाजमितिक वरणों और अस्वीकृतियों के लिए समय के साथ अपरिवर्तय रहने का अभिग्रह तर्कसंगत नहीं, तथापि अनेक समाज मित्रों ने मापन पुनर्मापन विधि का उपयोग कर समाजमितिक मापों की विश्वसनीयता के स्तर एवं उनको प्रभावित करने वाले चरों को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है। इन अध्ययनों से समय के साथ समाजमितिक मापों की संगति के संबंध में मूल्यवान जानकारी प्राप्त हुई है। परीक्षण पुनर्परीक्षण के बीच सहसंबंध उच्च स्तरीय रीति से धनात्मक होता है किंतु इन दोनों के बीच दरार जितना लंबा होता है, सहसंबंध की मात्रा भी उतनी ही न्यून होती है। दूसरी ओर यह पाया गया है कि इस प्रकार के परीक्षण से प्राप्त लगभग प्रयोज्यों की आयु के साथ बढ़ जाते हैं। तात्पर्य यह है कि अधिक आयु के लोगों में पारस्परिक संबंध अल्प वयस्कों की तुलना में अधिक स्थाई होता है। ऐसा क्यों होता है, यह एक रुचिकर विवाद का विषय है। इस स्थायित्व को अंतर्वैयक्तिक संबंधों के स्थायित्व के कारण कहा जा सकता है और स्मृति क्षमता में वृद्धि के कारण यह भी पाया गया है कि समय के साथ प्रथम वरीयता में अधिक, दूसरी वरीयता में उससे कम और तीसरी वरीयता में उससे भी कम स्थायित्व दिखता है। उन समूहों के समाजमितिक माप समय के साथ अधिक स्थिर होते हैं जो अधिक दिनों से अस्तित्व में है और सक्रिय भी हैं। अंतिम बात यह है कि समय के साथ मापों की संगति में विस्तृत अंतर्वैयक्तिक भिन्नता पाई जाती है।

वैधता- यदि समाजमितिक माप की मात्रा वाचिक वरण व्यवहार(Preference behaviour) मान लिया जाए तो वैधता का प्रश्न उपस्थित नहीं होता। विभिन्न प्रायोगिक अध्ययनों में जिस प्रकार अध्ययन किए जाने वाले व्यवहारों के माप की वैधता का प्रश्न नहीं उठाया जाता, उसी प्रकार समाजमिति वाचिक वरण व्यवहार का मापन है और इसलिए स्वयं वैध है। वैधता का प्रश्न तभी उपस्थित होता है जब समाजमितिक को एक परीक्षण के रूप में देखा जाए। मनोवैज्ञानिक परीक्षण में और समाजमिति में अनेक महत्वपूर्ण अंतर है। वैधता का प्रश्न समाजमितिक माप के संबंध में उसी सीमा तक प्रासंगिक है, जिस सीमा तक अन्य मनोवैज्ञानिक चरों के साथ इसके प्रकार्यात्मक संबंध को प्रदर्शित किया जा सकता है। इस दृष्टिकोण से समाजमितिक मापों और अनेक प्रकार के नैमित्क व्यवहारों के बीच सहसंबंध पाए गए हैं। समाजमितिक माप के आधार पर लोगों के व्यक्तित्व की विशेषताओं, उनके अभियोजन स्तर उनकी

नेतृत्व कुशलता आदि का पूर्व कथन किया जा सकता है। इस दृष्टिकोण से समाजमितिक एक वैध तकनीक है।

3.3.11. समाजमिति की अनुसंधान उपयोगिता

पहले ही इंगित किया जा चुका है कि समाजमिति तकनीक किसी समूह में व्यक्ति की संस्थिति तथा अन्तर्वैयक्तिक संबंधों का मापन करने की विधि है। समाजमिति से संबंधित तकनीकों का विवेचन कर यह स्पष्ट किया जा चुका है कि लचीली होने के कारण इस तकनीक का अनुकूलन अनेक प्रकार की समाज मनोवैज्ञानिक समस्याओं के अध्ययन हेतु किया जा सकता है। इसका उपयोग नेतृत्व, अभियोजन स्तर, व्यक्तिगत संबंधी विशेषताओं, एवं जनसांख्यिकी भिन्नताओं के अध्ययन में किया गया है। बुद्धि और निष्पादन के अध्ययन में भी समाजमिति की प्रासंगिकता को मनोवैज्ञानिकों ने प्रदर्शित किया है। अन्तर्वैयक्तिक आकर्षण के अध्ययन में प्रदर्शित किया गया है कि आकर्षण-विकर्षण को किस प्रकार बैठने उठने की समानता, रहने की निकटता, जाति, धर्म, निवास स्थान, लिंग, आयु आदि चर प्रभावित करते हैं। वस्तुत: समूहों की रागात्मक संरचना और उससे संबंधित हेतु इससे अधिक उपादेय कोई अन्य कार्य विधि नहीं है।

3.3.12. सारांश

प्रक्षेपी प्राविधि को यदि सार रूप में देखें तो इनके अनुसार व्यक्ति व्यक्ति वास्तव में किस प्रवृत्ति का है। इसका वास्तविक ज्ञान उससे सीधे प्रश्न पूछकर नहीं लगया जा सकता है। इसके लिए उसके अचेतन मन में छुपे व्यक्तित्त्व को इन प्रविधियों को बाहर लाकर जाना जा सकता है। इस विधि का प्रयोग कक्षा-कक्षीय गतिविधियों में अध्यापक व्यवहार, अनुशासन, अभिप्रेरणा आदि के मापन में अधिक किया जा रहा है। समाजमिति प्राविधि सामाजिक विज्ञानों के लिए एक महत्त्वपूर्ण शोध प्राविधि है। जिसका प्रयोग वर्तमान में तेजी से बढ़ रहा है। दैनिक जीवन में हम इन प्रविधियों का प्रयोग जाने अनजाने प्रतिदिन करते रहते हैं। किसी व्यक्ति की रैंकिंग या उसके पसंद अथवा नापसंद की जाने वाली वस्तुओं, व्यक्तियों या स्थानों को क्रम में रखते समय हम इसी विधि का उपयोग करते हैं।

3.3.13. स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. प्रेक्षेपी अनुसंधान पद्धति के स्वरुप को समझाईये ?
2. प्रेक्षेपी प्रविधि अन्तरगत आने वाली समस्त विधियों का वर्णन करे?
3. प्रेक्षेपी प्रविधि की विशेषताओं से आप क्या समझते हैं?
4. प्रेक्षेपी प्रविधि की सीमाओं का उल्लेख करे?
5. समाजमिति विधि की किसे कहते हैं इसे परिभाषित करे?.
6. समाजमिति विधि के महत्त्व एवं विशेषताओं का वर्णन करे?
7. समाजमिति प्रविधि के द्वारा प्रदत्त विश्लेषण की प्रक्रिया को उदाहरन सहित समझाए?
8. समाजमिति प्रविधि के अन्तरगत आने वाली समस्त विधियों का वर्णन करे?
9. समाजमिति विधि की विश्वसनीयता एवं वैधता से आप क्या समझते हैं?.

3.3.14. शब्दावली : प्रक्षेपण, प्रक्षेपी अनुसंधान, समाजमिति, सोसिओग्राम, विश्वसनीयता, वैधता

3.3.15. संदर्भग्रंथ सूची

- सिंह, ए.के.(2008). सामाजिक विज्ञान में शोध विधियाँ. मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली.
- रावत, एच.(2013). सामाजिक शोध की विधियाँ.रावत प्रकाशन. जयपुर.
- त्रिपाठी, एल.बी.(2012). मनोवैज्ञानिक अनुसंधान पद्धतियाँ. एचपी भार्गव बुक हाउस, आगरा.
- कपिल, एच.के.(2004). व्यवहारिक अनुसंधान में शोध विधियाँ. विनोद पुस्तक मंदिर. आगरा.
- आर, *मुखर्जी. (1969).* सामाजिक शोध एवं सांख्यिकी. सरस्वती सदन, नई दिल्ली.

इकाई 4: नृजातीय विश्लेषण एवं क्यू-पद्धति

इकाई की रुपरेखा

3.4.0. उद्देश्य

3.4.1. प्रस्तावना

3.4.2. नृजातीय अध्ययन की परिभाषा एवं स्वरुप

3.4.3. महत्त्वपूर्ण सावधानियां

3.4.4. नृजातीय अध्ययन की विशेषताएं

3.4.5. नृजातीय अध्ययन में सिद्धांत का निर्माण एवं आंकड़ों का संकलन

3.4.6. नृजातीय अध्ययन की क्रिया विधि

3.4.7. क्यू-प्रणाली का स्वरुप

3.4.8. क्यू- प्रणाली में सांख्यिकीय विश्लेषण

3.4.9. क्यू- सार्ट के प्रकार

3.4.10. सारांश

3.4.11. अभ्यास प्रश्न

3.4.12. शब्दावली

3.4.13. संदर्भ ग्रंथ सूची

3.4.0. उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरांत आप :

- नृजातीय अध्ययन की परिभाषा एवं स्वरुप से परिचित हो जायेंगे.
- नृजातीय अध्ययन की विशेषताएं को समझ सकेंगे.
- नृजातीय अध्ययन में सिद्धांत का निर्माण एवं आंकड़ों का संकलन को समझ सकेंगे.
- नृजातीय अध्ययन की क्रिया विधि से परिचित हो सकेंगे.
- क्यू-प्रणाली के स्वरुप एवं परिभाषा से परिचित हो सकेंगे.
- क्यू- प्रणाली में सांख्यिकीय विश्लेषण एवं उसके विभिन्न प्रकारों को जान सकेंगे.

3.4.1. प्रस्तावना

मानव व्यवहार का मापन एक जटिल क्रिया है इसका पूर्णतः वस्तुनिष्ठ मापन आसन नहीं फिर विभिन्न समाज वैज्ञानिकों द्वारा इसके मापन के अनेक सराहनीय प्रयास किये गए हैं. नृजातीय अध्ययन विधि उनमे से एक महत्त्वपूर्ण प्रयास कहा जा सकता है. विभिन्न वैज्ञानिकों विधियों के माध्यम से जब हम किसी व्यक्ति या समूह का मापन करते हैं तो यह संभावना सदैव बनी रहती है की उसमे कुछ न कुछ वास्तविक क्षेत्र की तुलना में खामियां होंगी. ऐसी ही समस्यायों का निराकरण नृजातीय अध्ययन से किया गया है. हम वास्तविक घटना के साक्षी ही नहीं होते अपितु उसके भागीदार होते हैं ताकि उनके सामान ही सभी संवेगों का हम भी अनुभव कर सकें. क्यू- प्रविधि का एक सबसे प्रमुख पूर्व कल्पना यह होता है कि जहां तक संभव हो छांटें गए वस्तु समजातीय हो। इसका प्रधान कारण यह है कि इस तरह की प्रवृत्ति में शोधकर्ता एक यथार्थ तुलनात्मक अनुक्रियाओं, जो दिए गए वस्तुओं से उत्पन्न होता है, के अध्ययन में रुचि रखता है। अगर दिए गए उद्दीपक समजातीय नहीं होंगे, तो इस ढंग के तुलनात्मक अनुक्रियाओं का कोई अर्थ ही नहीं रह जाएगा।

3.4.2. नृजातीय अध्ययन की परिभाषा एवं स्वरुप

नृजातीय अध्ययन (अंग्रेजी : Ethnography) एक गुणात्मक अनुसंधान विधि है जिसका प्रयोग अक्सर सामाजिक विज्ञान में विशेष रूप से मानवशास्त्र और समाजशास्त्र में किया जाता है। इसके अंतर्गत अक्सर मानव समाज/संस्कृतियों पर अनुभवजन्य आँकड़े जुटाने का कार्य किया जाता है। आँकड़ा संग्रह का कार्य अक्सर प्रतिभागी अवलोकन, साक्षात्कार, प्रश्नावली, आदि के माध्यम से करता है।

नृजातीय अध्ययन का अंग्रेजी शब्द Ethnography ग्रीक भाषा के दो शब्दों के योग से बना है पहला Ethnos जिसका अर्थ होता है लोक (Folk),लोग (People) या राष्ट्र (Nation) तथा दूसरा Grapho जिसका अर्थ है लिखना (Write).

स्वरुप-

यह एक प्रकार से लोगों और संस्कृतियों का व्यवस्थित अध्ययन है। यह सांस्कृतिक घटनाओं का पता लगाने के लिए डिज़ाइन किया गया है जहां शोधकर्ता अध्ययन के विषय के दृष्टिकोण से समाज का अवलोकन करता है। नृवंशविज्ञान या नृजातीय अध्ययन रेखांकन और समूह की संस्कृति को लिखने का एक साधन है। इस प्रकार इस शब्द का दोहरा अर्थ कहा जा सकता है, जो आंशिक रूप से इस बात पर निर्भर करता है कि इसका उपयोग संज्ञा के रूप में किया जाता है।

यह अध्ययन आंशिक की अपेक्षा सम्पूर्णता की खोज करता है किसी व्यक्ति, संस्था, समाज, राष्ट्र आदि का अध्ययन उसके वास्तविक रूप में उसमे सम्मिलित होकर या उसका हिस्सा बनाकर उसके संदर्भ को ध्यान में रख करता है. अर्थात यह एक अपेक्षाकृत कठिन प्रविधि जिसके प्रयोग के लिए विशिष्ट योग्यता एवं अनुभव के साथ-साथ अमुक संस्कृति की समझ होना अति आवश्यक होता है. जैसा की ऊपर बताया गया है की यह एक प्रविधि मात्र नहीं अपितु यह अनेक गुणात्मक प्रविधियों का संगम है.

घटना में बिना छेड़छाड़ के उसको ज्यों का त्यों प्रस्तुत करना इसका मूल उद्देश्य होता है. नृवैज्ञानिक के लिए एक साथ दो पहलुओं पर विशेष ध्यान देना होता है पहला "व्यक्तियों" पर तथा दूसरा "घटना" पर

वर्तमान में नृजातीय अध्ययन के प्रयोग में काफी वृद्धि हुई है शोधकर्ताओं के मानस से यह भ्रम मिटा है की इसका प्रयोग महज मानव शास्त्र या समाजशास्त्र में ही होता है उदाहरण के तौर पर किसी विद्यालय में बच्चे कैसे शिक्षा अर्जित करें या कैसे एक समाजोपयोगी ज्ञान अर्जित करें इसका अध्ययन भी एक नृवैज्ञानिक कर सकता है. यह समय समय पर परिवर्तन पर जोर देते हैं और व्यक्ति को समाज की संरचना एवं संवेदना ग्रहण करने के लिए बाध्य करती है। उदाहरण विद्यालय में बच्चे पढ़ाई कैसे ग्रहण करते हैं और कैसे ज्ञानार्जन किया जाता है।

3.4.3. महत्त्वपूर्ण सावधानियां-

- मनोवैज्ञानिक अध्ययन करने के लिए शोधकर्ता के पास कानूनी रूप से स्वीकृति नहीं होती है।
- शोधकर्ता को किसी व्यक्ति के जीवन की व्यक्तिगत घटनाओं को जानने का अधिकार नहीं होता है।
- वास्तव में कुछ ऐसे पहलू होते हैं जिन पर शोधकर्ता स्पष्ट नहीं पूछ सकता है अर्थात दांपत्य जीवन में दखल देना संभव नहीं होता है।
- इसमें अनुसंधानकर्ता को अपनी सोच या विचारधारा को प्रदर्शित करने से बचना चाहिए।
- शोधकर्ता अन्य व्यक्ति के भाव आदि से प्रत्यक्ष प्रभावित होता है जिससे अपने प्रयोज्य के पक्ष में सोचना प्रारंभ कर देता है।

3.4.4. नृजातीय अध्ययन की विशेषताएं-

- इसके अतिरिक्त इससे प्राप्त उत्तर बहुत ही विश्वसनीय एवं वैध होते हैं इससे किसी व्यक्ति या समुदाय के विषय में समग्र ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। नृजातीय वैज्ञानिक अध्ययन में तथ्य या डाटा इकट्ठा करने के लिए वीडियो, ऑडियो रिकॉर्डिंग का उपयोग किया जा सकता है।
- समूह विशेष या संस्कृति विशेष के गहन विवेचन की कला और विज्ञान से लोगों का गहन अध्ययन किया जाता है यह लोगों के समग्र अनुभवों की प्रस्तुति करता है।
- इसके द्वारा स्वभाविक स्थिति प्राकृतिक अवस्था में लोगों का अध्ययन किया जाता है क्रमबद्ध विधियों द्वारा शोधकर्ता कि क्षेत्र में सीधी सहभागिता होती है इसके द्वारा साधारण क्रियाओं और सामाजिक अर्थों को ग्रहण करना होता है न कि अर्थों का बाहर ओपन करना होता है। अर्थात अध्ययन क्षेत्र में उपलब्ध हर संभव सूत्र के द्वारा आंकड़ों को एकत्र करना नृवैज्ञानिक का महत्वपूर्ण कार्य होता है।

- नृवैज्ञानिक अध्ययन में शोधकर्ता कि एक लंबे समय तक क्षेत्र के लोगों और दैनिक जीवन में सहभागिता होती है प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से घटनाओं का साक्षी होता है जो कहां जाता है वह सुनना होता है और उसी में वह अपने विवेक के अनुसार प्रश्न भी कर सकता है।
- इससे अध्ययन करते समय इस बात का ध्यान देना चाहिए कि प्रयोज्य के ऊपर अपनी संस्कृति और भाव (प्रेम, घृणा आदि) नहीं लादना चाहिए इसमें अध्ययन करता का जो अनुभव होता है वही ज्ञान होता है और यह अनुभव उनके साथ रहकर ही प्राप्त किया जा सकता है अर्थात शोधकर्ताओं पूर्ण रूप से अपने आप को उनके जैसा बना लेना चाहिए है।
- इसमें शोधकर्ता को ध्यान देना होता है कि उसके शोध का लाभ किसे प्राप्त होता है यहां ध्यान देना चाहिए कि जिस पर अध्ययन किया जा रहा है इसका लाभ उन्हीं को मिले।
- इस अध्ययन के माध्यम से व्यवहार, भाषा और वस्तुओं में निकटता का पता लगाया जाता है।
- प्रस्तुत शोध प्रविधि के माध्यम से गहन वर्णन और स्वाभाविक परिस्थिति का बोध एवं वास्तविकता की खोज की जाती है।
- इसमें शोधकर्ता को उस परिस्थिति में जाकर ध्यान से वह सावधानीपूर्वक अवलोकन उसके वास्तविक रूप में करना होता है।

शोधकर्ता अपनी संस्कृति से हटकर दूसरी संस्कृति का अध्ययन करते हैं और उसकी गहनता के साथ अध्ययन करना होता है। शिकागो के एक नृवैज्ञानिक(के.मैकमेरिया) ने भारत के गांव का अध्ययन किया तथा उन्होंने कहा कि भारतीय समाज के व्यक्ति आपस में मिल जुल कर रहते हैं. साथ ही एक दूसरे की हर संभव मदद के लिए तत्पर रहते हैं। उन्होंने भारत के गांव का अध्ययन करके अपनी एक व्याख्या में कहा कि "Indians are devidual not individual". अनुसंधानकर्ता को व्यक्ति की आंतरिक आवश्यकता को समझने के लिए सूझबूझ का उपयोग करना चाहिए न कि बाहरी तत्वों पर ध्यान देना चाहिए।

यह पूरी तरह से इंद्रियानुभविक है। शोधकर्ता को उन्हीं की नजर से देखना चाहिए था जो समझते हैं और बताते हैं वही सत्य होता है तात्पर्य है कि शोधकर्ता को व्यक्तिनिष्ठ दृष्टिकोण का उपयोग करना चाहिए। यह रेखीय विधि नहीं है या एक चक्रीय विधि है। अर्थात शोधकर्ता पुनः उस समूह में जाकर उनसे पूछताछ कर सकता है कि यह अध्ययन किया गया है वह सही है या कि कुछ और है।

रिचर्ड्सन(2000) ने नृजातीय शोध के कुछ महत्वपूर्ण मानकों की व्याख्या की- ठोस योगदान, सौंदर्यपरकता, वैचारिकता, प्रभाविकता, यथार्थ की अभिव्यक्ति इत्यादि।

नृजाति अध्ययन के प्रकार

1. Auto Ethnography
2. Applied Ethnography
3. Universal Ethnography

3.4.5. नृजातीय अध्ययन में सिद्धांत का निर्माण एवं आंकड़ों का संकलन -

समूह का सांकेतिक अर्थ- गुणात्मक शोध में नृजातीय अध्ययन की सबसे मुख्य बात यह है कि अध्ययनकर्ता दुनिया को अध्येता की दृष्टि से देखता है अर्थात शोधकर्ता जो समूह का अध्ययन कर रहा होता है उनको उन्हीं के नजरिए से देखने का प्रयास करता है। समूह के संकेतों और उनके अर्थों को सामाजिक संबंधों से जोड़ता है। क्योंकि अलग-अलग संस्कृतियों के अलग-अलग संकेत होते हैं और उनका सीधा संबंध समाज से होता है। अध्ययनकरता समूह से जो भी दस्तावेज प्राप्त करता है उसे सुरक्षित रखता है। इस विधि से सिद्धांत की रचना करते समय सभी प्रकार के प्रक्रिया और उसे समय-समय पर परिवर्तन को भी परखना पड़ेगा।

विज्ञान का अंतिम लक्ष्य कार्य एवं कारण के मध्य संबंध स्थापित करना होता है लेकिन यहां पर कुछ भिन्न है क्योंकि इसमें कारण-प्रभाव अस्पष्ट होता है इसलिए कहीं-कहीं पर कारण स्वयं प्रभाव और प्रभाव स्वयं कारण बन जाता है अर्थात कभी-कभी संस्कृति व्यक्ति को प्रभावित करती है और कभी-कभी व्यक्ति से संस्कृति प्रभावित होती है। अर्थात कारण एवं प्रभाव एक दूसरे के पूरक हैं।

आंकडों का संकलन –

प्रत्यक्ष अवलोकन- सहभागीय अवलोकन, क्षेत्र विवरण और व्यक्तिगत व्यवहार प्रदर्शन। साक्षात्कार- अध्ययन करता को उस पर कैसे प्राप्त करनी चाहिए जो उस परिस्थिति से अधिक से अधिक परिचित हो अर्थात् अनुभवी। गुणात्मक विधि से अध्ययन करने वाले अध्ययन करता के पास यह नैतिक जिम्मेदारी होनी चाहिए कि प्रयोज्य के निजी मामलों व भावनाओं को बिना ठेस पहुचाये आंकड़ों का संकलन करे तथा अनावश्यक व व्यक्तिगत आंकड़ों का प्रयोग अनावश्यक रूप से शोध विवरण में ना करें। इसमें अध्ययनकरता को दयावान, मित्रवत, एवं ईमानदार होना चाहिए।

प्रमुख मुद्दे- प्रजाति अध्ययन करता के पास सबसे बड़ी समस्या यह होती है कि वह उस क्षेत्र या परिवार में कैसे प्रवेश करें।

3.4.6. नृजातीय अध्ययन की क्रिया विधि -

1. यह निर्धारित करें कि शोध समस्या का अध्ययन करने के लिए नृवंशविज्ञान सबसे उपयुक्त डिजाइन है। यदि नृवंशविज्ञान उपयुक्त है आवश्यक है, यह पता हो कि एक सांस्कृतिक समूह अपनी मान्यताओं, भाषा, व्यवहार और समूह द्वारा सामना किए गए मुद्दों जैसे कि शक्ति, प्रतिरोध, और प्रभुत्व का पता लगाने के लिए, कैसे काम करता है।
2. फिर अध्ययन के लिए एक संस्कृति-साझाकरण समूह की पहचान करें और उसका पता लगाएं। यह समूह वह है जिसके सदस्य लम्बे समयावधि के लिए एक साथ रहे हैं, ताकि उनकी साझा भाषा, व्यवहार और व्यवहार के पैटर्न अमुक पैटर्न में विलय हो गए हैं। यह समूह एक ऐसा समूह भी हो सकता है जिसे समाज द्वारा हाशिए पर रखा गया है।
3. समूह के बारे में अध्ययन करने के लिए सांस्कृतिक विषयों, मुद्दों या सिद्धांतों का चयन करें। ये विषय, मुद्दे और सिद्धांत संस्कृति-साझाकरण समूह के अध्ययन के लिए एक उन्मुखीकरण ढांचा

प्रदान करते हैं। नृवंशविज्ञानियों ने सामान्य सेटिंग्स और विचार-विमर्श के पैटर्न में लोगों के जीवन चक्र, घटनाओं और सांस्कृतिक विषयों जैसे मुद्दों की जांच करके अध्ययन प्रारंभ करते हैं।

4. सांस्कृतिक अवधारणाओं का अध्ययन करने के लिए, यह निर्धारित करें कि किस प्रकार की नृवंशविज्ञान का उपयोग करना है। शायद समूह के कार्यों का वर्णन कैसे किया जाना चाहिए, या एक महत्वपूर्ण नृवंशविज्ञान कुछ समूहों के लिए शक्ति, आधिपत्य और वकालत जैसे मुद्दों को उजागर कर सकता है।
5. संदर्भ या सेटिंग जहां समूह काम करता है, में जाकर जानकारी एकत्र करना चाहिए, इसे फील्डवर्क कहा जाता है। आमतौर पर नृवंशविज्ञान में आवश्यक जानकारी के प्रकार अनुसंधान साइट पर जाकर ही एकत्र किए जाते हैं, साइट पर व्यक्तियों के दैनिक जीवन का सम्मान करते हुए विभिन्न प्रकार के आंकड़े एकत्र किये जाते हैं। नृवंशविज्ञान के लिए प्रयोज्यों का सम्मान, पारस्परिकता के क्षेत्र के मुद्दे, यह तय करना कि डेटा का मालिक कौन है आदि केन्द्रीय मुद्दे होते हैं.
6. नृवंशवैज्ञानिक संस्कृति-साझाकरण समूह के विवरणों के लिए एकत्र किए गए कई स्रोतों के डेटा का विश्लेषण करते हैं, जो समूह से ही निकलते हैं तथा एक समग्रता व्याख्या करते हैं। शोधकर्ता एक ही घटना की अनेक गतिविधियों पर लंबे समय तक ध्यान केंद्रित करके, संस्कृति-साझाकरण समूह के विस्तृत विवरण को संकलित करना शुरू करता है।
7. इस विश्लेषण के अंतिम उत्पाद के रूप में संस्कृति-साझाकरण समूह कैसे काम करता है, इसके लिए नियमों या सामान्यताओं का एक कार्य समूह तैयार करें। अंतिम उत्पाद समूह का एक समग्र सांस्कृतिक चित्र है जो प्रतिभागियों के विचारों (एमिक) के साथ-साथ शोधकर्ता (एटिक) के विचारों को भी शामिल करता है। यह समूह की जरूरतों की वकालत या समाज में बदलाव का सुझाव भी दे सकता है।

3.4.7. क्यू-प्रणाली का स्वरुप-

क्यू-प्रणाली की व्याख्या पहले **विलियम स्टीफेनसन** ने 1953 में मनोवृति, पसंदो, आदि के बारे में को दिए गए कथनों या अन्य कथनों का विश्लेषण करते हुए अध्ययन करने के लिए किया था। क्यू-प्रणाली की कार्यविधि को क्यू- प्रविधि कहा जाता है। इस प्रविधि में व्यक्ति दिए गए कथनों या अन्य उद्दीपकों को विभिन्न भागों में छांटता है। इन भागों को क्यू शार्ट कहा जाता है।

क्यू प्रविधि में प्रयोज्य दिए गए वस्तुओं, जैसे तस्वीरों, कथनों , शब्दों आदि को एक कोटि क्रम के रूप में दिए गए श्रेणियों में किसी निश्चित कसौटी के आधार पर छांटता है। प्रत्येक छाटें जाने वाले वस्तु जैसे कथन, शब्द या तस्वीर एक अलग कार्ड पर होता है और उन्हें प्रयोज्य या प्रयोज्यो का समूह दिए गए श्रेणियों में जिसकी संख्या सामान्यतः 9 या 11 होती है, में छांटता है। करलिंगर 1986 ने अपना मत व्यक्त करते हुए कहा है कि क्यू- प्रविधि का विश्वसनीय होने के लिए उसने सांख्यिकी स्थिरता पर्याप्त मात्रा में होने के लिए यह आवश्यक है कि छाटे जाने वाले वस्तुओं की संख्या 60 से कम नहीं तथा 140 से

अधिक नहीं होनी चाहिए। प्रयोज्य को यह निर्देश दे दिया जाता है कि दिए गए श्रेणियों में से प्रत्येक श्रेणी में वह एक निश्चित संख्या में वस्तुओं को छांटें। इससे फायदा यह होता है कि छांटने से प्राप्त वितरण सामान्य होगा या निश्चित रूप से अर्द्ध सामान्य होगा जिससे सांख्यिकीय विश्लेषण मैं काफी सुविधा होती है। परंतु यह कोई निश्चित नियम नहीं है। क्यू- प्रविधि में कभी-कभी प्रयोज्यों से यह भी आग्रह किया जाता है कि वे प्रत्येक श्रेणियों में छांटें गए वस्तुओं की संख्या बराबर बराबर रखें। इस तरह के सार्टिंग से मिलने वाले वितरण को आयताकार वितरण कहा जाता है।

नीचे दो ऐसे उदाहरण दिए जा रहे हैं जिनमें 11 श्रेणियों में दो समजातीय वस्तुओं को छांटने से प्राप्त आंकड़ों को दिखलाया गया है। पहले उदाहरण में 100 समजातीय वस्तुओं को (तस्वीर, ड्राइंग आदि) तथा दूसरे उदाहरण में 90 समजातीय वस्तुओं को अर्थात कथनों तथा अन्य शाब्दिक एकांशो को छांटने से प्राप्त आंकड़ों को दिखलाया गया है।

(अ) 100 एकांशों अर्थात तस्वीरों आरेखनों को श्रेणियों में छांटने के बाद प्राप्त आंकड़े-

2	4	8	12	14	20	14	12	8	4	2	
10	9	8	7	6	5	4	3	2	1	0	
सबसे पसंद अधिक पसंद										सबसे	कम

(ब) 90 एकांशों अर्थात शाब्दिक कथनों एवं शब्दों को 11 श्रेणियों में छांटने के बाद के आंकड़े-

3	4	7	10	13	16	13	10	7	4	3	
10	9	8	7	6	5	4	3	2	1	0	
सबसे पसंद अधिक पसंद										सबसे	कम

ऊपर के दोनों उदाहरण में सार्टिंग के एक सामान्य वितरण को दिखलाया गया है। इन दोनों तरह के सार्टिंग में श्रेणी '10' का अर्थ सबसे अधिक पसंद तथा '0' का अर्थ सबसे कम पसंद है इन दोनों के बीच के श्रेणियों को बीच की अन्य संख्याओं से दिखलाया गया है।

3.4.8. क्यू- प्रणाली में सांख्यिकीय विश्लेषण- क्यू-प्रणाली में जब सार्टिंग समाप्त हो जाता है तो उसके बाद उन आंकड़ों का सांख्यिकीय विश्लेषण करके किसी निश्चित निष्कर्ष पर पहुंचने की कोशिश की जाती है। सांख्यिकीय विश्लेषण करने में निम्नांकित दो तरह के सांख्यिकी का प्रयोग अधिक किया जाता है।

1- सहसंबंध विधि

2 - प्रसरण विश्लेषण

इन दोनों तरह के सांख्यिकी विधियों के प्रयोग का एक एक नमूना नीचे दिया जा रहा है -

अ- क्यू- प्रविधि में सहसंबंध विधि का एक उदाहरण- मान लिया जाए कि 5 छात्रों ने शिक्षण संबंधी 10 वाक्यों को 11 श्रेणियों में छांटा है। इसमें 10 वीं श्रेणी सबसे अधिक अनुमोदित का श्रेणी तथा 0 सबसे कम अनुमोदित का श्रेणी है आंकड़े तालिका 1.1 में दिखलाए गए हैं।

तालिका 1.1 छात्रों द्वारा शिक्षक सम्बन्धी 10 वाक्यों को 11 श्रेणियों में सोर्टिंग

शिक्षण सम्बन्धी वाक्य	छांटने वाले छात्र				
	A	B	C	D	E
1	1	1	8	7	1
2	2	2	5	5	2
3	5	4	9	8	4
4	0	0	10	10	0
5	4	3	10	10	4
6	6	5	0	9	5
7	3	3	10	10	3
8	3	3	10	10	3
9	4	3	10	10	3
10	3	4	9	10	4

तालिका 1.1 से स्पष्ट है कि छात्र A,B तथा E ने 11 श्रेणियों में से 5 से 6 वीडियो में ही सभी 10 वाक्यों को छांट रखा है जबकि छात्रा C तथा D ने 5 के बाद वाली श्रेणियों में वाक्यों को छांटा है।

तालिका 1.1 में छात्रों से जो आंकड़े प्राप्त हुए हैं उनके आधार पर उनमें सहसंबंध ज्ञात किया जाता है चूंकि 5 छात्र हैं अतः इनसे N(N-1)/2=4/2=10 जोड़े छात्र होंगे जिनसे 10 सहसंबंध गुणांक प्राप्त होंगे। इंशा संबंधों को एक सहसंबंध मैट्रिक्स तालिका 1 में दिखलाया गया है।

तालिका 1.2 पांच छात्रों द्वारा सोर्टिंग करने के उपरांत तालिका 1.1 में प्राप्त आंकड़ों के आधार पर प्राप्त सह्सम्बन्धी गुणांक

	A	**B**	**C**	**D**	**E**
A	+				
B	**0.932**	+			
C	**-0.343**	**-0.363**	+		
D	**0.264**	**0.292**	**0.329**	+	
E	**0.939**	**0.0978**	**0.293**	**0.318**	+

तालिका 1.2 से स्पष्ट है कि छात्रों के 3 जोड़ों का सहसंबंध गुणांक अधिक है। जैसे, छात्र A तथा B में 0.932 छात्र A तथा E में 0.939 तथा छात्र B तथा E में 0.978 है। इसका मतलब यह हुआ कि 5 छात्रों में से 3 छात्रों ने सार्टिंग स समान ढंग से किया है। अब उन्होंने किस प्रकार से सार्टिंग किया है यह जानने के लिए शोधकर्ता पुनः क्यू सार्ट आंकड़ों को ध्यानपूर्वक देखेगा और वह यह देखेगा की A,B तथा E द्वारा 10 शिक्षण वाक्यों में से किसे अधिक अनुमोदित किया गया तथा किसे कम अनुमोदित किया गया।

ब- क्यू- प्रविधि में ANOVA का उपयोग-क्यू- विधि में साधारण ANOVA तथा जटिल ANOVA दोनों का ही प्रयोग किया जाता है। स्टीफेन्सन 1953 ने एक अध्ययन किया जिसमें उन्होंने 90 शब्दों को लिया जो सप्रेंगर 1910 द्वारा प्रतिपादित मान की छह श्रेणियों अर्थात सैद्धांतिक, सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक, आर्थिक तथा सौंदर्यबोध श्रेणी के थे। इसके बाद इन शब्दों को कुछ संगीतज्ञों ने अपनी पसंद के अनुसार 11 श्रेणियों में छांटा और प्राप्त आंकड़ों पर एक - तरफा या साधारण ANOVA ज्ञात करके इस निष्कर्ष पर पहुंचे की संगीतज्ञ आपस में इन 6 मानकों के रूप में सार्थक रूप से भिन्न थे। चूकी इस अध्ययन में एक ही चर को 6 भाग में विभाजित किया गया था इसलिए इसे एक तरफा संरचित शॉर्ट कहा जाता है। करलिंगर 1972 ने दूसरा अध्यन किया है जिसमें उन्होंने 'दो तरफा संरचित शॉर्ट' का नमूना पेश किया है तथा इसमें उन्होंने दो - तरफा ANOVA का प्रयोग किया है। इस अध्ययन में उन्होंने दो चर अर्थात मनोवृति तथा अमूर्तता दोनों को दो दो भागों में बांटकर अध्ययन किया था। इस 2×2 तालिका से वे जटिल ANOVA का प्रयोग कर एक सार्थक परिणाम पर पहुंचे थे।

3.4.9. क्यू- सार्ट के प्रकार-

शोध मनोवैज्ञानिकों ने क्यू- सार्ट को निम्नांकित दो भागों में बांटा है-

1= असंरचित क्यू- सार्ट

2= संरचित क्यू- सार्ट

1- असंरचित क्यू- सार्ट- क्यू प्रणाली के क्षेत्र में जितने अध्ययन हुए हैं उनमें असंरचित क्यू- सार्ट पर आधारित अध्ययन अधिक देखे गए हैं। नन्नली (1970) के अनुसार असंरचित क्यू- सार्ट एकांश या सामग्रियां यादृच्छिक प्रतिदर्शन पर आधारित होते हैं। इसमें शोधकर्ता विभिन्न स्रोतों से प्रतिनिधि सामग्रियों का चयन करता है, या वह मानसिक बीमारियों के बारे में तरह तरह के कथनों को संग्रह कर सकता है आदि आदि। परंतु यह सभी सामग्रियां कोई नियम या सिद्धांत पर आधारित नहीं होता है और उन्हें सार्टिंग के लिए ऐसे ही यादृच्छिक ढंग से चयन कर लिया जाता है। करलिगर (1986) के शब्दों में इस प्रकार इसे परिभाषित किया जा सकता है," असंरचित क्यू- सार्ट संग्रह किए गए वैसे एकाशों का सेट है जो कोई कारको या च पर आधारित नहीं होता है।"

सैद्धांतिक रूप से असंरचित क्यू- सार्ट मे समजातीय एकांशो की संख्या कुछ भी हो सकती है। शोधकर्ता जितने एकांशो को चाहे उसमे सम्मिलित कर सकता है. सच पूछा जाए तो असंरचित क्यू-सॉर्ट के एकांशों का स्वरूप मनोवृति या व्यक्तित्व मापनी के एकांश के ही समान होता है क्योंकि जैसे मनोवृति या व्यक्तित्व मापनी में सभी एकांश किसी एक बीमा बहिर्मुखता, नेतृत्व, राजनीति के प्रति मनोवृति आदि से संबंधित होते हैं, ठीक उसी तरह से क्यू- सार्ट के सभी एकांश किसी एक क्षेत्र के होते हैं। सार्टिंग कर लेने के बाद प्राप्त आंकड़ों के आधार पर सह संबंध ज्ञात किया देखने की कोशिश की जाती है कि विभिन्न तरह के सार्टर सामग्रियों या एकांशों के प्रति किस ढंग का अपना मत या विचार रखते हैं।

2- संरचित क्यू-सार्ट- असंरचित क्यू- सार्ट की तरह संरचित क्यू- सार्ट में सभी एकांश एक ही क्षेत्र के होते हैं। परन्तु वे सभी एकांश किसी एक खास प्राकल्पना या चर से संबंधित होते हैं और विश्लेषण के दौरान उन्हें एक या एक से अधिक विधियों या कसौटीयो के आधार पर दो या दो से अधिक भागों में बांटा जाना संभव होता है। संरचित क्यू- सार्ट में प्रयोगात्मक डिजाइन के रूप में एकाशों को लिखा जाता है। यदि डिजाइन ऐसा होता है जिसमें एकाशों को एक- चर वर्गीकरण के आधार पर दो भागों में बांटा जाता है तो इसे एक-तरफा संरचित क्यू- सार्ट कहा जाता है। परंतु यदि डिजाइन ऐसा होता है जिसमें एकाशों को दो चर वर्गीकरण के आधार पर दो अधिक भागों में बांटा जाता है तो इसे दो- तरफा संरचित क्यू-सार्ट कहा जाता है। एक-तरफा संरचित क्यू सार्ट का उदाहरण इस प्रकार है- मान लिया जाए कि कोई शोधकर्ता राष्ट्रीयकरण के प्रति मनोवृति का अध्ययन क्यू शार्ट के माध्यम से करना चाहता है। इसमें दो तरह के लोगों को सार्टर के रूप में चयन किया जाएगा- निजी क्षेत्र से सार्वजनिक क्षेत्र से। अगर लोग यह समझते हैं कि राष्ट्रीयकरण से प्रगति होती है तथा आर्थिक समृद्धि आती है तो ऐसी परिस्थिति में निजी क्षेत्र तथा सार्वजनिक क्षेत्र दोनों ही क्षेत्र के लोग अनुकूल एकाशों को ऊंची कोटि तथा प्रतिकूल एकाशों को नीची कोटी देंगे। फिर इन दोनों तरह की कोटियों के बीच एक तरफा प्रसरण विश्लेषण का प्रयोग कर शोधकर्ता किसी निश्चित निष्कर्ष पर पहुंचता है।

दो- तरफा संरचित क्यू सार्ट का एक उदाहरण इस प्रकार है- मान लिया जाए कि कोई शोधकर्ता दहेज के प्रति मनोवृति तथा आय का स्तर का अध्ययन करना चाहता है। वह मनोवृत्ति को दो भागों में बांट सकता है- उदार तथा रूढ़ीवादी तथा आय के स्तर को भी दो भागों में बांट सकता है- उच्च आय वाला व्यक्ति तथा निम्न आय वाला व्यक्ति। इस तरह 2×2 प्रयोगात्मक डिजाइन तैयार हो जाएगा और क्यू सार्ट का प्रत्येक एकांश 2×2 तालिका के 4 सेल में से किसी एक सेल में अवश्य ही पड़ेंगे। कोई भी मनोवृति एकांश या तो उदार श्रेणी का होगा या रूढ़ीवादी श्रेणी का परंतु साथ ही साथ वह उच्च आय वाले व्यक्ति से संबंधित होगा या निम्न आय वाले व्यक्ति से संबंधित होगा। प्राप्त आंकड़े के आधार पर 2×2 कारक ANOVA ज्ञात करके शोधकर्ता निश्चित निष्कर्ष पर पहुंच पाता है।

3.4.10. सारांश

सामाजिक शोध के लिए उपरोक्त दोनों विधियों का योगदान अभूतपूर्व है. गुणात्मक प्राविधि में नृजातीय अध्ययन विधि अत्यंत ही उपयोगी एवं भारतीय परिवेश के लिए सर्वोत्तम विधि है. भारत में एक कहावत सर्वव्याप्त है "कोस-कोस में बानी बदले चार कोस में पानी" अर्थात भारतीय सामाजिक संरचना का सांस्कृतिक स्वरुप सार्वभौमिक नहीं उसमे हर क्षेत्र विशेष में एक विशेष संस्कृति का चलन होता है ऐसे हमें नृजातीय अध्ययन जैसे शोध तकनीकों के माध्यम से ही उपयुक्त और स्थायी समाधान प्राप्त हो सकते हैं।

3.4.11. अभ्यास प्रश्न

1 नृजातीय अध्ययन की परिभाषा एवं स्वरुप को समझाईये?
2 नृजातीय अध्ययन की विशेषताओं का वर्णन करें?
3 नृजातीय अध्ययन में सिद्धांत निर्माण एवं आंकड़ों के संकलन की तकनीकियों को समझाईये?
4 नृजातीय अध्ययन की क्रिया विधि का वर्णन करें?
5 क्यू-प्रणाली की परिभाषा एवं उसके स्वरुप एवं का वर्णन करें?
6 क्यू- प्रणाली में सांख्यिकीय विश्लेषण एवं उसके विभिन्न प्रकारों का वर्णन करें?

3.4.12. शब्दावली

क्यू- प्रणाली , नृजातीय अध्ययन

3.4.13. संदर्भ ग्रन्थ सूची

- सिंह, ए.के.(2008). *सामाजिक विज्ञान में शोध विधियाँ*. दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास.
- रावत, एच.(2013). *सामाजिक शोध की विधियाँ*. जयपुर: रावत प्रकाशन.
- त्रिपाठी, एल.बी.(2012). *मनोवैज्ञानिक अनुसंधान पद्धतियाँ*. आगरा: एचपी भार्गव बुक हाउस.
- कपिल, एच.के.(2004). *व्यवहारिक अनुसंधान में शोध विधियाँ*. आगरा: विनोद पुस्तक मंदिर.
- आर, मुखर्जी. (1969). *सामाजिक शोध एवं सांख्यिकी*. नई दिल्ली: सरस्वती सदन.
- मिश्रा,जी. (प्रो.गिरीश्वर मिश्र). (2016) नृजातीय अध्ययन शोध प्रविधि पर प्रो.गिरीश्वर मिश्र का व्याख्यान. रेट्राइव्ड फ्रॉम https://www.youtube.com/watch?v=ikyojIoO3XU&t=258s

खण्ड : (4) शोध के चरण

इकाई-1 सामाजिक शोध के चरण

Step of Social Research

इकाई की रूपरेखा

4.1.0. उद्देश्य
4.1.1. प्रस्तावना
4.1.2. वैज्ञानिक पद्धति एवं सामाजिक शोध
4.1.3. सामाजिक शोध के विभिन्न चरण
4.1.4. सारांश
4.1.5. बोध प्रश्न
4.1.6. संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

4.1.0. उद्देश्य (Purpose)

इस इकाई के अध्ययन पश्चात् आप-

- यह जान पाएँगे कि सामाजिक शोध और शुद्ध विज्ञान के शोध में क्या अंतर है।
- सामाजिक शोध के अंतर्गत कितने मुख्य चरण होते है।
- सामाजिक शोध के विभिन्न चरणों के बारें में विस्तार से जान पाएँगे।
- भावी सामाजिक शोध में अध्ययन करने हेतु दिशानिर्देश के रूप में सहायक साबित होगा, जो जानकारी से अवगत कराएगा।

4.1.1. प्रस्तावना (Introduction)

सामाजिक शोध की संपूर्ण प्रक्रिया इस मान्यता पर आधारित है कि एक विशेष समय में जो दशाएं कुछ घटनाओं को जन्म देती हैं, उन दशाओं के आधार पर समान प्रकृति वाले दूसरे समाजों में भी सामाजिक घटनाओं की प्रकृति को समझा जा सकता है। इस अर्थ में सामाजिक शोध की प्रक्रिया तभी व्यवस्थित हो सकती है जब कुछ निश्चित स्तरों पर गुजरते हुए एक सामान्य निष्कर्ष तक पहुंचने का प्रयास किया जाए। सामाजिक शोध की प्रकृति चाहे किसी भी प्रकार की हो, इसका मुख्य लक्ष्य प्राप्त सूचनाओं के आधार पर ऐसे निष्कर्ष प्रस्तुत करना है जिनके आधार पर कुछ विशेष नियमों का प्रतिपादन किया जा सके। समाजशास्त्रीय भाषा में इसी को हम सामान्यीकरण कहते हैं। यह कार्य वैज्ञानिक पद्धति की सहायता से ही किया जा सकता है। यह सच है कि सामाजिक शोध की प्रकृति प्राकृतिक विज्ञानों में किए जाने वाले शोध से भिन्न होती है किंतु इसके बाद भी प्राकृतिक विज्ञानों की तुलना में सामाजिक शोध की

प्रकृति कहीं अधिक जटिल और व्यापक होती है। समाजिक शोध तभी सफल हो सकता है जब शोधकर्ता एक निश्चित क्रम में एक चरण से दूसरे चरण में आगे बढ़ते हुए यथार्थ तथ्यों का इस तरह संकलन करें जिससे एक वैज्ञानिक निष्कर्ष तक पहुंचा जा सके। इसी कारण **कॉम्ट** ने तथ्यों के अवलोकन, परीक्षण, वर्गीकरण एवं नियमों के प्रतिपादन को वैज्ञानिक अध्ययन के प्रमुख स्थानों के रूप में स्पष्ट किया था। सामाजिक शोध के विभिन्न सोपानों का संबंध शोध के आयोजन, तथ्यों के संकलन एवं सामान्यीकरण से है। जिस तरह एक मशीन को सही ढंग से चलाने एवं उससे अधिक से अधिक उत्पादन लेने के लिए यह आवश्यक है कि उसके सभी पुर्जे नियत स्थान पर रहकर समुचित रूप से काम करते रहें, उसी तरह सामाजिक शोध तभी वैज्ञानिक बन सकता है जब एक शोधकर्ता सुनिश्चित स्तरों के द्वारा शोध की प्रक्रिया का संचालन करें।

4.1.2. वैज्ञानिक पद्धति एवं सामाजिक शोध (Scientific Method and Social Research):

हिंदी का शब्द विज्ञान जो अंग्रेजी के साइंस शब्द के लिए प्रयुक्त होता है, दो शब्दों वि+ज्ञान के मेल से बना है जिसका अर्थ विशिष्ट ज्ञान से है, अर्थात ऐसा ज्ञान जो ऐन्द्रियक आधार पर वस्तु को ढंग से अर्जित किया गया हो। अतः हर प्रकार का ज्ञान विज्ञान नहीं है। केवल वही ज्ञान, विज्ञान की श्रेणी में आता है, जो क्रमबद्ध रूप में संकलित एवं विश्लेषण किया गया हो। यह किसी घटना के कारण और परिणाम का विश्लेषण करके उनके पारस्परिक संबंधों को उजागर करता है। विज्ञान ज्ञान का एक भंडार है और ज्ञान प्राप्ति की एक सुव्यवस्थित पद्धति है।

वैज्ञानिक पद्धति (Scientific Method) :

विज्ञान को ज्ञान की एक शाखा और अध्ययन की एक विशिष्ट पद्धति दोनों रूपों में देखा गया है। ज्ञान की एक शाखा के रूप में विज्ञान की विशेषताओं का वर्णन विश्लेषण से कही महत्वपूर्ण एक पद्धति के रूप में विज्ञान की विशेषताओं पर प्रकाश डालना है, इस संबंध में कार्ल पियर्सन ने कहा है कि, "तथ्य स्वयं विज्ञान की रचना नहीं करते, अपितु तथ्यों के अध्ययन की विधि उनको विज्ञान का रूप प्रदान करती है।"

(1) वस्तुपरकता : अध्ययन/विश्लेषण के दो प्रमुख रूप है- व्यक्तिपरक और वस्तुपरक। व्यक्तिपरक अध्ययन में अध्ययनकर्ता के मनोभाव, मूल्य, विचार और धारणाएं समाहित होते हैं। हमारा रोजमर्रा का बहुत सा ज्ञान इसी प्रकार का होता है। या ज्ञान पक्षपात और अभिनतियों से भरा होता है। जब हम यह कहते हैं कि यह वस्तु अच्छी है या यह व्यक्ति कुरूप या बुरा है, हमारे ये कथन हमारे मनोभावों से रंगे होने के कारण व्यक्तिपरक निष्कर्ष कहे जाते हैं। वस्तुपरक ज्ञान पक्षपातों, अभिनतियों, मनोभावों, मूल्यों, धारणाओं आदि से मुक्त होता है। किसी वस्तु, व्यक्ति या घटना के अध्ययन को इन सभी तत्वों से दूर रखने का यत्न किया जाता है एवं तथ्यों के साक्ष्यों और तार्किक आधार पर निष्कर्ष निकाले जाते हैं।

(2) सत्यापनशीलता : वैज्ञानिक ज्ञान सत्यापनशील होता है, अर्थात ऐसा ज्ञान, जिसका साक्ष्यों के आधार पर परीक्षण कर उसकी सत्यता को परखा जा सकता है। साक्ष्यों से तात्पर्य मूर्त तथ्यों से है, जिनकी सत्यापन की परख देखकर, सुनकर, तोलकर, माप या गणना करके की जा सकती है। कई सदियों तक पृथ्वी के गोल या चपटी होने, सूर्य, चंद्रमा और पृथ्वी के चक्कर लगाने के बारे में काफी मतभेद रहा है। किंतु, 16वीं शताब्दी के ज्योतिषी **कोपरनिकस** ने अपने शोध प्रमाणों के आधार पर यह सिद्ध कर दिया कि सूर्य की परिक्रमा पृथ्वी करती है। इसी प्रकार के अन्य के उदाहरण लिए जा सकते हैं।

(3) नैतिक तटस्थता : विज्ञान या वैज्ञानिक पद्धति नैतिक दृष्टि से निरपेक्ष और तटस्थ होती है, अर्थात क्या अच्छा या बुरा है, यह क्या होना चाहिए, इसका निर्णय विज्ञान नहीं करता। ये प्रश्न विज्ञान की परिधि में नहीं आते। इन प्रश्नों का निर्णय समाज के मूल्यों द्वारा होता है। हमारे मूल्य ही यह बताते हैं कि हमारे लिए क्या आवश्यक और महत्वपूर्ण है। विज्ञान हमें केवल यह बताता है कि आवश्यकता से अधिक खाने या सिगरेट पीने से हमारी आयु कम होती है। विज्ञान लंबी आयु अथवा विलासी जीवन दोनों में से एक चुनने में मदद नहीं करता। इस चयन प्रक्रिया में हमारे मूल्य सहायक हो सकते हैं। अणु शक्ति का प्रयोग रचनात्मक और विनाशात्मक दोनों प्रयोजनों के लिए किया जा सकता है। इनके प्रयोग के बारे में हमारे सामाजिक मूल्य ही मार्गदर्शन कर सकते हैं।

(4) विधिवतता : वैज्ञानिक पद्धति उटपटांग और मनमाने ढंग से संपादित नहीं की जाती। इसकी एक निश्चित कार्य विधि और इसके विभिन्न चरणों में एक तार्किक अनुक्रम होता है। एक वैज्ञानिक गवेषणा में सर्वप्रथम समस्या को निश्चित शब्दों में परिभाषित कर इसके सत्यता की परीक्षा हेतु तथ्यों के संकलन और विश्लेषण की एक योजना बनाई जाती है जिसे शोध प्रारूप कहा जाता है। इसी प्रारूप के अनुसार तथ्यों का संकलन और विश्लेषण किया जाता है।

(5) निश्चितता : यह विज्ञान की एक महत्वपूर्ण विशेषता है। विज्ञान शब्दों को ढीले-ढाले या अनिश्चित अर्थों में प्रयोग की अनुमति नहीं देता। एक वस्तु किसी व्यक्ति को भारी लगती है, वही वस्तु किसी दूसरे को हल्की लग सकती है। इसी प्रकार, किसी व्यक्ति को एक मरीज का बुखार कम लग सकता है, जबकि दूसरा व्यक्ति उसी व्यक्ति के बुखार को अधिक बताता है। विज्ञान ने कम या भारी वजन की समस्या को तुला-बाटों से और मरीज के बुखार को थर्मामीटर के प्रयोग से हल कर दिया है। अब वजन और बुखार दोनों घटनाओं को निश्चित एवं सर्वमान्य माप और मात्रा में प्रदर्शित किया जा सकता है।

(6) पूर्व-कथनीयता : विज्ञान का अंतिम लक्ष्य घटनाओं पर नियंत्रण स्थापित कर मानव के जीवन को अधिकाधिक खुशहाल बनाना है। यह तभी संभव है जब घटनाओं के बारे में पहले से भविष्योक्ति कर आने वाले संकट के बारे में मानव को चेतावनी दी जा सके। भविष्योक्ति का कार्य सामान्यत: पहले ज्योतिषी या ज्ञानी कहे जाने वाले व्यक्ति किया करते थे। अब भी वे करते हैं। उनकी भविष्योक्ति अटकलों या अंतःप्रज्ञा पर आधारित होती थी, अतः उनमें संशय और संदेह बना रहता था। वैज्ञानिक की भविष्योक्ति अनुभवी तथ्यों पर आधारित होने के कारण उसके सत्य होने की संभावना अधिक रहती है।

(7) **विश्वसनीयता :** वैज्ञानिक ज्ञान निरंतर कुछ निश्चित प्रक्रिया एवं दशाओं के अंतर्गत बार-बार दोहराया जाता है और दोहराने पर यदि हर बार समान परिणाम प्राप्त होते हैं, तभी इस ज्ञान को विश्वसनीय माना जाता है। **न्यूटन** ने पेड़ के नीचे सोते समय जब पेड़ से सेव को नीचे गिरते हुए देखा तब उसने परीक्षण के तौर पर अन्य सेवों और वस्तुओं को ऊपर फेंका। परिणामतः ऊपर फेंकी गई सभी वस्तुएं नीचे आ गिरी। इस परीक्षण के आधार पर ही उसने गुरुत्वाकर्षण शक्ति के नियम का प्रतिपादन कर यह बताया कि पृथ्वी की आकर्षण शक्ति के भीतर जो भी वस्तु ऊपर फेंकी जाएंगी, वह नीचे आ गिरेगी और ऊपर नहीं जाएगी।

वैज्ञानिक मापदंड इस बात की मांग करते हैं कि शोध कार्य किया जाना चाहिए ताकि उसकी पुनरावृति करके प्राप्त तथ्यों की पुष्टि की जा सके। यहां यह उल्लेखनीय है कि भौतिक विज्ञान में जिस प्रकार पुनरावृति अध्ययन समान दशा में संभव है, उसी प्रकार सामाजिक विज्ञानों में नहीं होते।

शोध क्या है ? विविध क्षेत्रों में अनुसंधान यह शोध शब्द का प्रयोग अलग-अलग परिभाषित अर्थ में किया गया है। शोध में तीन प्रक्रिया सम्मिलित होती हैं : खोजना, परिष्करण करना और प्रमाणीकरण करना। वैज्ञानिक जगत में इस शब्द का प्रयोग इसी अर्थ में होता है।

सामाजिक शोध (Social Research):

सामाजिक शोध को परिभाषित करते हुए **पी.वी. यंग** (1977) ने लिखा है, "सामाजिक शोध एक वैज्ञानिक प्रयास है जिसका उद्देश्य तार्किक एवं व्यवस्थित विधियों की सहायता से नए तथ्यों की खोज या पुराने तथ्यों का परीक्षण अथवा उनकी सत्यता की परख हो सकता है; या तथ्यों के अनुक्रमों, अंतर्संबंधों तथा कारणात्मक व्याख्याओं का विश्लेषण करना हो सकता है; या नवीन वैज्ञानिक तकनीकों, उपकरणों, अवधारणाओं तथा सिद्धांतों को विकसित करना हो सकता है, जो मानवीय व्यवहार का विश्वसनीय तथा प्रामाणिक अध्ययन करने में सहायक सिद्ध हो सके।" समाजशास्त्र के कोश में **फिशर** (1944) ने कहा है, "सामाजिक शोध किसी सामाजिक घटना पर प्रयोग की जाने वाली एक ऐसी व्यवहारिक कार्य प्रणाली है, जिसका उद्देश्य किसी समस्या का समाधान अथवा किसी प्रकल्पना का परीक्षण या नवीन तथ्यों की खोज या विभिन्न तथ्यों के बीच नवीन संबंधों की खोज करना है।"

इस प्रकार की कार्य विधि द्वारा प्राप्त सामग्री के अनुभवी तथ्य और इस कार्य विधि को अनुभवी की विधि कहते हैं। अनुभवी से तात्पर्य हमारी इंद्रियों (नाक, कान, आंख, जिव्हा और स्पर्श) के आधार पर प्राप्त ज्ञान से है। यह ज्ञान कल्पना और अंत:प्रज्ञा द्वारा प्राप्त ज्ञान से भिन्न होता है। इस ज्ञान की विशेषताओं का आगे 'ज्ञान के स्रोत' और विज्ञान विषयों के वर्णन-विश्लेषण में विस्तृत वर्णन किया गया है। संक्षेप में, वैज्ञानिक प्रयास से तात्पर्य वैज्ञानिक विधि के प्रयोग से है।

4.1.3. सामाजिक शोध के विभिन्न चरण (Various Step of Social Research):

सामाजिक शोध की प्रकृति वैज्ञानिक है और इसलिए एक शोधकर्ता किसी भी समस्या या घटना का अध्ययन वैज्ञानिक पद्धति के अनुसार ही करता है। इस वैज्ञानिक पद्धति द्वारा किए गए अध्ययनों को कुछ विशेष चरणों से गुजरना आवश्यक होता है। सामान्य रूप से कहा जा सकता है कि एक वैज्ञानिक

अपने चिंतन और व्यवहार में जिन प्रक्रियाओं को उपयोग में लाता है, उन्हीं को सोपान अथवा चरण कहा जाता है। एक शोधकर्ता को शोध करते समय इन चरणों का पालन करना पड़ता है, ताकि कार्य व्यवस्थित एवं वस्तुनिष्ठ रूप से पूर्ण हो सकें। सामाजिक शोध के प्रमुख चरण बिलकुल वही हैं जो वैज्ञानिक पद्धति के प्रमुख चरण होते हैं। विभिन्न विद्वानों ने वैज्ञानिक पद्धति के चरणों को अपने-अपने ढंग से स्पष्ट किया है :-

सामान्य शोध प्रक्रिया

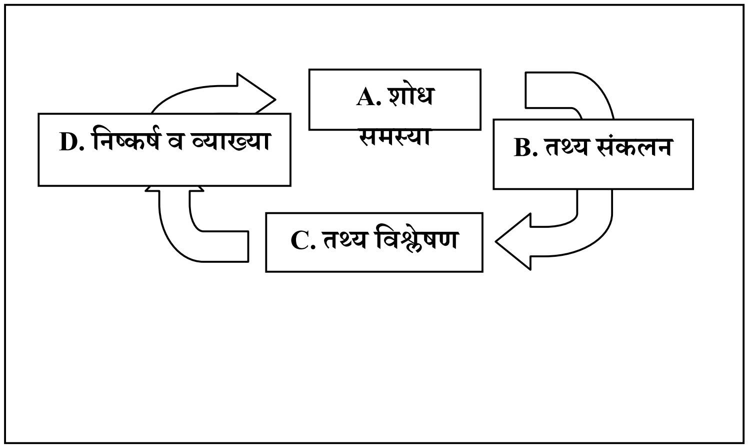

रॉय जी. फ्रांसिस ने इसके 12 चरणों का उल्लेख किया है।

1. समस्या क्षेत्र का चयन,
2. प्रचलित सिद्धांत की जानकारी,
3. समस्या की परिभाषा,
4. प्राक्कल्पना की रचना,
5. औपचारिक तर्क की रचना,
6. तथ्यों के स्रोत का निर्धारण,
7. उपकरणों का निर्माण,
8. उपकरणों का पूर्व परिक्षण एवं उनमें आवश्यक संशोधन,
9. तथ्यों का संकलन,
10. तथ्यों का विश्लेषण,
11. निष्कर्षों का लेखन,
12. प्रतिवेदन का प्रकाशन,

पी.वी. यंग और **जार्ज ए. लुण्डबर्ग** ने निम्न 4 चरणों का उल्लेख किया है।

1. कार्यरत प्रकल्पना की रचना,
2. तथ्यों का अवलोकन एवं संकलन,
3. तथ्यों का वर्गीकरण,

4. वैज्ञानिक सामान्यीकरण एवं सिद्धांत रचना,

ई.आर. बाबी ने वैज्ञानिक पद्धति के निम्न 6 चरणों का उल्लेख किया है।

1. शोध की समस्या या उद्देश्य का स्पष्टीकरण,
2. साहित्य की समीक्षा,
3. सूचनादाताओं का चयन,
4. प्रमापन (अध्ययन के चरों का निर्धारण),
5. तथ्य संकलन की विधियों का निर्धारण,
6. विश्लेषण (विश्लेषण की विधि संबंधी तर्क को स्पष्ट करना),

विमल शाह ने शोध चरण के निम्न 10 चरणों का उल्लेख किया है।

1. शोध समस्या की पहचान एवं चुनाव,
2. शोध समस्या के लिए सैद्धांतिक संरचना का चुनाव,
3. शोध समस्या का प्रतिपादन,
4. प्रयोग के अन्वेषण का प्रारूप,
5. चरों की परिभाषा एवं मापन,
6. निदर्शन प्रविधियां,
7. तथ्य संकलन के यन्त्र एवं तकनीक,
8. तथ्यों का संकेतन, संपादन एवं क्रियान्वयन,
9. तथ्यों का विश्लेषण,
10. शोध प्रतिवेदन,

अर्ल बैबी (द प्रेक्टिस ऑफ सोशल रिसर्च) ने शोध प्रस्ताव में निम्नलिखित 6 तत्वों को बताया है।

1. समस्या या उद्देश्य अर्थात यह बताना कि क्या अध्ययन किया जाना है उसकी उपयोगिता एवं व्यावहारिक महत्त्व और सामाजिक सिद्धांतों के निर्माण में इसका योगदान।
2. उपलब्ध साहित्य की समीक्षा अर्थात अन्य लोगों ने इस विषय पर क्या कहा है, कौन से सिद्धांत इसके विषय में विद्यमान है, और वर्तमान शोध में क्या कमियां रह गई हैं जिन्हें सुधारा जा सकता है।
3. अध्ययन के विषय अर्थात किन लोगों से आंकड़ों का संग्रह किया जाना है, अध्ययन के लिए उपलब्ध व्यक्तियों तक कैसे पहुंचा जाए, क्या प्रतिदर्श का चयन उपयुक्त है यदि हाँ तो प्रतिदर्श का चयन कैसे किया जाए और यह कैसे सुनिश्चित किया जाए कि किया जाने वाला शोध प्रत्यार्थियों को हानि नहीं पंहुचाएगा।
4. मापन अर्थात अध्ययन के लिए मुख्य चरों का निर्धारण इन चरों को किस प्रकार परिभाषित किया जाएगा और नापा जाएगा, इस विषय पर पूर्व में किए गए अध्ययनों से ये परिभाषा व नाप किस प्रकार भिन्न होंगे।

5. आधार सामग्री संकलन पद्धतियाँ अर्थात आँकड़े एकत्र करने सर्वेक्षण प्रयोग आदि के लिए पद्धतियों का निर्धारण करना एवं सांख्यकी प्रयोग किया जाना है अथवा नहीं।
6. विश्लेषण अर्थात विश्लेषण के तर्क को स्पष्ट करना कि गुणवत्ता में आने वाली विविधताओं पर ध्यान दिया जाना है या नहीं और संभावित व्याख्यात्मक के चरों का विश्लेषण किया जाना है या नहीं।

होर्टन और **हण्ट** ने वैज्ञानिक शोध या अनुसंधान की वैज्ञानिक पद्धति में 8 चरणों को बताया है।

1. समस्या जो विज्ञान की पद्धति से अध्ययन के योग्य हो उसको परिभाषित करना।
2. उपलब्ध साहित्य की समीक्षा, ताकि अन्य अनुसंधानकर्ताओं द्वारा की गई त्रुटियों की पुनरावृति न हो।
3. प्रक्कल्पनाओं का निरूपण, अर्थात ऐसी प्रस्थापनाएं जिनका परिक्षण हो सके।
4. शोध प्रारूप की योजना अर्थात प्रक्रिया की रूपरेखा बनाना कि आधार सामग्री कैसे, कौनसी और कहाँ से एकत्र की जाए व उसकी प्रक्रिया और विश्लेषण कैसे किया जाए।
5. आधार सामग्री संग्रह अर्थात शोध प्रारूप के अनुरूप आधार सामग्री एवं अन्य सूचना का संग्रह करना। कभी-कभी अप्रत्याशित कठिनाइयों के कारण शोध प्रारूप को बदलने की आवश्यकता हो सकती है।
6. आधार सामग्री का विश्लेषण, अर्थात आधार सामग्री का वर्गीकरण, सारणीकरण एवं तुलना करना एवं निष्कर्ष प्राप्त करने के लिए आवश्यक परिक्षण करना।
7. निष्कर्ष निकलना अर्थात मूल प्राक्कल्पना सत्य अथवा असत्य पाई गई है और क्या उसकी पुष्टि हो गई है या उसे अस्वीकार के दिया गया है या निष्कर्ष अनिश्चित रहा है? शोध ने हमारे ज्ञान में क्या वृद्धि की है? इसका समाजशास्त्रीय सिद्धांतों के लिए क्या निहितार्थ है? आगे शोध के लिए कौन-कौन से प्रश्न सामने आए हैं।
8. अध्ययन का पुनरावलोकन यद्यपि उपरोक्त सात चरण एक शोध अध्ययन को पूरा करते हैं किंतु शोध के नतीजे पुनरावलोकन से ही पुष्ट किए जा सकते हैं, कई शोधों के बाद ही शोध निष्कर्ष सामान्य सत्य माने जा सकते हैं।

इस आधार पर विभिन्न विद्वानों ने सामाजिक अनुसंधान के अनेक चरणों को अपने-अपने आधार पर उल्लेख किया हैं। विभिन्न विद्वानों के चरणों के उल्लेख का विश्लेषण करके सामान्य तौर पर मुख्यतः 14 शोध के विभिन्न चरणों का विस्तृत रूप में उल्लेख करेंगे :

सामाजिक शोध के मुख्य चरण

(1.) विषय का चुनाव :

शोध का यह चरण सबसे अधिक प्राथमिक और महत्वपूर्ण है। एक शोधकर्ता चाहे कितना भी योग्य क्यों ना हो, आरंभ में ही शोध से संबंधित विषय का चुनाव दोषपूर्ण हो जाता है तो अध्ययनकर्ता किसी भी तरह अपने लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सकता। **नॉरथ्राप** (Northrop) का कथन है कि, "शोध कार्य एक ऐसे जहाज की तरह है जो किसी बंदरगाह से दूर के गंतव्य तक जाने के लिए अपनी यात्रा आरंभ करता है। यदि आरंभ में गंतव्य की दिशा का निर्धारण करने में साधारण सी भूल हो जाए तो उसे भटक जाने की पूरी संभावना रहती है, चाहे वह जहाज कितना ही अच्छा क्यों ना हो तथा उसका कप्तान कितना ही अच्छा नाविक क्यों ना हो।" इससे स्पष्ट होता है कि शोध का सबसे पहला चरण शोधकर्ता

द्वारा अत्यधिक सावधानीपूर्वक अध्ययन विषय का चुनाव करना है। विषय का चुनाव करते समय यह ध्यान रखना आवश्यक है कि अध्ययन विषय ऐसा हो जिस पर निश्चित समय में उपलब्ध उपकरणों की सहायता से अध्ययन कार्य को पूरा किया जा सके। इस संबंध में **पी.वी. यंग** ने चार विशेष सावधानियों का उल्लेख किया है- सर्वप्रथम, विषय ऐसा हो जिसको समझने की शोधकर्ता में योग्यता हो तथा जिससे संबंधित अध्ययन एक निश्चित समय में पूरा किया जा सके। दूसरा, यदि उस विषय से संबंधित कोई अन्य शोध कार्य न किए गए हों तो विषय का अध्ययन क्षेत्र बहुत अधिक व्यापक नहीं होना चाहिए। तीसरा, यह ध्यान रखना आवश्यक है कि चुने गए विषय का अध्ययन उपलब्ध प्रविधियों की सहायता से संभव है अथवा नहीं तथा चौथा, यह भी देखना आवश्यक है कि उस विषय पर वैज्ञानिक शोध करने से किस सीमा तक यथार्थ निष्कर्ष प्रस्तुत किए जा सकते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि ऐसे विषय का चयन नहीं करना चाहिए जिससे संबंधित प्रमाणिक तथ्य उपलब्ध ना हो सके अथवा जिससे संबंधित अध्ययन के लिए कुशल पद्धतियां उपलब्ध ना हो।

(2.) संबंधित साहित्य का अध्ययन :

शोध का यह दूसरा महत्वपूर्ण चरण है। इसके अंतर्गत शोधकर्ता के लिए यह आवश्यक है कि वह चुने गए शोध विषय के संबंध में उन सभी विचारों, पद्धतियों, कठिनाइयों एवं निष्कर्षों का अध्ययन करें जो उससे पूर्व के अध्ययनकर्ताओं द्वारा किए गए हो। शोध चाहे सामाजिक क्षेत्र से संबंधित हो तथा भौतिक विज्ञानों से, यह कार्य सभी शोधकर्ताओं के लिए बहुत आवश्यक होता है। साधारणतया शोधकर्ता अपने अध्ययन विषय से संबंधित साहित्य का पुनरावलोकन किए बिना ही शोध की रूपरेखा को तैयार कर लेते हैं तथा अध्ययन क्षेत्र का निर्धारण करने में अति शीघ्रता प्रदर्शित करते हैं। इसके फलस्वरूप शोध की संपूर्ण प्रक्रिया दोषपूर्ण हो जाती है तथा अक्सर शोध कार्य बीच में ही रुक जाता है। शोध से संबंधित साहित्य का आरंभ में ही अध्ययन कर लेने से शोधकर्ता के लिए न केवल एक दिशा मिल जाती है बल्कि वह उन उपागमों से भी परिचित हो जाता है जिनकी सहायता से शोध कार्य को व्यवस्थित रूप से पूरा किया जा सके। शोध से संबंधित साहित्य अनेक प्रकार के प्रलेखों, लेखों, पत्रों, पुस्तकों तथा प्रतिवेदनों से प्राप्त हो सकता है। **पी.वी. यंग** का कथन है कि शोध विषय से संबंधित साहित्य का अध्ययन करने से अध्ययनकर्ता को अनेक लाभ होते हैं- सर्वप्रथम, इससे अध्ययनकर्ता को ऐसी अंतर्दृष्टि मिल जाती है जिससे वह सही प्रश्न करके उत्तरदाताओं से सूचनाएं प्राप्त कर सके। दूसरा, साहित्य के अध्ययन से अनेक ऐसी पद्धतियों और प्रविधियों का ज्ञान हो जाता है जिन पर हो सकता है कि अध्ययनकर्ता ने पहले विचार ना किया हो। तीसरा, इससे अवधारणाओं को समझने में सहायता मिलती हैं तथा अनेक मान्यताओं का सत्यापन करने के तरीकों का ज्ञान हो जाता है। अंत में, साहित्य के अध्ययन से तथ्यों की आवश्यक पुनरावृति की संभावना कम हो जाती है तथा अध्ययन कहीं अधिक व्यवस्थित बन जाता है।

(3.) इकाइयों का निर्धारण एवं स्पष्टीकरण :

शोध विषय से संबंधित साहित्य का अध्ययन कर लेने के पश्चात तीसरे स्तर पर शोधकर्ता के लिए आवश्यक होता है कि वह शोध से संबंधित विभिन्न इकाइयों का निर्धारण करके उनका प्रयोग करने से पहले ही उन्हें स्पष्ट और सुपरिभाषित कर ले। वास्तविकता यह है कि इकाइयों का स्पष्टीकरण केवल तथ्यों के संकलन में ही सहायक नहीं होता बल्कि इससे उनका विवेचन और प्रस्तुतीकरण करना भी सरल हो जाता है। यदि इकाइयों का अर्थ स्पष्ट नहीं होता तो प्रत्येक अध्ययनकर्ता और दूसरे लोग उसका अलग-अलग अर्थ लगा सकते हैं जिससे अध्ययन की वस्तुनिष्ठता समाप्त हो जाती है। उदाहरण के लिए, अध्ययन से संबंधित अनेक शब्द जैसे- शिक्षित, निर्धन, धार्मिक, श्रमिक, कृषक, भ्रष्ट आदि। बाहरी तौर पर बहुत सरल शब्द मालूम होते हैं लेकिन विभिन्न व्यक्ति इनका भिन्न-भिन्न अर्थ लगा सकते हैं। इसी कारण **यंग** ने लिखा है, "शोध से संबंधित अध्ययन की इकाइयां प्रतिनिधित्वपूर्ण होनी चाहिए, प्रयोग में लाए जाने वाले शब्द स्पष्ट और सुपरिभाषित होनी चाहिए तथा उनका चयन इस प्रकार होना चाहिए जिससे वे संपूर्ण समग्र से अपनी समरूपता को स्पष्ट कर सकें।" इकाइयों का निर्धारण करते समय यह ध्यान रखना भी आवश्यक है कि यह अध्ययन के उद्देश्य से संबंधित हो तथा उनका क्षेत्र पूर्णतया स्पष्ट हो।

(4.) परिकल्पना का निर्माण :

सामाजिक शोध का अगला चरण अध्ययन से संबंधित किसी एक अथवा एक से अधिक परिकल्पनाओं का निर्माण करना है। शोधकर्ता कोई भी शोध आरंभ करने से पहले अध्ययन विषय के विभिन्न पक्षों से संबंधित कुछ सामान्य अनुमान अवश्य लगा लेता है। ऐसे सामान्य अनुमान का उद्देश्य अध्ययन के लिए एक निश्चित दिशा का निर्धारण करना है जिससे शोधकर्ता इधर-उधर न भटक कर सुनिश्चित आधार पर तथ्यों का संकलन कर सके। इस दृष्टिकोण से उपकल्पना को परिभाषित करते हुए **गुडे एवं हॉट** ने लिखा है, "परिकल्पना एक ऐसी मान्यता है जिसकी सत्यता को सिद्ध करने के लिए परिभाषित की जा सकती है।" लगभग इन्हीं शब्दों में **बोगार्डस** का कथन है, "परिकल्पना परीक्षण के लिए प्रस्तुत की गई एक सामान्य मान्यता है।" **पी.वी. यंग** के शब्दों में, "परिकल्पना एक अस्थाई लेकिन केंद्रीय महत्व का विचार है जो उपयोगी शोध का आधार बन जाता है।" इन सभी कथनों से परिकल्पना की कुछ विशेषताएं स्पष्ट होती हैं। सर्वप्रथम, परिकल्पना में स्पष्टता होना आवश्यक है। इसका तात्पर्य है कि परिकल्पना में प्रयोग किए जाने वाले शब्द पूर्णतया परिभाषित होने चाहिए तथा उसमें ऐसी भाषा का प्रयोग किया जाना चाहिए जिससे सभी लोग उसे समान अर्थ में समझ सके। दूसरे, परिकल्पना में अनुभव सिद्ध प्रमाणिकता का होना आवश्यक है। इसका संबंध किसी ऐसे विचार या अवधारणा से होना चाहिए जिसकी सत्यता की परीक्षा की जा सके। तीसरे, परिकल्पना का निर्माण करते समय यह ध्यान रखना आवश्यक है कि यह अध्ययन विषय के किसी विशेष पक्ष से ही संबंधित हो। परिकल्पना में विशिष्टता होने से ही अनुसंधानकर्ता विषय के एक विशेष पक्ष पर ध्यान केंद्रित करके उपयोगी सूचनाएं प्राप्त कर सकता है। चौथे, परिकल्पना की एक प्रमुख विशेषता यह है कि यह इस तरह की होनी चाहिए जिसका उपलब्ध प्रविधियों के द्वारा परीक्षण किया जा सके। अंत में, परिकल्पना के लिए यह भी आवश्यक है कि वह पहले प्रस्तुत किए गए किसी सिद्धांत अथवा सिद्धांतों से संबंधित हो। यदि कोई परिकल्पना किसी भी

सिद्धांत से संबंधित नहीं होती तो उसकी सत्यता की परीक्षा करना बहुत कठिन हो जाता है। सच तो यह है कि परिकल्पना के बिना सामाजिक शोध को किसी भी तरह व्यवस्थित नहीं किया जा सकता। इसी कारण इसे शोध के एक प्रमुख चरण के रूप में देखा जाता है। परिकल्पना का सर्व प्रमुख कार्य अध्ययन की दिशा का निर्धारण करना है। इसे अध्ययनकर्ता व्यर्थ के परिश्रम, समय और व्यय से बच जाता है। अध्ययन क्षेत्र को सीमित बनाने में भी उपकल्पना का विशेष योगदान होता है। परिकल्पना की सहायता से यह निश्चित करना आसान हो जाता है कि किन तथ्यों को एकत्र किया जाए और किन्हें छोड़ा जाए। इस प्रकार यह उपयोगी तथ्यों के संकलन में सहायक होती है। यदि परिकल्पना का सावधानी से निर्माण किया जाए तो यह उपयोगी और तर्कसंगत निष्कर्ष निकालने में बहुत सहायक होती है।

(5.) अध्ययन-क्षेत्र का निर्धारण :

शोध के अंतर्गत शोधकर्ता के लिए यह आवश्यक होता है कि वह अपने अध्ययन से संबंधित क्षेत्र का स्पष्ट रूप से निर्धारण कर ले। अध्ययन क्षेत्र को ही हम समग्र कहते हैं। अध्ययन क्षेत्र ऐसा होना चाहिए जिससे संबंधित तथ्यों का संकलन वस्तुनिष्ठ रूप से किया जा सके। अध्ययन क्षेत्र का आकार ना तो बहुत बड़ा होना चाहिए और ना ही बहुत छोटा। बहुत छोटे आकार के अध्ययन से उपयोगी निष्कर्ष प्राप्त कर सकना बहुत कठिन होता है, जबकि आवश्यकता से अधिक बड़े अध्ययन क्षेत्र पर आधारित शोध में एक निश्चित समय के अंदर कार्य को पूरा कर सकना कठिन हो जाता है।

(6.) सूचनादाताओं का चयन :

अध्ययन क्षेत्र का निर्धारण करने के पश्चात शोध का आगामी चरण उन सूचनादाताओं का चयन करना है जिनसे विभिन्न प्रकार के तथ्य प्राप्त किए जा सकें। अध्ययन क्षेत्र छोटा होने पर सूचनादाताओं का चयन जनगणना पद्धति द्वारा तथा अध्ययन क्षेत्र बड़ा होने पर निदर्शन पद्धति के द्वारा किया जा सकता है। इन दोनों पद्धतियों की अपनी कुछ सीमाएं भी हैं जिनका विस्तृत उल्लेख हम निदर्शन के अंतर्गत करेंगे। सूचनादाताओं के चयन में यह ध्यान रखना बहुत आवश्यक है कि यह शोधकर्ता की इच्छा और सुविधा पर आधारित ना हो बल्कि विभिन्न विधियों की सहायता से ऐसे सूचनादाताओं का चयन किया जाए जो समग्र के सभी पक्षों का अधिकाधिक प्रतिनिधित्व कर सकें। सूचनादाताओं की संख्या अध्ययन विषय को ध्यान में रखते हुए तय की जानी चाहिए। साधारणतया एक वैयक्तिक शोध में कम से कम 250 तथा अधिक से अधिक 500 सूचनादाताओं का चयन करना अच्छा समझा जाता है।

(7.) सूचना के स्रोतों का निर्धारण :

सूचनादाताओं का चयन कर लेने के बाद शोधकर्ता के लिए यह आवश्यक है कि वह उन स्रोतों की जानकारी प्राप्त करें जिनसे विश्वसनीय सूचना एकत्रित की जा सके। सूचना के स्रोत मुख्य रूप से दो प्रकार के होते हैं, प्राथमिक अथवा क्षेत्रीय तथा द्वितीयक अथवा प्रलेखीय। प्राथमिक स्रोत वे हैं जिनसे एक शोधकर्ता स्वयं ही और प्रथम बार सूचनाएं एकत्रित करता है। इस दृष्टिकोण से क्षेत्र कार्य द्वारा एकत्रित की गई सभी सूचनाएं प्राथमिक सूचनाएं होती है। द्वितीयक स्रोत वे हैं जो पहले से ही दूसरे व्यक्तियों द्वारा संकलित तथ्य प्रदान करते हैं। इस दृष्टिकोण से अभिलेख, प्रतिवेदन, गजेटियर, पुस्तकें, पांडुलिपियां, पत्र-पत्रिकाएं तथा शोध ग्रंथ आदि सूचना के द्वितीयक स्रोत हैं। यद्यपि सभी शोध कार्य में

प्राथमिक और द्वितीयक दोनों प्रकार के स्रोतों का उपयोग किया जाता है लेकिन इन स्रोतों का पहले से ही निर्धारण कर लेने से तथ्यों का संकलन कम समय में और अधिक कुशलता पूर्वक किया जा सकता है।

(8.) अध्ययन के उपकरणों एवं प्रविधियों का निर्धारण :

इस स्तर पर शोधकर्ता के लिए उन उपकरणों तथा प्रविधियों का निर्धारण करना आवश्यक है जिनके उपयोग से विश्वसनीय तथा वस्तुनिष्ठ तथ्यों का संकलन किया जा सके। इन प्रविधियों का चुनाव सदैव समस्या की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए किया जाता है। इसी स्तर पर विभिन्न उपकरणों और प्रविधियों के उपयोग को स्पष्ट करना भी आवश्यक होता है क्योंकि इनके समुचित उपयोग से ही सही तथ्यों का संकलन करना संभव है। उदाहरण के लिए, अनुसूची अथवा प्रश्नावली शोध की एक प्रमुख प्रविधि है तथा इसके समुचित निर्माण और प्रयोग से ही विश्वसनीय सूचनाएं एकत्रित की जा सकती हैं।

(9.) उपकरणों एवं प्रविधियों का पूर्व-परीक्षण :

अध्ययन यंत्रों का निर्धारण कर लेने के पश्चात शोधकर्ता के लिए यह आवश्यक होता है कि वह वास्तविक शोध कार्य आरंभ करने से पहले अपने अध्ययन से संबंधित सभी उपकरणों एवं प्रविधियों को छोटे पैमाने पर लागू करके उन दोषों को ज्ञात करने और उन्हें दूर करने का प्रयत्न करें। इस दृष्टिकोण से पूर्व-परीक्षण एक तरह का 'पद्धतिशास्त्रीय पूर्वाभ्यास' है। **एकॉफ** (Ackoff) का कथन है, "पूर्व परीक्षण अनुसंधान के विभिन्न पक्षों, उपकरणों अथवा आयोजन के विकल्पों का एक नियंत्रित अध्ययन है जिसका उद्देश्य यह सुनिश्चित करना होता है कि कौन सा विकल्प सबसे अधिक उपयुक्त है।" पूरे परीक्षण के द्वारा ना केवल अध्ययन से संबंधित उपकरणों और प्रविधियों में आवश्यकतानुसार सुधार किया जा सकता है बल्कि उनकी उपयोगिता की भी जांच की जा सकती है।

(10.) तथ्यों का एकत्रीकरण :

यह वैज्ञानिक शोध का सबसे महत्वपूर्ण चरण है। इसके अंतर्गत शोधकर्ता विभिन्न उपकरणों तथा प्रविधियों की सहायता से अपने अध्ययन विषय से संबंधित तथ्यों का संकलन करता है। इस स्तर पर यह आवश्यक होता है कि तथ्यों को पक्षपात रहित होकर एकत्रित किया जाए तथा ऐसा करते समय व्यक्तिगत धारणाओं और पूर्वाग्रहों को कोई महत्व न दिया जाए। तथ्यों को उसी रूप में एकत्रित करना आवश्यक है जैसे कि वे वास्तव में हो। तथ्यों के संकलन में शुद्धता न होने पर सभी निष्कर्ष त्रुटिपूर्ण हो जाते हैं। तथ्यों के एकत्रीकरण के लिए प्रत्येक दशा में सूचनादाताओं द्वारा दी गई सूचनाएं ही पर्याप्त नहीं होती बल्कि यह विश्वास अब दृढ़ होता जा रहा है कि तथ्यों के संकलन के लिए अवलोकन का भी विशेष महत्व है। इसके पश्चात भी अवलोकन द्वारा यथार्थ तथ्यों को एकत्रित करना अभी संभव हो पाता है जब अध्ययनकर्ता निष्पक्ष एवं पूर्वाग्रहों से मुक्त हो।

(11.) तथ्यों का संपादन, संकेतन, वर्गीकरण एवं सारणीयन :

तथ्यों का संकलन करने के पश्चात सामाजिक शोध का अगला चरण शोधकर्ता द्वारा संकलित तथ्यों का संपादन करना होता है। तथ्यों के संपादन का अभिप्राय एकत्रित तथ्यों का सूक्ष्म निरीक्षण करके उनमें दिखाई देने वाली अशुद्धियों, त्रुटियों और कमियों को यथासंभव दूर करना है। इसके लिए आवश्यक है कि विभिन्न सूचनाओं की जांच करके अनावश्यक तथ्यों को निकाल दिया जाए तथा उपयोगी

सूचनाओं को क्रमबद्ध रूप से व्यवस्थित किया जाए। संकेतन के अंतर्गत शोधकर्ता व्याख्यात्मक उत्तरों को अनेक संकेतों, प्रतीकों तथा अंको की सहायता से संक्षिप्त और व्यवस्थित बनाने का प्रयत्न करता है। वर्गीकरण से तात्पर्य सामान प्रकृति के तथ्यों को एक-एक वर्ग में विभाजित करने से है। वर्गीकरण के आधार पर ही घटनाओं अथवा दशाओं के बीच तुलना करना और उनके सहसंबंध को ज्ञात करना संभव होता है। यही वर्गीकरण केवल संख्यात्मक तथ्यों से ही संबंधित नहीं होता बल्कि गुणात्मक तथ्यों का भी वर्गीकरण करना उतना ही महत्वपूर्ण है। तथ्यों का वर्गीकरण कर लेने के पश्चात उनका सारणीयन करना आवश्यक होता है। सारणीयन का तात्पर्य विभिन्न तथ्यों को संख्यात्मक रूप में अनेक पदों में इस प्रकार व्यवस्थित करना होता है जिससे एक विशेष वर्ग से संबंधित बहुत सी संख्याओं अथवा विशेषताओं को संक्षिप्त सारणियों की सहायता से समझा जा सके। सारणीयन एक अरुचिकर कार्य अवश्य है लेकिन यह कार्य जितना अधिक सावधानीपूर्वक किया जाता है, वैज्ञानिक निष्कर्ष प्राप्त करने की संभावना उतनी ही अधिक हो जाती है।

(12.) तथ्यों का संख्यिकीय विश्लेषण :

शोध का यह भी एक महत्वपूर्ण चरण है। वास्तविकता तो यह है कि वर्तमान समय में सांख्यिकीय विश्लेषण के बिना कोई भी शोध कार्य कठिनता से ही पूरा किया जा सकता है। शोध के दौरान एक अध्ययनकर्ता को अनेक ऐसे तथ्य प्राप्त होते हैं जिनकी केंद्रीय प्रवृत्ति को ज्ञात करना, विभिन्न तथ्यों के तुलनात्मक महत्व को देखना तथा तथ्यों के बीच सहसंबंध को स्पष्ट करना आवश्यक होता है। इस कार्य के लिए माध्य, मध्यांक, बहुलक, मानक विचलन तथा सहसंबंध आदि अनेक सांख्यिकीय विधियां हैं जिनकी सहायता से तथ्यों का सांख्यिकीय विश्लेषण किया जा सकता है। ऐसे विश्लेषण से न केवल तथ्यों को बहुत संक्षिप्त एवं सरल रूप से प्रस्तुत करना संभव हो जाता है बल्कि सांख्यिकीय विश्लेषण पर आधारित निष्कर्षों को भी अधिक प्रमाणिक माना जाता है। यही कारण है कि तथ्यों की वास्तविक विवेचना करने से पूर्व उनका सांख्यिकीय विश्लेषण करना आवश्यक होता है।

(13.) तथ्यों का विश्लेषण तथा विवेचन :

विभिन्न विधियों से प्राप्त तथ्यों का विश्लेषण और विवेचन करना प्रत्येक शोध का महत्वपूर्ण चरण है। अध्ययन से संबंधित तथ्य केवल कच्चे माल की तरह होते हैं लेकिन विश्लेषण और विवेचन के द्वारा ही उन्हें व्यवस्थित रूप दिया जा सकता है। तथ्यों के विश्लेषण और विवेचन का संबंध प्राप्त तथ्यों का अर्थ निकालने तथा परिकल्पना पर प्रकाश डालने से होता है। इसके अतिरिक्त विवेचन करने के दौरान ही यह भी स्पष्ट किया जाता है कि किसी विशेष दशा के लिए कौन से कारक उत्तरदाई हैं। इस प्रकार विभिन्न तथ्यों के बीच कार्य-कारण का संबंध इसी स्तर पर स्पष्ट किया जाता है।

(14.) सामान्यीकरण एवं प्रतिवेदन का प्रस्तुतीकरण :

सामाजिक शोध का यह सबसे अंतिम लेकिन सबसे महत्वपूर्ण चरण है। प्रतिवेदन के माध्यम से ही एक शोधकर्ता अनुसंधान से प्राप्त सभी तथ्यों को व्यवस्थित कर के जनसामान्य के सामने प्रस्तुत करता है। शोध प्रतिवेदन मुख्यतः तीन भागों में विभाजित होना आवश्यक है प्रथम भाग, पद्धतिशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य तथा अवधारणाओं के स्पष्टीकरण से संबंधित होता है। इस भाग में यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि

सूचनाओं को प्राप्त करने के लिए निदर्शन का चुनाव किस प्रकार किया गया तथा अध्ययन के किन पद्धतियों को उपयोग में लाया गया। दूसरा भाग, सबसे अधिक विस्तृत होता है अध्ययन विषय के विभिन्न पक्षों से संबंधित तथ्य की विवेचना इस तरह की जाती है जिससे विभिन्न तथ्यों के बीच कारणात्मक संबंध स्थापित किए जा सकें। इसी विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि किन्ही विशेष दशाओं के घटित होने के कारण क्या हैं तथा विभिन्न घटनाएं मानवीय संबंधों और सामाजिक जीवन को किस प्रकार प्रभावित करती हैं। प्रतिवेदन का तीसरा भाग सामान्य निष्कर्ष से संबंधित होता है। इसी को हम सामान्यीकरण कहते हैं। उदाहरण के लिए, **एम.एन. श्रीनिवास** ने अपने अध्ययन के आधार पर यह सामान्यीकरण प्रस्तुत किया कि जिस क्षेत्र में संस्कृतिकरण का प्रभाव अधिक होता है, उसमें जातिय गतिशीलता उतनी ही अधिक होती है। इसी तरह **मैक्स वेबर** ने विभिन्न धर्मों का अध्ययन करते हुए यह सामान्य निष्कर्ष दिया कि किसी विशेष समाज की आर्थिक व्यवस्था वहां के धार्मिक आचारों की प्रकृति से प्रभावित होती है। तात्पर्य यह है कि सामान्यीकरण एक ऐसा निष्कर्ष है जो अध्ययन से प्राप्त होने वाली सामान्य प्रवृत्ति को स्पष्ट करता है। सामान्यीकरण के आधार पर ही पुराने सिद्धांतों का मूल्यांकन किया जाता है तथा नए सिद्धांतों को विकसित किया जाता है। संपूर्ण शोध प्रतिवेदन की भाषा बहुत वैज्ञानिक और व्यवस्थित होना आवश्यक है। वास्तव में प्रतिवेदन में शोधकर्ता द्वारा जो निष्कर्ष दिए जाते हैं, उन्हीं के आधार पर यह ज्ञात किया जाता है कि शोध कार्य किस सीमा तक वैज्ञानिक है। प्रतिवेदन प्रस्तुत करते समय महत्वपूर्ण सांख्यिकीय तथ्यों को विभिन्न प्रकार के चित्रों द्वारा प्रस्तुत करना उपयोगी होता है जिससे साधारण व्यक्ति भी उसके अभिप्राय को समझ सके। प्रतिवेदन के अंत में, अध्ययन विषय को स्पष्ट करने के लिए जिन विद्वानों के कथनों अथवा उनके द्वारा दी गई सूचनाओं का उपयोग किया जाए, उनका उल्लेख संदर्भ सूची के रूप में करना आवश्यक होता है। इससे प्रतिवेदन में अधिक प्रामाणिकता आ जाती हैं। इसके अतिरिक्त, कुछ महत्वपूर्ण लेकिन लंबी तालिकाओं तथा प्रश्नावली के प्रारूप आदि को परिशिष्ट के रूप में देना आवश्यक होता है।

उपयुक्त संपूर्ण विवेचन से स्पष्ट होता है कि वैज्ञानिक शोध एक लंबी प्रक्रिया है तथा इसके प्रत्येक स्तर पर शोधकर्ता के लिए अनेक सावधानियों को ध्यान में रखना आवश्यक होता है। एक अध्ययनकर्ता शोध के विभिन्न चरणों के प्रति जितना अधिक व्यावहारिक दृष्टिकोण अपनाता है, उसकी सफलता की संभावना उतनी ही अधिक बढ़ जाती है।

4.1.4. सारांश (Summary)

सामाजिक शोध की प्रकृति चाहे किसी भी प्रकार की हो, इसका मुख्य लक्ष्य प्राप्त सूचनाओं के आधार पर ऐसे निष्कर्ष प्रस्तुत करना है जिनके आधार पर कुछ विशेष नियमों का प्रतिपादन किया जा सके। समाजशास्त्रीय भाषा में इसी को हम सामान्यीकरण कहते हैं। यह कार्य वैज्ञानिक पद्धति की सहायता से ही किया जा सकता है। यह सच है कि सामाजिक शोध की प्रकृति प्राकृतिक विज्ञानों में किए जाने वाले शोध से भिन्न होती है किंतु इसके बाद भी प्राकृतिक विज्ञानों की तुलना में सामाजिक शोध की प्रकृति कहीं अधिक जटिल और व्यापक होती है। समाजिक शोध तभी सफल हो सकता है जब

शोधकर्ता एक निश्चित क्रम में एक चरण से दूसरे चरण में आगे बढ़ते हुए यथार्थ तथ्यों का इस तरह संकलन करें जिससे एक वैज्ञानिक निष्कर्ष तक पहुंचा जा सके। सामान्य रूप से कहा जा सकता है कि एक वैज्ञानिक अपने चिंतन और व्यवहार में जिन प्रक्रियाओं को उपयोग में लाता है, उन्हीं को सोपान अथवा चरण कहा जाता है। एक शोधकर्ता को शोध करते समय इन चरणों का पालन करना पड़ता है, ताकि कार्य व्यवस्थित एवं वस्तुनिष्ठ रूप से पूर्ण हो सकें। सामाजिक शोध के प्रमुख चरण बिलकुल वही हैं जो वैज्ञानिक पद्धति के प्रमुख चरण होते हैं।

4.1.5. बोध प्रश्न (Perception Questions)

प्रश्न 1 : वैज्ञानिक पद्धति और सामाजिक शोध से आप क्या समझते है ?

प्रश्न 2 : सामाजिक शोध के प्रमुख चरणों की संक्षिप्त विवेचना कीजिए।

प्रश्न 3 : सामाजिक शोध में परिकल्पना की क्या उपयोगिता है ?

प्रश्न 4 : शोष विषय के चुनाव में कौन-सी सावधानियां आवश्यक हैं ?

प्रश्न 5 : सामाजिक शोध के मुख्य उद्देश्य क्या हैं ? सामाजिक शोध के प्रमुख चरणों के नाम लिखते हुए किन्ही तीन को विस्तृत रूप से समझाइये।

4.1.6. संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ (References and Useful Texts)

- आहूजा, राम. (2015). *सामाजिक अनुसंधान*. जयपुर : रावत पब्लिकेशन.
- पाण्डेय, गणेश., एवं पाण्डेय, अरुणा. (2009). *शोध प्रविधि*. नई दिल्ली : राधा पब्लिकेशन.
- मुकर्जी, आर.एन. (2016). *सामाजिक शोध व सांखियकी*. दिल्ली : विवेक प्रकाशन.
- यादव, आर.जी. (2014). *सामाजिक अनुसन्धान पद्धतियां*. नई दिल्ली : ओरिएंट ब्लैकस्वान.
- रावत, हरिकृष्ण. (2015). *सामाजिक शोध की विधियां*. जयपुर : रावत पब्लिकेशन.
- वोहरा, वंदना. (2009). *रिसर्च मैथ्डोलाजी*. नई दिल्ली : ओमेगा पब्लिकेशन.

इकाई-2 : साहित्य पुनरावलोकन
Literature Review

इकाई की रूपरेखा

4.2.0. उद्देश्य
4.2.1. प्रस्तावना
4.2.2. शोध साहित्य की पहचान
4.2.3. साहित्य पुनरावलोकन की परिभाषा एवं आवश्यकता
4.2.4. साहित्य पुनरावलोकन के प्रकार एवं चरण
4.2.5. शोध में साहित्य पुनरावलोकन का महत्त्व
4.2.6. सारांश
4.2.7. बोध प्रश्न
4.2.8. संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

4.2.0. उद्देश्य (Purpose):

इस इकाई के अध्ययन पश्चात् आप-

- यह जान पाएँगे कि साहित्य क्या होता है।
- साहित्य पुनरावलोकन क्यों आवश्यक है।
- किसी साहित्य का पुनरावलोकन कैसे किया जाए।
- किसी भी शोध हेतु साहित्य पुनरावलोकन का क्या महत्त्व है।

4.2.1. प्रस्तावना (Introduction)

साहित्य पुनरावलोकन वह कार्य है जो किसी शोध कार्य हेतु महत्वपूर्ण स्थान रखता है। क्योंकि साहित्य पुनरावलोकन शोध प्रक्रिया का एक अभिन्न अंग होता है, जो कि लगभग सभी संचालन सम्बन्धी चरणों से संबंधित एक मूल्यवान योगदान देता है। साहित्य मान्यता प्राप्त विद्वान, शोधकर्ता द्वारा किसी विषय पर प्रकाशित सामग्री हो। साहित्य पुनरावलोकन के अंतर्गत मुख्यतः शोध आलेखों, शोध पत्रों, शोध प्रबंधों, इंटरनेट सामग्री, इत्यादि की समीक्षा की जाती है। साहित्य पुनरावलोकन में शोधकर्ता के किए गए कार्यों पर प्रकाश डाला जाता है और उसके कार्यों की कमी व मजबूती पर भी ध्यान आकृष्ट किया जाता है। साहित्य पुनरावलोकन शोधार्थी के शोध विषय के कार्यों में मदद या दिशा प्रदान करता है।

4.2.2. शोध साहित्य की पहचान (Identification of Research Literature)

शोध कार्य हेतु विषय के कुंजी शब्दों से संबंधित योग्य एवं प्रभावशाली साहित्य की खोज करने के लिए यह आवश्यक है कि जिस समस्या के विषय में खोज किया जा रहा हो उसके और शोधकर्ता के व्यापक विषय में आवश्यक जानकारी हो, ताकि शोधकर्ता अपने खोज में कुछ मानदंडों का गठन कर सके। शोध विषय के अनुरूप कौन-कौन से लिखित माध्यमों के द्वारा विषय से संबंधित पूरी जानकारी प्राप्त हो रही है। शोध विषय के अनुरूप हमारे शोध को दिशा प्रदान करने के लिए कौन-कौन से सहायक सामग्री के द्वारा अध्ययन की सहायता मिल रही है। प्रमाणित सूचियों के द्वारा उपलब्ध ज्ञान के भंडार से महत्वपूर्ण तत्वों की सहायता ली जाती है।

शोध साहित्य की खोज एवं पहचान

खोज विकल्प	प्रकाशन का प्रकार	पुस्तकालय संसाधन
व्यापक एवं सूक्ष्म स्तर पर खोज	शोध पत्रिकाओं (जर्नल्स) के लेख	पीयर-रिव्यू की स्थिति की जांच
ज्ञान-अनुशासन संबंधी डाटाबेस	शोध पुस्तकें	शोध साहित्य की समीक्षा के लिए विशेषज्ञ से संपर्क
विभिन्न आकादमिक संगठनों द्वारा तैयार शोध सर्वे अथवा अध्ययन		
एकाधिक डाटाबेस	सरकारी प्रतिवेदन/रिपोर्ट/दस्तावेज	लाइब्रेरी वेबिनार
गूगल स्कालर एवं अन्य	सिद्धांत एवं सिद्धांतकार	

साहित्य के अंतर्गत विद्वानों के लेख, शोध पत्र, शोध प्रबंध, पुस्तकें, जर्नल अथवा पत्रिकाएं, सम्मेलन संबंधी कागजात, इंटरनेट इत्यादि आते हैं। जिन्हें हम साहित्य की श्रेणी में रखते हैं। जिनका एक प्रारूप के तहत समीक्षा अथवा पुनरावलोकन किया जाता है, जिसमें प्रासंगिक साहित्य का संग्रहण एवं अध्ययन, महत्वपूर्ण साहित्य का विहंगावलोकन/निरीक्षण, मुख्य अवधारणाओं और पत्रों पर प्रकाश डाला जाता है। इन मुख्य साहित्यों का विवरण कुछ इस प्रकार है :

(1) लेख : किसी विषय पर आधारित लिखा गया विचार एक लेख होता है। लेख के अंतर्गत समाज के अंतर्गत महसूस किए गए घटित घटना का विवरण, प्राथमिक आधार पर आलोकित घटना का विवरण, एवं द्वितीयक स्रोतों के आधार पर प्रस्तुत किए गए विवरण एक लेख के अंतर्गत आते हैं।

(2) शोध पत्र एवं शोध प्रबंध : किसी महत्वपूर्ण विषय पर प्राथमिक स्रोतों यथा अवलोकन, साक्षात्कार, वैयक्तिक अध्ययन, प्रश्नावली अथवा अनुसूची के माध्यम से अथवा द्वितीयक स्रोतों से प्राप्त आंकड़े अथवा तथ्यों की सहायता से किया गया शोध कार्य एक शोध प्रबंध अथवा शोध पत्र की श्रेणी में गिना जाता है।

(3) पुस्तकें : पुस्तकें किसी ग्रंथ के केंद्रीय भाग के रूप में होती हैं। पुस्तकों में प्रकाशित सामग्री महत्वपूर्ण तथा अच्छी गुणवत्ता वाली होती है और परिणाम अन्य शोधों के साथ एकीकृत किए गए होते हैं। यह ज्ञान के एक सामग्री भंडार का निर्माण करते हैं। पुस्तकें विभिन्न विषयों पर प्रकाशित होती हैं। कुछ पुस्तकें आनुभविक अध्ययन पर आधारित तो कुछ पुस्तकें द्वितीयक स्रोत पर आधारित होती है, जो एक मोटी ग्रंथ के रूप में प्रकाशित होती है।

(4) जर्नल अथवा पत्रिकाएं : किसी विद्वान के द्वारा अथवा किसी शैक्षणिक संस्थान के द्वारा किए गए शोध के उपरांत उसके विस्तृत विवरण को प्रकाशित करवाया गया हो। एक जर्नल या पत्रिका में कई शोध पत्र प्रकाशित हुए रहते है। इस प्रकार की सामग्री को जर्नल अथवा पत्रिकाएं कही जाती है।

(5) सम्मेलन संबंधी कागजात : विभिन्न मुद्दों पर आयोजित सम्मेलनों में विभिन्न विद्वानों के द्वारा प्रस्तुत किए गए प्रबंध अथवा रिपोर्ट जो किसी विशेष क्षेत्र में हुए हाल के शोधों की जानकारियां प्रदान करते हैं। इन सम्मेलनों में किए गए चर्चाओं, व्याख्यानों से संबंधित विवरण पत्रिका में प्रकाशित होती हैं।

(6) इंटरनेट : आज के समय में लिखित रूप में अथवा दृश्य-श्रव्य रूप में विभिन्न विषयों अथवा मुद्दों पर जानकारियां अपलोड होती है।

4.2.3. साहित्य पुनरावलोकन की विशेषता एवं आवश्यकता (Needs and Character of Literature Review)

साहित्य की समीक्षा, सारांश, वर्गीकरण और पिछले अनुसंधान अध्ययन, साहित्य की समीक्षा और पत्रिका के लेख की तुलना में उपयोग के माध्यम से उपलब्ध ज्ञान की प्रकाशित शरीर के एक हिस्से की महत्वपूर्ण विश्लेषण है। यह एक विशेष विषय पर उपलब्ध वर्तमान विद्वानों के अध्ययन कार्य एक निश्चित समय अवधि के भीतर की परख करता है। यह महज मौजूदा कार्य का एक योग नहीं है। इसका उद्देश्य विषय की वर्तमान ज्ञान को स्थापित करने के क्रम में गंभीर रूप से लागू ज्ञान की प्रकाशित शरीर का विश्लेषण करना है।

साहित्य पुनरावलोकन में साहित्य जरूरी नहीं की केवल दुनिया के महान साहित्यिक ग्रंथों बल्कि एक विषय पर सामग्री के संग्रह करने के लिए संदर्भित करता है। साहित्य पत्रिकाओं से लेकर विद्वानों के लेखों तक कुछ भी हो सकता है। साहित्य का मतलब जरूरी नहीं कि आपका पाठक आपकी निजी राय जानना चाहता है जैसे आप इन स्रोतों को पसंद करते हैं या नहीं। साहित्य समीक्षा का लेखन मानविकी में कभी-कभी लेकिन विज्ञान और सामाजिक विज्ञान, प्रयोग और प्रयोगशाला की रिपोर्ट आदि में ज्यादातर किया जाता है। साहित्य की समीक्षा को कभी-कभी एक अलग पेपर के रूप में भी लिखा जाता है। कई शैक्षणिक लेखन कार्य की तरह, साहित्य की समीक्षा लिखने के लिए कोई एक सार्वभौमिक मानक नहीं है बल्कि इसका प्रारूप विषयानुशासन से विषयानुशासन के कार्य-कार्य में अंतर हो सकता है।

साहित्य पुनरावलोकन की आवश्यकता :

साहित्य समीक्षा हमें किसी भी विशेष विषय के बारे में एक आसान निर्देशन या मार्गदर्शन प्रदान करते हैं। जब शोधकर्ता के पास अनुसंधान का संचालन करने के लिए समय सीमित है तो साहित्य पुनरावलोकन एक मार्गदर्शक के रूप में दिशा निर्देश देता है। पेशेवर इसे एक उपयोगी रिपोर्ट की तरह देखते हैं जो उन्हें विषय विशेष से संबंधित चीजों की जानकारी देते हैं। अकादमिक विद्वानों के लिए साहित्य पुनरावलोकन एक शोधकर्ता के अध्ययन कार्य की विश्वसनीयता पर जोर देता है। शोध कार्य की जांच के लिए यह एक ठोस पृष्ठभूमि प्रदान करता है।

यह शोध से संबंधित प्रचलित सिद्धांतों और परिकल्पनाओं, कुंजी शब्दों, शोध की वर्तमान स्थिति, शोध में इस्तेमाल हो रहे हैं विधियों और तरीकों के विषय में जानकारियां मिलती हैं। इसके द्वारा शोध प्रश्न की पहचान करने में, अध्ययन विषय पर ध्यान देते हुए एक विशेष अनुसंधान प्रश्न के स्वरूप को समझने एवं वर्तमान वैचारिक परिदृश्य को समझने में मदद करता है। यह किए गए अध्ययन की प्रमुख पद्धति की खामियों या अंतराल, सिद्धांत और निष्कर्षों में विसंगतियां और भविष्य के अध्ययन से जुड़े प्रासंगिक मुद्दों आदि को सामने लाता है।

अपने विषय से संबंधित ज्ञान को बढ़ाने के अतिरिक्त साहित्य पुनरावलोकन शोधकर्ता को दो निम्न क्षेत्रों में प्राविधिक निपुणता भी प्रदान करता है :

- **सूचना का ग्रहण करना :** उपयोगी लेखों और पुस्तकों के श्रंखला की पहचान के लिये पुस्तिका या कम्पयुटरीकृत विधियों का उपयोग कर साहित्य को कुशलतापूर्वक प्रतिपादित करने की क्षमता प्रदान करता है।
- **महत्वपूर्ण मूल्यांकन करना :** निष्पक्ष और मान्य अध्ययनों के लिये विश्लेषणों के सिद्धांतों को लागू करने की क्षमता।

साहित्य के पुनरावलोकन एवं समीक्षा करने के कुछ **प्रमुख लाभ** इस प्रकार हैं:

1. अध्ययनकर्ता को शोध समस्या के संदर्भ में सामान्य ज्ञान विकसित हो जाता है।
2. अनुसंधान कार्य हेतु शोध प्रारूप एवं उपयोगी पद्धतियां तथा प्रविधियां शोधकर्ता को स्पष्ट हो जाती हैं।
3. साहित्य के पुनरावलोकन से शोधकर्ता को अनुसंधान संबंधी संदेह की स्थितियां सुस्पष्ट हो जाती हैं।
4. इसके पश्चात शोधकर्ता में अतिरिक्त अभिज्ञान तथा अंतर्दृष्टि विकसित हो जाती हैं।

4.2.4. साहित्य पुनरावलोकन के प्रकार एवं चरण (Type and Step of Literature Review):

एक शोध कार्य में साहित्य का पुनरावलोकन **दो प्रकार** से किया जा सकता है :

- **विषय के आधार पर :** इसके अंतर्गत कुंजी शब्दों से संबंधित कार्यों की तलाश के बजाय यह देखा जाता है कि संबंधित विषय पर केन्द्रित होकर क्या-क्या लिखा गया है। कौन-कौन पक्षों पर केन्द्रित होकर उसकी किस प्रकार की व्याख्या प्रस्तुत की गई है। इस आधार पर वर्तमान शोध में केन्द्रित क्षेत्र के अतिरिक्त और अन्य महत्वपूर्ण पक्षों की जानकारी प्राप्त हो जाती है जिसको लेना वर्तमान शोध हेतु और भी प्रासंगिक बनता है।

- **कुंजी शब्द के आधार पर :** इसके अंतर्गत अपने शोध विषय के कुंजी शब्द या मुख्य शब्द की पहचान करके उससे संबंधित पुस्तकों, लेखों की, विभिन्न पुस्तकालयों अथवा इन्टरनेट पर साहित्य के खोज की जाती है। कुंजी शब्द या मुख्य शब्द से संबंधित विभिन्न किए गए पूर्व के अध्ययन कार्य का अवलोकन और उनका चुनाव किया जाता है, और कुंजी शब्दों पर मिलने वाले उपयोगी साहित्यों का पुनरावलोकन किया जाता है।

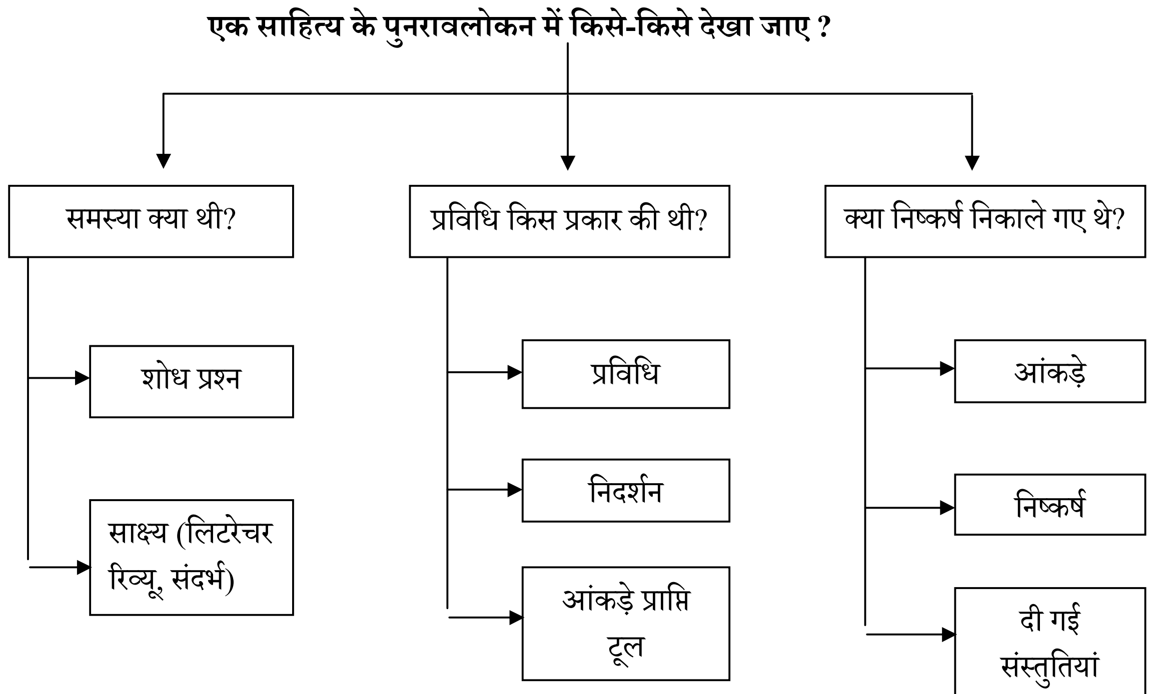

साहित्य का पुनरावलोकन करने के लिए **मुख्य चरण** होते है :

- **शोध समस्या की पहचान एवं चयन :** समाज में घटने वाली ऐसी घटना या प्रभाव जो अपने संज्ञान में वह समस्या को निरूपित करता हो, उसे शोध के रूप में पहचान कर अपने शोध समस्या के लिए चयन किया जाना चाहिए ताकि उसे शोध के माध्यम से उसे समझा जाए या उसका निवारण किया जाए।

- **समस्या से संबन्धित साहित्य की खोज :** शोध कार्य को करने के लिए समस्या को शोध का शीर्षक बनाया जाता है एवं उससे संबन्धित पूर्व में किसी अन्य विद्वानों या शोधकर्ताओं के द्वारा, किसी प्रकार का शोध किया गया है कि नहीं, उसकी खोज इंटरनेट, लेख व पुस्तकों में की जानी चाहिए। जहाँ पर शोध के समस्या से संबन्धित तथ्य या उसके आस-पास तथ्यों की जानकारी प्राप्ति होती है। यह साहित्य हमारे शोध को दिशा प्रदान करते है।
- **शोध समस्या (शीर्षक) के मुख्य धारणाओं के आधार पर उपयोगी व अनुपयोगी साहित्य का चयन करना :** शोध शीर्षक के मुख्य धारणाओं के आधार पर ही लेखों व पुस्तकों से उपयोगी लेखों या पूर्व के किए शोध प्रबंधों या शोध कार्यों को छांट कर उसका गहन अध्ययन किया जाता है।
- **साहित्य के अध्ययन में कार्यों पर ध्यान केन्द्रित करना :** साहित्य के अध्ययन में किए जाने वाले शोध कार्यों के उद्देश्य क्या हैं तथा वह क्या प्रश्न कर रहे हैं इन पर ध्यान केन्द्रित किया जाता है। किए गए शोध कार्यों के गहन अध्ययन से हमारे शोध के लिए या शोध में उपयोग करने के लिए सहायता मिल सकती है।
- **शोध साहित्य के उद्देश्य व प्रविधि को लिखना :** शोध साहित्यों के अध्ययन मात्र से ही कार्य नहीं होगा अपितु उस शोध साहित्य में मुख्य धारणाओं पर क्या उद्देश्य, प्रश्न व प्रविधियों का प्रयोग किया गया है उसे भी लिखते रहना चाहिए। साहित्य कहाँ से और किस शोधकर्ता के द्वारा प्रकाशित किया गया है उसका भी लेखन किया जाना चाहिए।
- **प्राप्त प्रविधियों को अपने शोध में मार्गदर्शन के रूप में अपनाना :** पूर्व के शोध लेखों में प्रयुक्त प्रविधियों व उसमें विचार, अंतरदृष्टियों, नतीजों को लेकर तर्क पूर्ण सहित अपने शोध के कार्य में स्थापित किया जाना चाहिए, जिससे साहित्य के अध्ययन द्वारा शोध को वैधानिक रास्ता प्राप्त होता है। तथ्यों या आँकड़ों को प्रविधियों के द्वारा प्राप्त करने से अर्थात प्राप्त किए गए आंकड़ें या तथ्य, वैध होते है। तब जब इनको प्राप्त करने के लिये पूर्व के शोध साहित्य के प्रविधियों का सहारा लिया गया हो।

साहित्य पुनरावलोकन की प्रक्रिया

शोध साहित्य की खोज, पहचान एवं संकलन करना

↓

अध्ययन एवं विवरण बनाना

↓

विवरण को वर्गों के रूप में संगठित करना

↓

संकलित सामग्री को समझाने के स्तर तक लाना और उसका विश्लेषण करना

↓

साहित्य पुनरावलोकन का निबंधात्मक लेखन करना

↓

तैयार निबंध का पुनरीक्षण करना

4.2.5. शोध में साहित्य पुनरावलोकन का महत्त्व (Importance of Literature Review in Research)

साहित्य का पुनरावलोकन शोधकर्ता के लिये उसके शोध कार्यों को दिशा निर्देश देने का कार्य करता है। साहित्य पुनरावलोकन से शोध को अंतरदृष्टि प्राप्त होती है। शोध साहित्य में अध्ययन के दौरान ज्ञात होता है कि इस शोध में आगे और भी कार्य हो सकता है इस आधार पर पूर्व के शोध साहित्य के उद्देश्य व प्रविधियों को लेकर उस शोध के कार्यों पर आगे भी काम किया जा सकता है। साहित्य पुनरावलोकन यह भी बताता हैं कि किसी घटना या प्रभाव का अध्ययन किस क्षेत्र में किया गया है और किस क्षेत्र में नहीं किया गया है एवं किस क्षेत्र में किए जाने की आवश्यकता है। साहित्य पुनरावलोकन शोध से संबन्धित महत्वपूर्ण जानकारियाँ उपलब्ध कराता है। जिस क्षेत्र में शोध किया जाना है और उसके बारें में कम जानकारी हो या उसका बिलकुल अभाव हो तो शोध साहित्य के अध्ययन से उसके बारे में अच्छे से जानकारियाँ उपलब्ध हो जाती है। साथ ही साथ अध्ययन या शोध में तथ्यों या आंकड़ों को किस प्रकार और कैसे प्राप्त किए जाएंगे उसके लिये उद्देश्य, शोध के प्रश्न व प्रविधियों को लेकर या उनके विचार व दृष्टिकोणों को उपयोगी बनाया जाएगा। एक शोध हेतु साहित्य पुनरावलोकन महत्वपूर्ण ही नहीं अपितु दिशानिर्देश के रूप में अतिआवश्यक भी है। वर्तमान में विभिन्न क्षेत्रों में किए जाने वाले विभिन्न प्रकार के शोधों का मुख्य आधार साहित्य पुनरावलोकन कर आगे बढ़ना है। पूर्व के किए गए कार्य वर्तमान में किए जाने वाले भावी अध्ययन को उस विषय की सामान्य जानकारी, प्रविधियों, और निकले परिणामों से रूबरू करा कर मार्ग प्रस्तुत करता है। यदि किसी भावी शोध हेतु साहित्य पुनरावलोकन की सहायता नहीं लिया जाए तो शोध में आने वाली विभिन्न समस्याओं और भटकाव का सामना करना पड़ता है और शोध की विश्वसनीयता पर भी सवाल खड़ा होता है।

4.2.6. सारांश (Summary)

साहित्य पुनरावलोकन वह कार्य है, जो किसी शोध कार्य हेतु महत्वपूर्ण स्थान रखता है। क्योंकि साहित्य पुनरावलोकन शोध प्रक्रिया का एक अभिन्न अंग होता है, जो कि लगभग सभी संचालन सम्बन्धी चरणों से संबंधित एक मूल्यवान योगदान देता है। साहित्य मान्यता प्राप्त संस्थान, विद्वान, शोधकर्ता द्वारा किसी विषय पर प्रकाशित सामग्री होता है। शोध कार्य हेतु विषय के कुंजी शब्दों से संबंधित योग्य एवं प्रभावशाली साहित्य की खोज करने के लिए यह आवश्यक है कि जिस समस्या के विषय में खोज किया जा रहा हो उसके और शोधकर्ता के व्यापक के विषय में आवश्यक जानकारी हो, ताकि शोधकर्ता अपने खोज में कुछ मानदंडों का गठन कर सके। साहित्य पुनरावलोकन द्वारा शोध से संबंधित प्रचलित सिद्धांतों और परिकल्पनाओं, कुंजी शब्दों, शोध की वर्तमान स्थिति, शोध में इस्तेमाल हो रहे हैं विधियों और तरीकों के विषय में जानकारियां मिलती हैं। इसके द्वारा शोध प्रश्न की पहचान करने में, अध्ययन विषय पर ध्यान देते हुए एक विशेष अनुसंधान प्रश्न के स्वरूप को समझने एवं वर्तमान वैचारिक परिदृश्य को समझने में मदद करता है। यह किए गए अध्ययन की प्रमुख पद्धति की खामियों या अंतराल, सिद्धांत और निष्कर्षों में विसंगतियां और भविष्य के अध्ययन से जुड़े प्रासंगिक मुद्दों आदि को सामने लाता है।

4.2.7. बोध प्रश्न (Perception Questions)

प्रश्न 1 : शोध साहित्य के स्रोत कौन-कौन से है?

प्रश्न 2 : साहित्य पुनरावलोकन क्या है और शोध हेतु इसकी आवश्यकता क्यों है?

प्रश्न 3 : साहित्य का पुनरावलोकन करने के चरण बताइए।

प्रश्न 4 : एक शोध में साहित्य पुनरावलोकन का क्या महत्त्व है?

प्रश्न 5 : शोध साहित्य की पहचान और साहित्य का पुनरावलोकन करने की निम्नलिखित प्रक्रिया को बताइए।

4.2.8. संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ (References and Useful Texts):

- Blaxter, L., Hughes, C. & Tight, M. (2001). *How to Research.* Buckingham : Open University.
- Taylor, D., & Procter, M. (2008). *The literature review : a few tips of conducting it.* Health Services Writing Centre : University of Toronto.
- Wellington, J., Bathmaker, A., Hunt, C., McCulloch, G., & Sikes, P. (2005). *Succeeding with your doctorate.* London : Sage.
- कुमार, आर. (2017). *शोध कार्यप्रणाली.* नई दिल्ली : सेज पब्लिकेशन.

इकाई-3 : परिकल्पना/ उपकल्पना
Hypothesis

इकाई की रूपरेखा

4.3.0. उद्देश्य
4.3.1. प्रस्तावना
4.3.2. परिकल्पना की परिभाषा एवं विशेषताएँ
4.3.3. परिकल्पना के स्त्रोत
4.3.4. परिकल्पना के प्रकार
4.3.5. परिकल्पना का महत्त्व
4.3.6. परिकल्पना की सीमाएं
4.3.7. सारांश
4.3.8. बोध प्रश्न
4.3.9. संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

4.3.0. उद्देश्य (Purpose)

इस इकाई के अध्ययन पश्चात् आप-

- यह जान पाएँगे कि परिकल्पना अथवा उपकल्पना क्या होता है।
- सामाजिक शोध के चरण में परिकल्पना का क्या महत्त्व है।
- परिकल्पना का निर्माण क्यों आवश्यक है और यह शोध को कैसे दिशा प्रदान करता है।
- परिकल्पना भावी सामाजिक शोध में दिशानिर्देश के रूप में सहायक साबित होगा, जो जानकारी से अवगत कराएगा।

4.3.1. प्रस्तावना (Introduction):

सामाजिक अनुसंधान के अंतर्गत तथ्यों का नियंत्रण और वस्तुनिष्ठ रूप से अध्ययन करने में परिकल्पना की एक महत्वपूर्ण भूमिका है। शाब्दिक रूप से परिकल्पना दो शब्दों के योग से बना है – 'परि' तथा 'कल्पना'। 'परि' का अर्थ है 'चारों ओर' तथा 'कल्पना' का अर्थ है 'एक सामान्य अनुमान'। इस प्रकार किसी भी अध्ययन को जो सामान्य अनुमान चारों ओर से प्रभावित किए रहता है, उसी को हम परिकल्पना कहतें हैं। वास्तविकता यह है कि शोधकर्ता कोई भी अनुसंधान कार्य आरम्भ करने से पहले ही विषय के विभिन्न पक्षों से संबंधित कुछ सामान्य अनुमान अवश्य लगा लेता है। ऐसे सामान्य अनुमान का उद्देश्य आगामी अध्ययन के लिए एक निश्चित दिशा का निर्धारण करना है। जिससे शोधकर्ता इधर-

उधर न भटककर एक सुनिश्चित आधार पर तथ्यों को एकत्रित कर सके। उदाहारण के लिए, यदि हमारा उद्देश्य बाल-अपराध के कारणों को ज्ञात करने के लिए कोई वैज्ञानिक अध्ययन करना है तो अध्ययन के पूर्व ही यह परिकल्पना बना सकते हैं कि "टूटे हुए परिवार अथवा दोषपूर्ण संगति बाल-अपराध का प्रमुख कारण है।" ऐसी स्थिति में हम प्राप्त तथ्यों के आधार पर यह देखने का प्रयत्न करेंगे कि अध्ययन के आरम्भ में जिस परिकल्पना का निर्माण किया गया था, वह किस सीमा तक सही अथवा गलत है। इस दृष्टिकोण से परिकल्पना किसी भी अध्ययन को एक निश्चित दिशा देने में सहायक होती है। **गुडे** तथा **हाट** ने लिखा है, "परिकल्पना सिद्धांत और अनुसंधान के बीच की एक आवश्यक कड़ी है जो अतिरिक्त ज्ञान की खोज में सहायता देती है।" यह सदैव ध्यान रखना चाहिए कि वैज्ञानिक अनुसंधान का अंतिम लक्ष्य परिकल्पना का निर्माण करना ना होकर सत्य की खोज करना है। परिकल्पना केवल एक ऐसा आधार प्रस्तुत करती है जिसकी सहायता से सत्य की खोज में आगे बढ़ा जा सकता है। परिकल्पना के द्वारा ही सामाजिक अनुसंधान में कार्य-कारण संबंधों की एक पूर्व-सम्भावना की जा सकती है।

4.3.2. परिकल्पना की परिभाषा एवं विशेषताएँ (Definition and Characteristics of Hypothesis):

अत्यंत सरल अर्थ में, परिकल्पना या उपकल्पना किसी प्रघटना के बारे में एक परीक्षण योग्य अनुमान या अटकल या एक सुझावात्मक स्पष्टीकरण होता है। यह अनुमान या स्पष्टीकरण यह दर्शाता है कि इस प्रघटना के क्या कारण हो सकते हैं। विभिन्न विद्वानों ने परिकल्पना को अपने-अपने नजरिए से परिभाषित किया है :

डोब्रिनर के विचारों में "परिकल्पना ऐसे अनुमान हैं जो यह बताते हैं कि विविध तत्व किस तरह अंतसम्बंधित हैं।"

गुडे तथा हॉट के शब्दों में "परिकल्पना एक ऐसी प्रस्थापना है जिसकी प्रमाणिकता को साबित करने के लिए उसकी परीक्षा की जा सकती है।"

वेबस्टरकोश के अनुसार, "परिकल्पना या उपकल्पना एक काम चलाऊ अनुमान है, जिसकी रचना इसके तार्किक अथवा अनुभवपरक परिणामों को निकालने पर परीक्षण करने के लिए की जाती है।"

लुंडबर्ग के अनुसार, "परिकल्पना एक काल्पनिक सामान्यीकरण है जिसकी प्रमाणिकता की जांच करना अभी शेष है। प्रारंभिक स्तर पर एक परिकल्पना प्रतिभा, अनुमान, काल्पनिक विचार या सहज ज्ञान हो सकता है जो क्रिया या शोध का आधार बन सकता है।"

बोगार्डस ने लिखा है कि "प्राक्कल्पना परीक्षण की जाने वाली एक प्रस्तावना है।"

मन्न के अनुसार, "प्राक्कल्पना एक अस्थाई अनुमान है।"

बैली के शब्दों में, "प्राकल्पना एक ऐसी प्रस्थापना है जिसे परीक्षण के रूप में रखा जाता है और जो दो अथवा अधिक पक्षों के विशेष संबंधों के विषय में भविष्यवाणी करती है।"

गिनर के शब्दों में, "एक परिकल्पना घटनाओं के बीच कारणात्मक या अंतसंबंधों के विषय में एक अनुमान है। यह एक ऐसा अस्थाई कथन है जिसकी प्रमाणिकता या मिथ्या प्रमाणिकता कुछ साबित नहीं किया जा सकता है।"

पी.वी. यंग के अनुसार, "एक अस्थाई लेकिन केंद्रीय महत्व का विचार जो उपयोगी अनुसंधान का आधार बन जाता है, उसे हमें एक कार्यकारी परिकल्पना कहते हैं।"

थियोडोरसन के अनुसार, "कुछ तथ्यों के बीच संबंध में दावे के साथ किया हुआ एक प्रयोगार्थ कथन है।"

कैरलिंगर ने इसकी व्याख्या इस प्रकार की है, "प्राक्कल्पना अनुमान से कहा गया कथन है जो कि दो या दो से अधिक चरों के बीच संबंधों को बताता है।"

ब्लैक और चैंपियन इसे इस प्रकार कहा है "किसी वस्तु के विषय में प्रयोगार्थी कथन जिसकी वैधता आमतौर पर अज्ञात हो।"

उपर्युक्त परिभाषाएं स्पष्ट करती हैं कि परिकल्पना किसी विषय से संबंधित एक सामान्य अनुमान अथवा विचार है जिसके संदर्भ में ही संपूर्ण अध्ययन किया जाता है। प्रारंभिक स्तर पर एक परिकल्पना अनुसंधान का कार्य मार्ग-निर्देशन करती है, अध्ययन के बीच में यह अध्ययनकर्ता को इधर-उधर भटकने से रोकती है तथा अध्ययन के अंत में यह उपयोगी निष्कर्ष प्रस्तुत करने तथा पूर्व निष्कर्षों का सत्यापन करने में सहायता देती है। अध्ययन के द्वारा एकत्रित तथ्यों के आधार पर यदि कोई परिकल्पना सत्य प्रमाणित होती है तो उसे एक सिद्धांत के रूप में स्वीकार कर लिया जाता है और यदि वह सत्य प्रमाणित नहीं होती तो उसे अस्वीकार कर दिया जाता है। इसी आधार पर परिकल्पना को अक्सर कार्यकारी परिकल्पना भी कहा जाता है।

सामाजिक और बौद्धिक जीवन में प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी परिकल्पना को लेकर अपना कार्य करता है, यद्यपि ऐसी परिकल्पना सदैव वैज्ञानिक नहीं होती। वैज्ञानिक प्रयोग के लिए भी परिकल्पना में कुछ विशेषताओं का होना आवश्यक है। **गुडे तथा हॉट** ने उपयोगी परिकल्पना की निम्न पांच **विशेषताओं** का उल्लेख किया है :

(1) स्पष्टता : परिकल्पना का अवधारणात्मक रूप से बिल्कुल स्पष्ट होना आवश्यक है। एक अध्ययनकर्ता अपने अध्ययन के लिए जिस परिकल्पना का निर्माण करता है, उसकी भाषा और अर्थ इतना स्पष्ट और निश्चित होना चाहिए जिससे उसकी मनमाने अर्थों में विवेचना ना की जा सके। **गुडे तथा हॉट** का विचार है कि परिकल्पना को स्पष्ट बनाने के लिए इसमें दो विशेषताओं का समावेश होना आवश्यक है- प्रथम यह कि परिकल्पना में प्रयुक्त किए गए शब्दों को स्पष्ट रूप से परिभाषित होना चाहिए तथा दूसरी विशेषता यह है कि अवधारणा को परिभाषित करते समय ऐसी भाषा का प्रयोग किया जाना चाहिए जिससे सभी लोग उसे समान अर्थ में समझ सके।

(2) अनुभवसिद्धता : परिकल्पना में अनुभवसिद्ध प्रमाणिकता का होना अत्यधिक आवश्यक है। इसका तात्पर्य यह है कि परिकल्पना का निर्माण करते समय अनुसंधानकर्ता को यह ध्यान रखना चाहिए कि परिकल्पना किसी आदर्श को प्रस्तुत करने वाली ना हो बल्कि उसके द्वारा किसी विचार अथवा

अवधारणा की सत्यता की परीक्षा की जा सके। **गुडे तथा हॉट** में लिखा है कि ऐसी परिकल्पनाएं आदर्शात्मक होती हैं कि "सभी पूंजीपति श्रमिकों का शोषण करते हैं" अथवा "सभी अधिकारी भ्रष्ट होते हैं।" ऐसी परिकल्पनाएं प्रयोग सिद्ध अथवा अनुभव सिद्ध नहीं होती और इसलिए इन्हें वैज्ञानिक परिकल्पना नहीं कहा जा सकता है। इस दृष्टिकोण से यह ध्यान रखना आवश्यक है कि वैज्ञानिक अवधारणा केवल वे होती हैं जिसमें अंतिम रूप से अनुभवसिद्धता का समावेश होता है।

(3) विशिष्टता : परिकल्पना सामान्य ना होकर विशिष्ट होनी चाहिए। यदि अध्ययन विषय के सभी पक्षों को लेकर एक सामान्य परिकल्पना का निर्माण कर लिया जाता है तो अध्ययनकर्ता एक समय में ही विषय के सभी पक्षों का यथार्थ अध्ययन नहीं कर सकता। इस दृष्टिकोण से परिकल्पना का निर्माण करते समय यह ध्यान रखना आवश्यक है कि परिकल्पना अध्ययन विषय के किसी विशेष पक्ष से ही संबंधित हो। केवल इसी प्रकार अध्ययन करना अपना ध्यान विषय के एक विशेष पक्ष पर केंद्रित करके वास्तविक सूचनाएं प्राप्त कर सकता है।

(4) उपलब्ध प्रवृत्तियों से सम्बद्ध : परिकल्पना का निर्माण करते समय यह ध्यान रखना भी आवश्यक है कि परिकल्पना ऐसी होनी चाहिए जिसका उपलब्ध प्रविधियों द्वारा परीक्षण किया जा सके। इस संदर्भ में **गुडे और हॉट** ने लिखा है कि "एक सिद्धांत बनाने वाला जो यह नहीं जानता कि उसकी परिकल्पना की जांच करने के लिए कौन सी प्रविधियां उपलब्ध हैं, उपयोगी प्रश्नों के निर्माण में असफल ही रह जाता है।" वास्तविकता यह है कि यह प्रश्न प्रत्येक स्थिति में उपयुक्त नहीं है। सामाजिक घटनाओं की प्रकृति इतनी जटिल और परिवर्तनशील है कि कभी-कभी उपलब्ध प्रविधियों के अनुरूप परिकल्पनाओं का निर्माण करना असंभव नहीं होता। ऐसी स्थिति में यदि अनुसंधानकर्ता अपनी परिकल्पना की सत्यता की जांच करने के लिए नई प्रविधियों को भी विकसित कर सके तो इसमें कोई हानि नहीं होती। सच तो यह है कि अक्सर अनेक परिकल्पनाएं नई अध्ययन प्रविधियों के विकास में भी सहायक होती हैं।

(5) सिद्धांतों से संबंधित : परिकल्पना का निर्माण करते समय यह ध्यान रखना आवश्यक है कि वह पहले प्रस्तुत किए गए किसी सिद्धांत अथवा सिद्धांतों से संबंधित हो। यदि कोई परिकल्पना सिद्धांत से संबंधित नहीं होती तो उसकी सत्यता की परीक्षा करना असल में बहुत कठिन हो जाता है। यही कारण है कि परिकल्पना का निर्माण करने से पहले अध्ययन विषय से संबंधित साहित्य और ज्ञान को समझना आवश्यक होता है। पूर्व-स्थापित सिद्धांतों के संदर्भ में बनाई गई परिकल्पना अधिक क्रमबद्ध होती है। यदि सभी अध्ययनकर्ता स्वतंत्र रूप से परिकल्पनाओं का निर्माण करने लगे तो इनके आधार पर विकसित ज्ञान की प्रकृति कठिनता से ही वैज्ञानिक हो सकती है। इस संबंध में **गुडे और हॉट** का विचार है कि "जब अनुसंधान व्यवस्थित रूप से पूर्व स्थापित सिद्धांतों पर आधारित होता है तो ज्ञान में यथार्थ योगदान की संभावना अधिक हो जाती है।"

4.3.3. परिकल्पना के स्रोत (Source of Hypothesis):

परिकल्पना संबंधी विचार का जन्म जागते सोते कभी भी, कहीं भी और किसी भी क्षण हो सकता है। जब कभी हम अकेले बैठे हों, किसी भी समारोह, मेले या संस्कारों के रीति-रिवाजों में भाग ले रहे हों, कुछ विचार हमारे मस्तिष्क में किन्ही घटनाओं को देखकर या उनके बारे में सुनकर उत्पन्न हो सकते हैं। बाद में ये विचार ही किसी उपयोगी परिकल्पना का आधार बन सकते हैं। **न्यूटन** का बहुप्रसिद्ध उदाहरण उपरोक्त विचारों की पुष्टि करता है कि जब सेव के वृक्ष के नीचे सो रहा था, तब अचानक एक सेव पेड़ से टूट कर नीचे गिरा। इस घटना ने उसके मस्तिष्क में यह प्रश्न उत्पन्न किया कि सेव नीचे क्यों गिरा, ऊपर क्यों नहीं गया। बस, यही विचार बाद में उसके 'गुरुत्वाकर्षण शक्ति के सिद्धांत' का आधार बन गया।

परिकल्पनाओं के अनेक स्रोत हैं, जो प्रमुख रूप से हैं :

(1) अंतर्ज्ञान :

जिसे हम साधारण भाषा में अंतर्मन की आवाज कहते हैं, वह अंतर्ज्ञान ही है। यह एक प्रकार की अंतर्दृष्टि है, जो घटनाओं तथा वस्तुओं के प्रति मानव को एक प्रकार का ज्ञान प्रदान करती हैं। यह ज्ञान सही या गलत दोनों प्रकार का हो सकता है। प्राचीन ऋषि-मुनियों का बहुत सा ज्ञान इसी अंतर्ज्ञान पर आधारित था। हम अपने जीवन में बहुत से निर्णय भी अंतर्ज्ञान के आधार पर ही करते हैं। किंतु वैज्ञानिक ज्ञान पथ निष्कर्षों के स्रोत के रूप में अंतर्ज्ञान को एक संतोषप्रद साधन नहीं माना जा सकता, क्योंकि इस प्रकार के ज्ञान पर आधारित परिकल्पनाओं का बहुधा अनुभविक परीक्षण संभव नहीं होता।

(2) सामान्य संस्कृति :

विज्ञान के विकास में हमारी रोजमर्रा की सामान्य संस्कृति (जीवन-शैली, आचार-विचार और विश्वास आदि) का भी योगदान है। यह परिकल्पनाओं के विकास को तीन रूप में प्रभावित करती है :

(अ) सांस्कृतिक मूल्य : प्रत्येक संस्कृति के अपने कुछ विशिष्ट मूल्य होते हैं, जो उस संस्कृति में ज्ञान विज्ञान के प्रसार और शोध की दिशा का निर्धारण करते हैं। प्रत्येक जनसमूह की अपनी विशिष्ट संस्कृति, अपने विशिष्ट सांस्कृतिक मूल्य होते हैं, जो उस जनसमूह के ज्ञान विज्ञान को प्रभावित करते हैं। आधुनिक विज्ञान का विकास पश्चिमी संस्कृति में ही होने का प्रमुख कारण वहां की विशिष्ट संस्कृति है, जो कई अर्थों में भारतीय संस्कृति से भिन्न रही है। जहां पश्चिमी, विशेष रूप में अमेरिकी संस्कृति व्यक्तिगत प्रसन्नता, गतिशीलता और प्रतिस्पर्धा पर जोर देती है, वहां भारतीय संस्कृति का आधार प्रमुखत: समूहवाद, स्थायित्व तथा सहयोग रहा है। यही कारण है कि जहां यौन सुख, वैवाहिक सामंजस्य और पारिवारिक विघटन जैसे विषयों पर अमेरिका और पश्चिमी देशों में ढेर सारे अध्ययन हुए हैं, वहां ये अध्ययन भारत में गौण महत्व के रहने के कारण समाज वैज्ञानिकों ने इन विषयों पर कोई ध्यान नहीं दिया। जाति व्यवस्था और संयुक्त परिवार, ये दो संस्थाएं भारतीय समाज और संस्कृति के आधार स्तंभ रहने के कारण यहाँ इन पर काफी शोध कार्य हुए है और अब भी हो रहा है।

(ब) लोक विश्वास : प्रत्येक संस्कृति में कुछ ऐसे लोगों में विश्वास प्रचलित होते हैं, जिनके आधार पर कई शोध परिकल्पनाएं जन्म ले सकती हैं। इन लोक विश्वासओं की अभिव्यक्ति लोक कहावतों, सूक्तियों और धार्मिक आख्यानों द्वारा होती हैं।

(स) सामाजिक परिवर्तन : समयांतर के साथ प्रत्येक समाज और संस्कृति में परिवर्तन होता है और यह परिवर्तन सामाजिक संबंधों को प्रभावित किए बिना नहीं रहता। भारतीय समाज का आधार व्यक्तिगतता के स्थान पर सामूहिकता रहा है, अतः यहां पश्चिमी समाजों की भांति परिवारों के टूटने की समस्या नगण्य रही है। किंतु औद्योगिकरण, शिक्षा तथा विज्ञान और तकनीकी के विकास ने सामूहिकता की भावना पर प्रहार किया है, उनका आकार छोटा अर्थात एकाकी परिवार होता जा रहा है। इस परिवर्तन ने ना केवल परिवार के आकार को अपितु सामाजिक संबंधों को भी प्रभावित किया है, जिसके कारण पति-पत्नी, माता-पिता और संतानों के संबंधों में दरारें उत्पन्न हो गई हैं। जहां भारत में तलाक जैसी घटना को आश्चर्य से देखा जाता था, वहां अब यह धीरे-धीरे एक सामान्य घटना बनती जा रही है। न्यायालयों में तलाक के मामले दिन-प्रतिदिन बढ़ते जा रहे हैं। यह सब कुछ सामाजिक परिवर्तन का ही प्रभाव है। इस परिवर्तन ने परिवार, जाति और संपूर्ण समाज संबंधी कई शोध परिकल्पनाओं को जन्म दिया है।

(3) वैज्ञानिक सिद्धांत :

शोध की शुरुआत परिकल्पना से होती है और इसका अंतिम लक्ष्य सिद्धांत का निर्माण है। किंतु कभी-कभी पुराने सिद्धांतों का नए परिवर्तनों के संदर्भ में पुनः परीक्षण करना जरूरी हो जाता है और इस प्रकार एक शोधकर्ता तार्किक निर्गमन की प्रक्रिया का प्रयोग कर पुराने सिद्धांतों के आधार पर परिकल्पनाओं की रचना कर उनका परीक्षण करता है। पुरानी मान्यता के आधार पर यह माना जाता था कि द्रव का ना निर्माण किया जा सकता है और ना ही उसको मिटाया जा सकता है। किंतु इस मान्यता अथवा सिद्धांत को सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक **अल्बर्ट आइंस्टीन** ने गलत सिद्ध कर यह स्थापित किया कि किसी द्रव को शक्ति में और शक्ति को द्रव में परिवर्तित किया जा सकता है। प्रसिद्ध समाजशास्त्री **दुर्खीम** के आत्महत्या संबंधी एकीकरण के सिद्धांत ने कई विभिन्न प्रकार के विपथगमन और असमायोजनात्मक व्यवहार संबंधी परिकल्पना को जन्म दिया है। किंतु विज्ञान में किसी भी सिद्धांत को अंतिम सत्य नहीं माना जाता। ज्ञान-विज्ञान की प्रसार की प्रक्रिया में निरंतर अस्वीकरण, संशोधन, नवीनीकरण और परिवर्तन चलता रहता है। **डाल्टन** और **आइंस्टीन** जैसे विद्वानों के सिद्धांतों का भी पुनरीक्षण किया जा रहा है। विज्ञान स्वयं नई परिकल्पनाओं को जन्म देता है। प्रयोगशाला में प्रयोग करते समय कई बार नए अनुभव प्राप्त होते हैं और यह अनुभव अग्रिम शोध में परिकल्पना क्या कार्य करते हैं। यह कहा जा सकता है कि पुराने शोध के आधार पर निकाले गए निष्कर्ष या सिद्धांत वैज्ञानिक उन्नति के संदर्भ में नई शोध हेतु परिकल्पना का कार्य कर सकते हैं।

(4) सादृश्यताएं :

समान पंखों वाले पक्षी एक स्थान पर एकत्रित होते हैं। पक्षियों के व्यवहार के बारे में यह एक बहुत पुरानी कहावत है, किंतु यह कहावत बहुत कुछ रूप में मानवीय व्यवहार पर भी लागू होती है। सादृश्यताओं के आधार पर ही मानवीय पारिस्थितिक विज्ञान का जन्म हुआ, जिसका जन्म स्रोत मूलतः

वनस्पति विज्ञान और जीव विज्ञान की पारिस्थितिक विज्ञान की अवधारणा है। समाजशास्त्र के क्षेत्र में विपथगामी व्यवहार के अध्ययन में शिकागो संप्रदाय के समाजशास्त्रियों ने इस इकोलॉजी की धारणा का प्रयोग किया है। इसी प्रकार **कर्ट लेविन** का क्षेत्र सिद्धांत भौतिक जगत की कुछ सादृश्यताओं पर ही आधारित है।

(5) व्यक्तिगत अनुभव :

शोध संबंधी प्रारंभिक विचार अथवा परिकल्पना कभी भी किसी के मस्तिष्क में जन्म ले सकते हैं। ये विचार एक साधारण व्यक्ति को बाद में वैज्ञानिक का चोला पहना देते हैं। विज्ञान का इतिहास ढ़ेर सारे उदाहरणों से भरा पड़ा है, जो यह बताते हैं कि किस प्रकार एक साधारण व्यक्ति का आनुभविक प्रेक्षण शोध की एक परिकल्पना बन गया और उसके आधार पर सिद्धांतों का निर्माण हुआ। **न्यूटन** और **वाटसन** के उदाहरण इस तथ्य की पुष्टि करते हैं कि उनके व्यक्तिगत अनुभवों ने गुरुत्वाकर्षण शक्ति और भाप की शक्ति के सिद्धांतों की रचना की है। इस प्रकार के विचार प्रत्येक मस्तिष्क में उत्पन्न नहीं होते, यद्यपि उन्हें घटनाओं को सभी लोग देखते हैं और देखते रहे हैं। **जूलियन हक्सले** ने **डार्विन** के विकासवादी सिद्धांत की उत्पत्ति के संदर्भ में कहा है कि किसी भी सिद्धांत के जन्म के लिए सही समय पर सही व्यक्ति की जरूरत होती है।

(6) साहित्य :

शोध की परिकल्पनाओं का जन्म साहित्य के साथ-साथ पुराने शोध अध्ययनों के निष्कर्षों से भी हो सकता है। जो बातें कुछ उपन्यासों में एक शताब्दी पूर्व मात्र कल्पना के रूप में लिखी गई थीं, आज साकार होती जा रही हैं। उपन्यासकार **हक्सले** ने 19वीं शताब्दी में लिखे एक उपन्यास नवीन साहसिक जगत अपने भविष्य के बारे में उड़ान भरते हुए लिखा था कि भविष्य में विज्ञान इतना उन्नत हो जाएगा कि प्रयोगशालाओं में वीर्य और रज को मिलाकर कृत्रिम रूप से बच्चों उत्पन्न किए जा सकेंगे, स्त्री प्रसूति व्यथा से मुक्ति पा सकेंगी। इस प्रकार, बहुत पहले संस्कृत लेखक **कामंदकी** ने परिवार और विवाह व्यवस्था पर टिप्पणी करते हुए लिखा था कि परिवार एकांकी होंगे, उनमें में बच्चों की संख्या कम होगी, मातृत्व ऐच्छिक तथा नियोजित होगा, पति-पत्नी की और पत्नी-पति की प्रियतम वस्तु होगी, वे एक दूसरे के मित्र, बंधु और जीवन होंगे। कुछेक वैज्ञानिकों ने काल्पनिक कही जाने वाली इन बातों को अपने शोध का आधार बनाया।

4.3.4. परिकल्पना के प्रकार (Types of Hypothesis):

सामाजिक विज्ञानों में कई प्रकार की परिकल्पनाओं का प्रयोग किया जाता है। सामाजिक घटनाओं, तथ्यों एवं समस्याओं की प्रकृति अति जटिल होती है, इसलिए वैज्ञानिक शोध में अनेक प्रकार की परिकल्पनाएं प्रयोग में लाई जाती हैं। इन परिकल्पनाओं को मोटे रूप में तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है :

(1) वर्णनात्मक परिकल्पना :

वे परिकल्पनाएँ जो किसी घटना, वस्तु अथवा व्यक्ति आदि की विशेषताओं को दर्शाती हैं, जैसे किसी कॉलेज के 30 प्रतिशत विद्यार्थी सिगरेट पीते हैं या किसी समुदाय में 8 वर्ष से नीचे की बालिकाओं की संख्या 25 प्रतिशत है, या किसी दफ्तर में केवल 10 प्रतिशत कर्मचारी सही समय पर नहीं आते हैं। इस प्रकार की परिकल्पनाओं वाले अध्ययनों में कुछ नए तथ्यों को संकलित कर परिकल्पना की पुष्टि या उसका खंडन किया जाता है। ऐसी परिकल्पनाओं का मुख्य उद्देश्य किसी घटना अथवा किसी समुदाय की विशेषताओं का वर्णन करना मात्र होता है। सांख्यिकीय अर्थों में, ऐसी परिकल्पनाओं को 'एक चर परिकल्पना' कहा जाता है जिसमें केवल चर के वितरण को प्रदर्शित किया जाता है। समाजशास्त्र और मानवशास्त्र में विभिन्न जनजातीय समूहों और समुदायों के प्रारंभिक अध्ययन वर्णनात्मक प्रकार के ही थे।

(2) संबंधात्मक परिकल्पना :

दो या दो से अधिक चरों के बीच संबंधों को दर्शाने वाली परिकल्पनाएं संबंधात्मक परिकल्पनाएं कहलाती हैं। **दुर्खीम** द्वारा आत्महत्या संबंधी निर्मित परिकल्पनाएं इसी श्रेणी में आती हैं, जैसे-

- विवाहितों की अपेक्षा अविवाहित अधिक आत्महत्या करते हैं।
- कैथोलिक लोगों की अपेक्षा प्रोटेस्टेंट धर्म के अनुयायी अधिक आत्महत्या करते हैं।
- लड़कों की अपेक्षा लड़कियां अधिक मेहनती होती हैं।

सांख्यिकीय दृष्टि से, संबंधात्मक परिकल्पनाओं के दो प्रमुख रूप हैं :
पहला **द्विचर परिकल्पना**, ऐसी परिकल्पनाओं में दो चरों के बीच संबंध प्रकट किया जाता है, जैसे- बढ़ती हुई जनसंख्या अपराध की दर में भी वृद्धि करती है, भारत में प्रजातांत्रिक प्रक्रिया ने जातीय निष्ठा में वृद्धि की है। दूसरा **बहुचर परिकल्पना**, दो से अधिक चरों के मध्य संबंधों को प्रदर्शित करने वाली परिकल्पना को बहुचर परिकल्पना कहते हैं, जैसे किसी स्थान पर जितना ही अधिक जनसंख्या का घनत्व होगा, वहां नशीले पदार्थों के सेवन की प्रवृत्ति और अपराध कि दर उतनी ही अधिक तथा शिक्षा का स्तर निम्न होगा। इस परिकल्पना में जनसंख्या के घनत्व को तीन चरों नशीले पदार्थों, अपराध और शिक्षा के स्तर के साथ जोड़ा गया है। इस प्रकार की परिकल्पना को जटिल परिकल्पना भी कहा जाता है। ऐसी परिकल्पनाओं में स्वतंत्र चर की संख्या आश्रित चर से कम होती है। उपरोक्त उदाहरण में 'जनसंख्या का घनत्व' स्वतंत्र चर है, जो एक ही है और इस पर आश्रित चर तीन हैं, नशीले पदार्थ, अपराध और शिक्षा। स्वतंत्र चर में परिवर्तन आश्रित चरों को भी प्रभावित करता है।

(3) कारणात्मक परिकल्पना :

संबंधात्मक परिकल्पना का एक रूप 'कारणात्मक परिकल्पना' के नाम से भी जाना जाता है। जिसमें विभिन्न चरों के बीच कारणात्मक संबंधों को प्रदर्शित किया जाता है। इसमें किसी विशिष्ट चर को अन्य चरों के उत्पन्न होने के कारण या कारण के रूप में दर्शाया जाता है, जैसे- शैशवावस्था तथा बाल्यावस्था के अनुभव प्रौढ़ व्यक्तित्व के निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। यहां ऊपर बताए

गए बहुचरीय परिकल्पना के उदाहरण भी कारणात्मक परिकल्पनाएं ही हैं, जिनमें स्वतंत्र चर 'कारण' और आश्रित चर 'प्रभाव' को प्रकट करता है।

इन तीन चरों के अतिरिक्त भी कुछ अन्य प्रकार की परिकल्पनाएं महत्वपूर्ण हैं :

(1) शून्य परिकल्पना : शून्य अर्थात निष्प्रभावी एक ऐसी परिकल्पना है, जिसके द्वारा दो या दो से अधिक चरों के बीच शून्य संबंधों को दर्शाया जाता है। शून्य संबंधों से तात्पर्य किसी प्रकार के संबंध या अंतर न होने से है, जैसे X और Y के बीच कोई संबंध नहीं है, या यह कहना कि "लड़कियों और लड़कों के औसत बुद्धि में कोई अंतर नहीं है", या "एक समूह का औसत शून्य के बराबर है", या " औसतों के बीच कोई अंतर नहीं है"। वास्तव में, 'शून्य परिकल्पना' शोध परिकल्पना का उल्टा रूप होता है जो शोध परिकल्पना में प्रदर्शित चरों के बीच के संबंधों को नकारता है।

(2) शोध परिकल्पना : किसी सामाजिक तथ्य या घटना के बारे में शोधकर्ता की प्रस्थापना या समस्या को शोध परिकल्पना कहते हैं। इसमें घटना या तथ्य के विशिष्ट गुणों का उल्लेख नहीं होता है। शोधकर्ता उक्त प्रस्थापना के बारे में यह अनुभव करता है कि यह सही है और वह चाहता है कि इसे गलत सिद्ध किया जाए। सामान्यत: शोध परिकल्पनाओं की रचना किन्ही सिद्धांतों के आधार पर होती है या इन परिकल्पनाओं के आधार पर सिद्धांतों की रचना की जाती है। **दुर्खीम** के सामाजिक एकीकरण के सिद्धांत के आधार पर आत्महत्या संबंधी परिकल्पनाएं शोध परिकल्पना के अच्छे उदाहरण हैं। अन्य उदाहरण यह हो सकते हैं- मुसलमानों की अपेक्षा ईसाइयों के कम संतानें होती हैं एवं गरीब विद्यार्थियों की अपेक्षा धनी विद्यार्थी नशीले पदार्थों का सेवन अधिक करते हैं।

(3) वैकल्पिक परिकल्पना : नल अथवा शून्य परिकल्पना की अस्वीकृति के उपरांत जिस परिकल्पना को स्वीकार किया जाता है, उसे वैकल्पिक परिकल्पना कहते हैं। नल और वैकल्पिक परिकल्पनाओं का एक अत्यंत सरल उदाहरण सिक्के के उछालने का दिया जा सकता है। किसी सिक्के को कई बार उछालने के बाद यह प्रश्न उत्पन्न हो सकता है कि सिक्का ठीक भी है अथवा नहीं। इस बारे में दो संभावनाएं हैं पहला सिक्का ठीक है दूसरा सिक्का ठीक नहीं है। इन दोनों वैकल्पिक निर्णयों में से शोधकर्ता को एक निर्णय लेना है। मान लीजिए, वह इस निर्णय से प्रारंभ करता है कि सिक्का ठीक है। यह प्रारंभिक परिकल्पना जिसे परीक्षण के लिए स्वीकार किया गया है, नल परिकल्पना और दूसरी, अर्थात सिक्का ठीक नहीं है, वैकल्पिक परिकल्पना कहा जाएगा। इन दोनों परिकल्पनाओं के निम्नलिखित उदाहरण दिए जा सकते हैं :

वैकल्पिक परिकल्पना - पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियां मंदिर अधिक जाती हैं।

नल परिकल्पना - पुरुषों और स्त्रियों में मंदिर जाने की प्रवृत्ति में कोई अंतर नहीं पाया जाता है।

(4) कार्यवाहक अथवा कार्यकारी परिकल्पना : शोध विषय के बारे में प्रारंभिक अनुमान को कार्यवाहक या कार्यकारी परिकल्पना कहते हैं। इस परिकल्पना की रचना की जरूरत तब पड़ती है जब हमें शोध विषय और उसके क्षेत्र की अधूरी या बहुत कम जानकारी होती है, जिसके आधार पर एक पूर्णता निश्चित परिकल्पना बनाई जा सके। दक्षिणी और उत्तरी ध्रुवों या चांद और मंगल की खोज करने वालों ने अपनी खोज की शुरुआत इसी प्रकार की कार्यकारी परिकल्पनाओं में से की होगी। चांद या

मंगल ग्रह पर पानी और ऑक्सीजन हो सकता है, यह एक कार्यकारी परिकल्पना ही है। कार्यकारी परिकल्पना को हम मूल शोध परिकल्पना का प्रथम कदम कह सकते हैं। चुंकी इस परिकल्पना का कोई ठोस आधार नहीं होता, अतः इसे कुछ लेखकों ने एक चतुर अनुमान भी कहा है। इस प्रकार की परिकल्पना का प्रयोग एक सुनिश्चित शोध योजना बनाने के एक आधार के रूप में किया जाता है। बिना इस प्रकार की परिकल्पना के शोध अंधेरे में किसी वस्तु की खोज के समान है।

4.3.5. परिकल्पना का महत्त्व (Importance of Hypothesis):

किसी भी अध्ययन को वैज्ञानिक बनाने में परिकल्पना की भूमिका अत्यधिक महत्वपूर्ण होती है। परिकल्पना के महत्व को स्पष्ट करते हुए **जहोदा और कुक** ने लिखा है कि "परिकल्पनाओं का निर्माण तथा सत्यापन करना ही वैज्ञानिक अध्ययन का प्रमुख उद्देश्य होता है।" इसी प्रकार **गुडे और हॉट** का कथन है कि "अच्छे अनुसंधान में परिकल्पना का निर्माण करना सर्वप्रमुख चरण है।" वास्तविकता यह है कि कोई भी सामाजिक अनुसंधान परिकल्पना के अभाव में व्यवस्थित नहीं किया जा सकता। परिकल्पना एक प्रकार का प्रकाश स्तंभ है जो अध्ययनकर्ता को दिशा निर्देश देता है तथा उसे व्यर्थ की सूचनाओं के संग्रह से रोकता है। इस प्रकार विभिन्न क्षेत्रों में परिकल्पना के महत्व अथवा कार्यों को निम्नांकित रूप से समझा जा सकता है :

(1) अध्ययन की दिशा का निर्धारण :

परिकल्पना की उपयोगिता को स्पष्ट करते हुए **पी.वी. यंग** का कथन है कि "परिकल्पना से अनुसंधानकर्ता ऐसे तथ्यों को एकत्रित करने से बच जाता है जो बाद में अध्ययन विषय के लिए व्यर्थ सिद्ध होते हैं।" वास्तव में, सर्वेक्षण और अनुसंधान के लिए बहुत अधिक समय और धन की आवश्यकता होती है। परिकल्पना की सहायता से जब अध्ययन को एक उचित दिशा मिल जाती है तो अध्ययनकर्ता भी व्यर्थ के परिश्रम समय और व्यय से बच जाता है।

(2) अध्ययन क्षेत्र को सीमित करने में सहायक :

परिकल्पना द्वारा अध्ययन क्षेत्र को इस प्रकार सीमित करना संभव हो जाता है कि अनुसंधानकर्ता अपना ध्यान अध्ययन के एक विशेष पहलू अथवा कुछ विशेष तथ्यों पर ही केंद्रित कर सके। वास्तव में, प्रत्येक अध्ययन विषय के बहुत से पहलू हो सकते हैं। यदि अध्ययनकर्ता सभी पहलुओं को एक साथ लेकर अध्ययन करना प्रारंभ कर दे तो किसी भी पहलू की गहराई में जाकर तथ्यों के एकत्रित नहीं किया जा सकता। अध्ययन की वैज्ञानिकता के लिए अध्ययन क्षेत्र का सीमित होना आवश्यक है जो परिकल्पना की सहायता से ही संभव हो सकता है। **लुंडबर्ग** के शब्दों में, "परिकल्पना के प्रयोग से अध्ययन क्षेत्र सीमित हो जाता है और अध्ययनकर्ता गहराई में जाकर विषय का अध्ययन करने में सफल हो सकता है।"

(3) उपयोगी तथ्यों के संकलन में सहायक :

किसी भी सामाजिक घटना अथवा समस्या का अध्ययन करते समय अध्ययनकर्ता के सामने अनेक प्रकार के तथ्य आते हैं। कभी-कभी उन तथ्यों की उपयोगिता अथवा अनुपयोगिता को न समझ

पाने के कारण अध्ययनकर्ता उपयोगी तथ्यों को छोड़ व्यर्थ के तथ्यों के संकलन में लग जाता है। इसके फलस्वरूप, संपूर्ण अध्ययन अव्यवस्थित और अवैज्ञानिक बन जाता है। इस स्थिति में "परिकल्पना की सहायता से यह निश्चित करना आसान हो जाता है कि किन तथ्यों को एकत्रित किया जाए और किन्हें सरलता से छोड़ा जा सकता है।" इसका तात्पर्य यह है कि परिकल्पना ही वह महत्वपूर्ण आधार है जो अध्ययनकर्ता पर नियंत्रण बनाए रखकर अध्ययन को वैज्ञानिक बनाने में सहायता देता है।

(4) तथ्यों को व्यवस्थित करने में सहायक :

तथ्यों के एकत्रण मात्र से शोध पूरी नहीं हो जाती, जब तक उन्हें शोध के किसी परिकल्पना सांचे में नहीं जमाया जाता तब तक यह कार्य बखूबी नहीं करती है। परिकल्पना विभिन्न प्रकार के तथ्यों के बीच संबंध स्थापित कर उन्हें एक आकार या रूप प्रदान करती है।

(5) पुनरावृत्ति की संभावना :

प्राकृतिक अनुसंधानों की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि बार-बार अनुसंधान करने के पश्चात भी निष्कर्ष में समरूपता बनी रहती है। जबकि सामाजिक अनुसंधान में उसी समाज में दोबारा जांच संभव नहीं हो पाती है। अतः पुनरावृति की संभावना परिकल्पना के निर्माण से पूरी हो सकती है।

(6) तर्कसंगत निष्कर्षों में सहायक :

आरंभ में ही यह स्पष्ट किया जा चुका है की परिकल्पना वह मान्यता है जिसके द्वारा अनुसंधान कार्य आरंभ करने से पहले ही एक कामचलाऊ निष्कर्ष प्रस्तुत कर दिया जाता है। यह निष्कर्ष सत्य है अथवा असत्य, इसका परीक्षण बाद में एकत्रित तथ्यों के आधार पर किया जाता है। तथ्यों के आधार पर यदि परिकल्पना से संबंधित निष्कर्ष सही प्रमाणित होता है जो उसे एक सामान्य नियम के रूप में स्वीकार कर लिया जाता है। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि यदि परिकल्पना का सावधानी से निर्माण किया जाए तो यह उपयुक्त और तर्कसंगत निष्कर्ष निकालने में अत्यधिक सहायक होती है।

(7) सिद्धांतों के निर्माण में योगदान :

सामाजिक अनुसंधान का अंतिम उद्देश्य सिद्धांतों का निर्माण करना होता है। इस कार्य में परिकल्पना की भूमिका सबसे अधिक महत्वपूर्ण प्रमाणित हुई है। जैसा कि स्पष्ट किया जा चुका है, परिकल्पना का निर्माण साधारणतया किसी पूर्व स्थापित सिद्धांत के आधार पर होता है। एक अनुसंधानकर्ता जब नई परिस्थितियों के संदर्भ में किसी पुराने सिद्धांत की सार्थकता को देखने का प्रयत्न करता है तो परिकल्पना उसके इस कार्य को बहुत सरल बना देती है। परिकल्पना की सहायता से जो सामान्य निष्कर्ष प्रस्तुत किए जाते हैं, वे नए सिद्धांतों का निर्माण करने में भी अत्यधिक सहायक होते हैं।

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि किसी भी अनुसंधान परिकल्पना का महत्व केंद्रीय है। यही कारण है कि सामाजिक घटनाओं से संबंधित कोई भी अनुसंधान कार्य ऐसा नहीं होता जिसमें किसी न किसी परिकल्पना को आधार मानकर तथ्यों को एकत्रित ना किया जाए।

4.3.6. परिकल्पना की सीमाएं (Limitations of Hypothesis):

परिकल्पना की अवधारणा अस्तित्व में आने के बाद से लेकर अब तक इससे लाभ प्राप्त होते रहे हैं। वहीं दूसरी ओर इसकी सीमाओं का अतिक्रमण करने से कई तरह की हानियां भी हो जाती हैं। अतएव एक सजग शोधकर्ता को सदैव इसकी सीमाओं का ध्यान रखना चाहिए। यदि शोधकर्ता इसकी सीमाओं के प्रति जागरूक नहीं रहेंगे तो अध्ययनकर्ता इसके दोषों एवं कमियों से सतर्क नहीं रह पाएगा। परिकल्पना का सृजन इसलिए किया जाता है जिससे कि अध्ययन कार्य के बीच यह पता रहे कि क्या करना है और क्या नहीं करना है। किन तथ्यों को संचित करना है तथा किन को छोड़ना है, इसका भी पता रहे। परंतु कभी-कभी अध्ययनकर्ता ऐसा करने में असमर्थ रहते हैं। इन्हीं बातों को ध्यान में रखते हुए विद्वानों ने परिकल्पनाओं की सीमाओं की विवेचना की है जो निम्नलिखित है :

(1) सामाजिक घटनाएं जटिल तथा परिवर्तनशील :

सामाजिक अनुसंधान में जितनी भी परिकल्पनाओं का सृजन किया जाता है वे सामाजिक घटनाओं से जुड़ी होती हैं। सामाजिक घटनाएं परिवर्तनशील तथा जटिल होती हैं। जब परिकल्पना का सृजन किया जाता है उस वक्त सामाजिक घटनाओं की प्रकृति कुछ और रहती है। तथ्य संकलन करने तथा निष्कर्ष निकालते वक्त तक इसकी प्रकृति कुछ और हो जाती है। कहने का अभिप्राय यह है कि सामाजिक घटनाओं की प्रकृति परिवर्तनशील होने के कारण इसमें बदलाव आ जाता है। इस तरह बनाई गई परिकल्पना के आधार पर किया गया अध्ययन दोषपूर्ण हो जाता है। इस तरह यह अध्ययन उपयोगी तथा व्यवहारिक नहीं रह पाते हैं। सामाजिक विज्ञानों की अपेक्षा प्राकृतिक विज्ञानों में परिकल्पना अधिक उपयोगी रहती है। उपरोक्त वर्णन से यह ज्ञात होता है कि अनुसंधान कार्य के लिए परिकल्पना का काफी महत्व है। छोटी सी असावधानी होने पर भी यह काफी नुकसानदायक साबित होती है। यह असावधानी कई कारणों की सामूहिक उपज होती है। **पी.वी. यंग** मत है कि अध्ययनकर्ता को साबित करने की तरफ ध्यान नहीं देना चाहिए। उसे तो परिस्थितियों को सीखने तथा समझने की ओर ध्यान देना चाहिए। परिकल्पना के प्रति अनुसंधानकर्ता को निष्पक्ष रहना चाहिए। परिकल्पना सामाजिक शोध में महत्वपूर्ण होने के साथ-साथ दोषपूर्ण भी है। परिकल्पना की उपयोगिता इस बात पर निर्भर करती है कि इसका प्रयोग करने वाला कितना वस्तुनिष्ठ तथा अनुभवी है। साथ ही यदि तटस्थ रूप से वास्तविक तथ्यों के आधार पर उस परिकल्पना की प्रामाणिकता की परीक्षा नहीं की जाती है तो ऐसी परिकल्पना से विज्ञान के किसी हित के होने की संभावना नहीं के बराबर रहती है। संभवत: इसलिए **वेस्टावे** ने चेतावनी देते हुए कहा है कि "परिकल्पनाएं वे लोरियां हैं जो असावधान को गाना गाकर सुला देती हैं।" इसलिए सजग होकर वास्तविक तथ्यों को कई रूप में देख कर परिकल्पना की परीक्षा करनी चाहिए। अतः परिकल्पना का सृजन भी ध्यानपूर्वक किया जाना चाहिए एवं उसका प्रयोग भी ध्यान पूर्वक किया जाना चाहिए जिससे इसकी सीमाओं अथवा दोष से बचा जा सके।

(2) परिकल्पना के अनुसार तथ्य संकलन :

इसकी एक प्रमुख सीमा अथवा दोष परिकल्पना के अनुरूप तथ्य संकलन करना कहा जा सकता है। अध्ययनकर्ता परिकल्पना के अनुरूप तथ्य संकलित करता है। परंतु वास्तव में ऐसा नहीं होना चाहिए। अध्ययन क्षेत्र में अध्ययन करते वक्त जो वास्तविक तथ्य सामने आते हैं उनके परस्पर गुण संबंधों के आधार पर, परिकल्पना में परिवर्तन कर लेना चाहिए। यदि ऐसा नहीं किया जाता है तो अध्ययन के अंत में अप्रमाणित निष्कर्ष, असत्य तथा भ्रमपूर्ण निकलते हैं। इस संदर्भ में **फ्राई** ने अपने विचार प्रकट करते हुए लिखा है, "केवल विशिष्ट सवालों के संदर्भ में ही तथ्यों का संचय नहीं करना चाहिए बल्कि एक संस्था अथवा स्थिति की खोज में प्रश्नों को हमेशा सुझाव के रूप में समझना चाहिए। अध्ययनकर्ता परिकल्पना को ही सब कुछ मान लेता है एवं इससे फायदे के स्थान पर हानियां ज्यादा हो जाती हैं।" इस तरह यह ज्ञात होता है कि परिकल्पना के अनुसार तथ्य संचय करना इसकी एक सीमा अथवा दोष है।

(3) परिकल्पना को अंतिम मार्गदर्शक मानना :

परिकल्पना का एक मुख्य दोष यह है कि शोधकर्ता परिकल्पना को अंतिम मार्गदर्शक मान बैठता है। सही मायने में यह होना चाहिए कि अनुसंधानकर्ता परिकल्पना का अंधानुकरण न करें। वह परिकल्पना के अनुरूप ही अध्ययन क्षेत्र में तथ्यों को संचय करता है। अपने मस्तिष्क का वह बिल्कुल प्रयोग नहीं करता है। इससे अध्ययन वैज्ञानिक तथा सही नहीं हो पाते है। उसके द्वारा संचित ज्ञान का उपयोग वह पक्षपातपूर्ण रूप से करता है। परिकल्पना अध्ययनकर्ता को गुमराह भी कर सकते हैं इसलिए इसको अंतिम मार्गदर्शक नहीं मानना चाहिए। इस तरह मालूम होता है कि परिकल्पना को अंतिम मार्गदर्शक मानना इसकी एक सीमा या दोष है।

(4) अध्ययन में पक्षपात :

परिकल्पना की अन्य सीमा अथवा दोष अध्ययन में पक्षपात का होना कहा जा सकता है। क्योंकि अध्ययनकर्ता का अपने परिकल्पना में अटूट भरोसा होता है इसलिए अध्ययन में अनेक तरह के पक्षपातों का प्रवेश हो जाता है। परिकल्पना का सृजन करते वक्त शोधकर्ता की पसंद, संवेगों तथा संस्कृतियों आदि का प्रभाव उस पर पड़ता है। वह एक विशेष रूचि के विषय का चयन कर लेता है। यही से अध्ययन में पक्षपात होना आरंभ हो जाता है। शोधकर्ता अपने आरंभिक धारणा के अनुसार तथ्यों का एकत्रण, वर्गीकरण, सारणीयन तथा निष्कर्ष आदि निकालने का प्रयत्न करता है। इस तरह परिकल्पना संपूर्ण अध्ययन को अध्ययनकर्ता की आत्मनिष्ठा के प्रभाव के कारण अवैज्ञानिक बना देती है। वह परिकल्पना के पक्ष में अध्ययन करता चला जाता है। इससे अध्ययन पक्षपातपूर्ण तथा गलत हो जाता है। **पी.वी. यंग** के विचारों में, "एक शोधकर्ता को अपनी परिकल्पना की प्रमाणिकता साबित करने के लक्ष्य से अध्ययन शुरू नहीं करना चाहिए।" शोधकर्ता को परिकल्पना को प्रतिष्ठा का बिंदु नहीं बनाकर एक मार्गदर्शक के रूप में लेकर चलना चाहिए। ऐसा करने से अध्ययन में पक्षपात की संभावना कम हो जाती है। इस तरह यह मालूम होता है कि अध्ययन में पक्षपात का होना परिकल्पना की एक सीमा अथवा दोषपूर्ण है।

(5) अनुसंधानकर्ता की असावधानियां :

परिकल्पना सही मायने में दोषपूर्ण नहीं होती अपितु इसके प्रति शोधकर्ता तथा अविश्वास की और असावधानियां इसमें दोष पैदा कर देती हैं। इसका कारण यह है कि शोधकर्ता परिकल्पना का सृजन करते वक्त स्वयं को पूर्वाग्रहों, भावनाओं तथा इच्छाओं पर नियंत्रण नहीं रख पाता है। इससे परिकल्पना में पक्षपात आ जाता है। अनुसंधानकर्ता परिकल्पना में तथ्यों का कारण प्रभाव संबंध पक्षपातपूर्ण रूप में प्रस्तुत करता है। इसका परिणाम यह होता है कि आखरी परिणाम दोषपूर्ण निकलते हैं। साथ ही शोधकर्ता तथ्यों को तोड़ मरोड़ कर प्रस्तुत करता है जिससे अध्ययन में भी दोष आ जाता है। इस तरह यह ज्ञात होता है कि अनुसंधानकर्ता का परिकल्पना सृजन में असावधानी तथा अपने दोषपूर्ण परिकल्पना में गहरे विश्वास के कारण संपूर्ण अध्ययन दोषपूर्ण हो जाता है। अतः अनुसंधानकर्ता की सावधानियां परिकल्पना की एक सीमा या दोष कहीं जा सकती हैं।

कार्यकारी परिकल्पना के उपर्युक्त संपूर्ण विवेचन से स्पष्ट होता है कि सामाजिक अनुसंधान में परिकल्पना के महत्व को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। यह सच है कि एक दोषपूर्ण परिकल्पना संपूर्ण अध्ययन को अवैज्ञानिक बना सकती है लेकिन इसका तात्पर्य यह नहीं है कि सामाजिक अनुसंधान में परिकल्पना के निर्माण से ही बचने का प्रयत्न किया जाना चाहिए। परिकल्पना की सीमाएं केवल इस तथ्य को स्पष्ट करती है कि परिकल्पना का निर्माण अत्यधिक सावधानी पूर्वक किया जाना चाहिए। वास्तविकता तो यह है कि सामाजिक अनुसंधान में परिकल्पना वह महत्वपूर्ण आधार है जो अध्ययनकर्ता पर नियंत्रण रखकर उसे अध्ययन की सही दिशा दे सकता है।

4.3.7. सारांश (Summary)

किसी भी अध्ययन को जो सामान्य अनुमान चारों ओर से प्रभावित किए रहता है, उसी को हम परिकल्पना कहतें हैं। वास्तविकता यह है कि शोधकर्ता कोई भी अनुसंधान कार्य आरम्भ करने से पहले ही विषय के विभिन्न पक्षों से संबंधित कुछ सामान्य अनुमान अवश्य लगा लेता है, ऐसे सामान्य अनुमान का उद्देश्य आगामी अध्ययन के लिए एक निश्चित दिशा का निर्धारण करना है जिससे शोधकर्ता इधर-उधर न भटककर एक सुनिश्चित आधार पर तथ्यों को एकत्रित कर सके। परिकल्पना की विशेषताओं में स्पष्टता, विशिष्टता, अनुभवसिद्धता, उपलब्ध प्रविधियों से संबंध एवं सिद्धांतों से संबंध होता है। सामाजिक विज्ञानों में कई प्रकार की परिकल्पनाओं का प्रयोग किया जाता है। सामाजिक घटनाओं में तथ्यों एवं समस्याओं की प्रकृति अति जटिल होती है, इसलिए वैज्ञानिक शोध में अनेक प्रकार की परिकल्पनाएं प्रयोग में लाई जाती हैं। किसी भी अध्ययन को वैज्ञानिक बनाने में परिकल्पना की भूमिका अत्यधिक महत्वपूर्ण होती है। परिकल्पना के महत्व को स्पष्ट करते हुए **जहोदा और कुक** ने लिखा है कि "परिकल्पनाओं का निर्माण तथा सत्यापन करना ही वैज्ञानिक अध्ययन का प्रमुख उद्देश्य होता है।" परिकल्पना की सीमाएं केवल इस तथ्य को स्पष्ट करती है कि परिकल्पना का निर्माण अत्यधिक सावधानी पूर्वक किया जाना चाहिए। वास्तविकता तो यह है कि सामाजिक अनुसंधान में परिकल्पना वह महत्वपूर्ण आधार है जो अध्ययनकर्ता पर नियंत्रण रख कर उसे अध्ययन की सही दिशा दे सकता है।

4.3.8. बोध प्रश्न (Perception Questions)

प्रश्न 1 : परिकल्पना को परिभाषित करते हुए इसकी विशेषताओं को बताइए।

प्रश्न 2 : परिकल्पना के कौन-कौन से स्त्रोत है स्पष्ट करिए ?

प्रश्न 3 : परिकल्पना के प्रकारों की विवेचना कीजिए।

प्रश्न 4 : परिकल्पना का शोधकार्य में क्या महत्त्व है बताइए ?

प्रश्न 5 : परिकल्पना की कौन सी सीमाएं या दोष है स्पष्ट करिए ?

4.3.9. सन्दर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ (References and Useful Texts)

- आहूजा, राम. (2015). *सामाजिक अनुसंधान*. जयपुर : रावत पब्लिकेशन.
- गोस्वामी, एस. (2012). *सामाजिक सर्वेक्षण एवं अनुसंधान*. नई दिल्ली : रावत प्रकाशन.
- पाण्डेय, गणेश., एवं पाण्डेय, अरुणा. (2009). *शोध प्रविधि*. नई दिल्ली : राधा पब्लिकेशन.
- मुकर्जी, आर.एन. (2016). *सामाजिक शोध व सांखियकी*. दिल्ली : विवेक प्रकाशन.
- यादव, आर.जी. (2014). *सामाजिक अनुसन्धान पद्धतियां*. नई दिल्ली : ओरिएंट ब्लैकस्वान.
- रावत, हरिकृष्ण. (2015). *सामाजिक शोध की विधियां*. जयपुर : रावत पब्लिकेशन.

इकाई-4 : निदर्शन/ प्रतिचयन
Sampling

इकाई की रूपरेखा

4.4.0. उद्देश्य
4.4.1. प्रस्तावना
4.4.2. निदर्शन की परिभाषा एवं विशेषताएँ
4.4.3. निदर्शन के प्रकार
4.4.4. निदर्शन के लाभ एवं सीमाएं
4.4.5. सारांश
4.4.6. बोध प्रश्न
4.4.7. संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

4.4.0. उद्देश्य (Purpose)

इस इकाई के अध्ययन पश्चात् आप-

- यह जान पाएँगे कि निदर्शन अथवा प्रतिचयन क्या होता है।
- सामाजिक शोध के चरण में निदर्शन का क्या महत्त्व है।
- समग्र की अपेक्षा प्रतिचयन क्यों आवश्यक है और यह शोध को कैसे लाभ देता है।
- निदर्शन की बेहतर समझ बना लेना भावी सामाजिक शोध में दिशानिर्देश के रूप में सहायक साबित होगा, जो जानकारी से अवगत कराएगा।

4.4.1. प्रस्तावना (Introduction)

जब हम किसी विषय पर सामाजिक शोध आरंभ करते हैं तो हमारी एक मुख्य समस्या अध्ययन से संबंधित इकाइयों का चयन करना होता है। अध्ययन विषय की प्रकृति चाहे सीमित हो अथवा व्यापक, प्रत्येक अध्ययन से संबंधित सामाजिक इकाइयों की संख्या इतनी अधिक होती है कि उन सभी का अध्ययन कर पाना साधारणतया संभव नहीं हो पाता। उदाहरण के लिए, यदि हम किसी विशेष राज्य, नगर अथवा क्षेत्र में सेवारत महिलाओं अथवा किसी विशेष व्यावसायिक समूह की समस्याओं का अध्ययन करना चाहते हैं तो ऐसी महिलाओं अथवा उत्तरदाताओं की संख्या इतनी अधिक हो सकती है कि उन सभी से संपर्क स्थापित करके विषय से संबंधित सभी तथ्यों का संग्रह करना बहुत कठिन हो जाएगा। स्वाभाविक है कि सभी महिलाओं अथवा एक व्यवसाय में लगे हुए लोगों में से कुछ ऐसी महिलाओं या व्यवसायियों का चयन करना जरूरी होगा जो अपने समूह का वास्तविक प्रतिनिधित्व करते हों। इस प्रकार

अध्ययन के संपूर्ण क्षेत्र (जिसे हम 'समग्र' कहते हैं) में से जब हम कुछ प्रतिनिधि इकाइयों का किसी वैज्ञानिक विधि से चयन करते हैं, तब चयन की इसी प्रणाली को निदर्शन, प्रतिचयन अथवा प्रतिदर्श कहा जाता है। कभी-कभी अध्ययन विषय की प्रकृति इस तरह की होती है कि केवल कुछ इकाइयों के आधार पर ही अध्ययन विषय की वास्तविक प्रकृति को समझना संभव नहीं होता। ऐसी दशा में अध्ययन के समग्र से संबंधित सभी इकाइयों अथवा दूसरे शब्दों में सभी स्त्री-पुरुषों से सूचनाएं एकत्र करना आवश्यक होता है। इस दूसरी प्रणाली को ही संक्षेप में जनगणना कहा जाता है।

यह सच है कि वर्तमान युग में सामाजिक शोध के क्षेत्र में निदर्शन को कहीं अधिक उपयोगी माना जाता है लेकिन निदर्शन की वास्तविक प्रकृति को समझने से पहले जनगणना को समझना आवश्यक है। जब समग्र इकाइयों का अध्ययन कर अध्ययन से संबंधित आवश्यक जानकारी प्राप्त होती है, तो इसे जनगणना विधि कहते हैं। भारत में जनगणना के लिए इसी विधि का प्रयोग किया जाता है। इसी प्रकार, यदि किसी शिक्षण संस्थान में पढ़ रहे विद्यार्थियों को शुल्क मुक्ति या छात्रवृत्ति देने हेतु उनकी आर्थिक स्थिति की जानकारी प्राप्त करनी है तो शिक्षण संस्थान में पढ़ रहे सभी विद्यार्थियों के बारे में जानकारी एकत्र करके ही पता लगाया जा सकता है। इस विधि से क्षेत्र का गहन अध्ययन किया जाता है। इस विधि से उच्च स्तर की शुद्धता और विश्वसनीयता प्राप्त की जा सकती है। **जहोदा, कुक** और **सेलिटज** लिखते हैं कि, "जनगणना में समग्र की हर इकाई का अध्ययन किया जाता है या प्रत्येक इकाई से संबंधित विभिन्न विशेषताओं का निर्धारण किया जाता है।" इसी संबंध में **जॉन मेज** ने लिखा है, "जनगणना तथ्य संकलन की एक विशेष विधि है जिसके द्वारा वांछित सूचनाएं समग्र से संबंधित सभी इकाइयों से प्राप्त करके निष्कर्ष प्रस्तुत किए जाते हैं तथा सांख्यिकीय आधार पर उनकी एक-दूसरे से तुलना की जाती है।" इस आधार पर सामान्य शब्दों में कहा जा सकता है कि जनगणना वह विधि है जिसके द्वारा शोधकर्ता अध्ययन विषय से संबंधित सभी इकाइयों से कुछ विशेष सूचनाएं एकत्रित करके निष्कर्ष प्रस्तुत करता है।

4.4.2. निदर्शन की परिभाषा एवं विशेषताएँ (Definition and Characteristics of Sampling)

निदर्शन केवल वैज्ञानिक अनुसंधान की विशेषता नहीं है बल्कि हमारे संपूर्ण जीवन में यह सदैव क्रियाशील रहने वाली एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। मानव का यह स्वभाव है कि वह जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में कुछ घटनाओं को देख कर एक सामान्य निष्कर्ष निकालने का प्रयत्न करता है। पकाए गए चावलों के कुछ दानों को देख कर ही यह ज्ञात कर लिया जाता है कि बर्तन में भरे हुए सभी चावल पक चुके हैं अथवा नहीं। इसी प्रकार किसी समूह के बारे में एक विशेष धारणा बनाने अथवा व्यक्तियों की विशेषताओं को समझने के लिए हम कुछ व्यक्तियों से मिलकर ही संपूर्ण समूह की विशेषताओं को समझने का प्रयत्न करते हैं। इसके बाद भी अध्ययन की एक प्रविधि के रूप में निदर्शन की प्रकृति दिन-प्रतिदिन के जीवन के प्रतिचयन से कुछ भिन्न है। सांख्यिकी रूप से निदर्शन एक ऐसा प्रयास है जिसके अंतर्गत हम कुछ स्वीकृत और पूर्व निर्धारित प्रणालियों की सहायता से संपूर्ण समग्र में से कुछ प्रतिनिधि इकाइयों का चयन करते हैं। सामाजिक घटनाओं के अध्ययन में निदर्शन पद्धति के व्यवस्थित प्रयोग का

इतिहास अधिक पुराना नहीं है। बीसवीं शताब्दी के आरंभ में सर्वप्रथम **बॉउले (A. L. Bowley)** ने इस पद्धति का प्रयोग करके सामाजिक तथ्यों के अध्ययन को एक नई दिशा प्रदान करने का प्रयत्न किया। **बॉउले** ने विभिन्न समूहों में से एक-एक परिवार का चयन करके उनके अध्ययन के आधार पर जो निष्कर्ष प्रस्तुत किए वे बहुत बड़ी सीमा तक उस स्थान की संपूर्ण जनसंख्या की विशेषताओं का प्रतिनिधित्व कर रहे थे। बाद में **चार्ल्स बूथ** एवं **राउंट्री** ने उस समुदाय का व्यापक स्तर पर अध्ययन करके जो निष्कर्ष प्रस्तुत किए, वे बॉउले के निष्कर्षों से बहुत मिलते जुलते थे। इस आधार पर **बॉउले** द्वारा अपनाई गई निदर्शन की प्रणाली से यह स्पष्ट हो गया कि निदर्शन के द्वारा न केवल बहुत अधिक समय और धन की बचत की जा सकती है बल्कि इसके द्वारा प्राप्त निष्कर्षों में विश्वसनीयता और उपयोगिता में भी कोई कमी नहीं होती। इस पृष्ठभूमि में आज निदर्शन पद्धति को सामाजिक घटनाओं के अध्ययन में एक अत्यधिक महत्वपूर्ण और उपयोगी विधि के रूप में देखा जाने लगा है।

सामान्य रूप से यह समझा जाता है कि निदर्शन का तात्पर्य समस्त इकाइयों में से कुछ इकाइयों का चयन करना है। ऐसी धारणा बहुत सामान्यीकृत और अपूर्ण है। वास्तव में, निदर्शन एक ऐसी पद्धति है जिसके द्वारा हम समस्त इकाइयों में से कुछ इकाइयों का चयन अनेक स्वीकृत कार्यविधियों की सहायता से इस प्रकार करते हैं जिससे चुनी गई इकाइयां संपूर्ण समग्र की विशेषताओं का प्रतिनिधित्व कर सकें। इसका तात्पर्य यह है कि हम संपूर्ण समग्र को कितने भागों में विभाजित करेंगे, प्रत्येक भाग में से कितने इकाइयों का चयन करेंगे तथा चयन का यह कार्य किस प्रणाली के द्वारा किया जाएगा। सब कुछ अध्ययनकर्ता की इच्छा पर आधारित नहीं होता बल्कि प्रत्येक स्तर पर किए जाने वाले कार्य के संबंध में कुछ निश्चित और पूर्व निर्धारित नियम होते हैं। इस दृष्टिकोण को लेकर विभिन्न विद्वानों ने निदर्शन को अनेक प्रकार से **परिभाषित** किया है :

गुडे तथा हॉट ने निदर्शन की अत्यधिक संक्षिप्त परिभाषा देते हुए कहा है, "निदर्शन किसी विशाल समग्र का एक छोटा प्रतिनिधि है।" इस परिभाषा से स्पष्ट होता है कि निदर्शन का तात्पर्य एक बड़े क्षेत्र में से कुछ इकाइयों का चयन कर लेना ही नहीं होता बल्कि इसका तात्पर्य इकाइयों का इस प्रकार चयन करना होता है जो संपूर्ण अध्ययन के क्षेत्र की विशेषताओं का वास्तविक प्रतिनिधित्व करती हों।

बोगार्डस के अनुसार, "निदर्शन किसी पूर्व निर्धारित योजना के अनुसार इकाइयों के एक समूह में से एक निश्चित प्रतिशत का चयन करना है।"

सिन पाओ येंग के शब्दों में, "एक सांख्यिकीय निदर्शन संपूर्ण समूह का प्रतिनिधि अंश है।" इस परिभाषा में येंग ने निदर्शन को सांख्यिकीय निदर्शन शब्द द्वारा इसलिए स्पष्ट किया है जिससे इसका प्रयोग करते समय प्रत्येक समय यह ध्यान रखा जा सके कि निदर्शन अनेक सांख्यिकीय कार्य प्रणालियों पर आधारित है।

पी.वी. यंग का कथन है कि "एक सांख्यिकीय निदर्शन उस संपूर्ण समूह अथवा योग का एक लघु चित्र अथवा प्रतिनिधि अंश है जिसमें से वह निदर्शन लिया गया है।" इस कथन से भी स्पष्ट होता है कि निदर्शन द्वारा प्राप्त इकाइयां तब तक अपने से संबंधित संपूर्ण समूह का वास्तविक प्रतिनिधित्व नहीं करती, जब तक इन चुनी गई इकाइयों को एक सांख्यिकीय निदर्शन के रूप में मान्यता नहीं दी जा सकती।

निदर्शन की प्रकृति को समझते समय एक प्रमुख जिज्ञासा यह उत्पन्न होती है कि संपूर्ण जनसंख्या अथवा समूह में से कुछ इकाइयों का चयन करके ही उन्हें संपूर्ण समग्र का प्रतिनिधि किस प्रकार माना जा सकता है? वास्तव में, इस समस्या का समाधान निदर्शन से संबंधित आधारभूत मान्यताओं की सहायता से किया जा सकता है। निदर्शन की सर्वप्रमुख मान्यता यह है कि समान विशेषताएं प्रदर्शित करने वाली इकाइयों में से यदि किसी एक इकाई का चयन करके उसका समुचित अध्ययन कर लिया जाए तो ऐसा अध्ययन अपने वर्ग की सभी इकाइयों की विशेषताओं को स्पष्ट करेगा। यही कारण है कि एक व्यावहारिक निदर्शन को प्राप्त करने के लिए केवल सभी इकाइयों में से कुछ इकाइयों का ही चयन नहीं करते बल्कि सबसे पहले संपूर्ण समग्र को कुछ वर्गों में इस प्रकार विभाजित कर लेते हैं जिससे एक-एक वर्ग में समान विशेषताओं वाली इकाइयों को रखा जा सके।

निदर्शन की दूसरी मान्यता यह है कि सामाजिक घटनाओं की परिवर्तनशीलता के कारण संपूर्ण समग्र के अध्ययन में इतना अधिक समय लग सकता है कि उससे संबंधित निष्कर्ष प्रस्तुत करने के समय तक समग्र की विशेषताएं बदल चुकी हो। इसका तात्पर्य है कि सामाजिक घटनाओं से संबंधित अध्ययन कम समय में ही पूरे किए जाने चाहिए। यह कार्य केवल निदर्शन पद्धति के द्वारा ही संभव है। निदर्शन की तीसरी मान्यता यह है कि सजातीय इकाइयों में से प्रत्येक इकाई दूसरी की विशेषताओं का प्रतिनिधित्व करती है। **लुण्डबर्ग** ने लिखा है कि "यदि तथ्यों में अत्यधिक सजातीयता हो अर्थात समस्त तथ्यों की विभिन्न इकाइयों में अंतर बहुत कम हो तो संपूर्ण में से एक या कुछ इकाइयां समस्त इकाइयों का प्रतिनिधित्व करेंगी।" इन मान्यताओं के आधार पर स्पष्ट होता है कि निदर्शन एक वैज्ञानिक विधि हैं तथा निदर्शन के आधार पर प्राप्त निष्कर्ष प्रामाणिक और सही हो सकते हैं जितने की समस्त इकाइयों के अध्यन पर आधारित निष्कर्ष सही होते हैं।

एक उत्तम निदर्शन की आवश्यक विशेषताएं :

निदर्शन तभी उपयोगी होता है जबकि उसका चुनाव बहुत सावधानीपूर्वक किया जाए। **पी.वी. यंग** ने लिखा है कि "निदर्शन का आकार ही उसके प्रतिनिधि होने की गारंटी नहीं होती। समुचित रूप से चुना गया अपेक्षाकृत छोटे आकार का निदर्शन दोषपूर्ण रूप से चुने गए बड़े आकार के निदर्शन से अधिक विश्वसनीय होता है।" इसका तात्पर्य यह है कि निदर्शन चाहे छोटा हो अथवा बड़ा, इसमें कुछ विशेषताओं का होना आवश्यक है जो वैयक्तिक पक्षपात की संभावना को कम कर सकें। इन **विशेषताओं** अथवा आवश्यकताओं को निम्नांकित रूप से समझा जा सकता है :

(1) समग्र का प्रतिनिधि :

किसी भी श्रेष्ठ निदर्शन की सबसे बड़ी आवश्यकता यह है कि निदर्शन अध्ययन से संबंधित समस्त इकाइयों अथवा समग्र का उचित प्रतिनिधित्व करता हो। इसका तात्पर्य यह है कि निदर्शन का चुनाव इस प्रकार किया जाना चाहिए जिसमें अध्ययन विषय से संबंधित सभी वर्गों और समूहों की विशेषताओं को स्पष्ट करने वाली इकाइयों का समावेश हो। सामाजिक अध्ययनों से संबंधित प्रत्येक समूह के अंदर व्यक्तियों के रहन-सहन, संस्कृति, विचारों, मनोवृत्तियों तथा व्यवहारों में इतनी भिन्नताएं

होती है कि यदि एक-दूसरे से भिन्न विशेषताएं प्रदर्शित करने वाले सभी वर्गों का निदर्शन में प्रतिनिधित्व न हो तो अध्ययन अव्यावहारिक बन सकता है। **लुण्डबर्ग** ने लिखा है कि कोई निदर्शन प्रतिनिधि तभी हो सकता है, जबकि अध्ययन से संबंधित इकाइयों में एकरूपता हो तथा निदर्शन की प्रणाली तटस्थ रूप से उपयोग में लाई गई हो।

(2) समुचित आकार :

निदर्शन का यद्यपि एक विशेष आकार ही इसके प्रतिनिधित्वपूर्ण होने की गारंटी नहीं होता लेकिन तो भी निदर्शन के एक समुचित आकार का निर्धारण करना अध्ययन की सफलता के लिए आवश्यक समझा जाता है। निदर्शन यदि बहुत छोटे आकार का होता है तो इसके द्वारा प्राप्त तथ्य संपूर्ण समग्र का प्रतिनिधित्व नहीं कर पाते। दूसरी ओर, यदि निदर्शन बहुत अधिक बड़ा होता है तो उससे संबंधित सभी इकाइयों का गहन और सूक्ष्म अध्ययन करना कठिन हो जाता है। इस स्थिति में एक सामान्य नियम के रूप में केवल यह ध्यान रखना आवश्यक है कि निदर्शन के अंतर्गत आने वाली इकाइयां समग्र की प्रकृति और आकार के अनुरूप होनी चाहिए। निदर्शन इतना बड़ा अवश्य हो कि उससे संबंधित इकाइयां समग्र के प्रत्येक वर्ग की विशेषताओं का प्रतिनिधित्व कर सकें। **पी.वी. यंग** के अनुसार, "एक उपयुक्त निदर्शन वह है जिसमें विश्वसनीय निष्कर्षों को प्रस्तुत करने के लिए पर्याप्त इकाइयों का समावेश होता है।"

(3) अध्ययन विषय के अनुरूप :

निदर्शन का अध्ययन विषय के अनुरूप होना बहुत अधिक आवश्यक है। निदर्शन में यदि ऐसी इकाइयों का समावेश हो जाता है जिनका अध्ययन विषय से कोई प्रत्यक्ष संबंध नहीं होता तो प्राप्त निष्कर्ष कभी भी वैज्ञानिक नहीं हो सकते। इसका तात्पर्य है कि यदि अध्ययनकर्ता का उद्देश्य बाल अपराध के कारणों को जानना अथवा सेवारत महिलाओं की समस्याओं का अध्ययन करना है तो निदर्शन के अंतर्गत केवल बाल अपराधियों अथवा सेवारत महिलाओं का ही समावेश होना आवश्यक है।

(4) वैयक्तिक पक्षपात से स्वतंत्र :

एक श्रेष्ठ निदर्शन के लिए यह भी आवश्यक है कि किसी भी इकाई का चुनाव व्यक्तिगत इच्छा अथवा पसंद के आधार पर किया जाए। निदर्शन के अंतर्गत समग्र से संबंधित प्रत्येक इकाई को चुने जाने की पूरी स्वतंत्रता होना आवश्यक है। निदर्शन के अंतर्गत इकाइयों के वस्तुनिष्ठ रूप से चुने जाने के लिए अनेक प्रविधियों तथा प्रणालियों को विकसित किया जा चुका है। अध्ययनकर्ता के लिए यह आवश्यक है कि वह इन्हीं में से किसी विशेष प्रविधि की सहायता से निदर्शन का चुनाव करें।

(5) सजातीयता :

सजातीयता का अर्थ है कि निदर्शन के अंतर्गत चुनी गयी इकाइयों में बहुत अधिक विरोधी विशेषताएं न पाई जाती हों। यह सच है कि यदि समग्र की प्रकृति विविधतापूर्ण है तो निदर्शन के लिए चुनी गई इकाइयां भी एक-दूसरे से भिन्न प्रकृति की होंगी। लेकिन साधारणतया यदि समग्र में अधिक भिन्नता नहीं है तो निदर्शन के अंतर्गत आने वाली इकाइयां भी लगभग समान प्रकृति की होनी चाहिए।

सजातीयता अथवा समान विशेषताओं से संबंधित इकाइयों वाला निदर्शन कहीं अधिक वैज्ञानिक निष्कर्ष देने में सहायक होता है।

(6) तर्क पर आधारित :

किसी भी अच्छे निदर्शन की एक आवश्यक विशेषता उसकी वैज्ञानिकता है। वैज्ञानिक ज्ञान जहां एक ओर किसी निश्चित कार्यप्रणाली पर आधारित होता है, वहीं इसमें तर्क का स्थान भी अत्यधिक महत्वपूर्ण होता है। निदर्शन से संबंधित प्रविधियां चाहे कितने भी विकसित हों, अनुसंधानकर्ता तर्क और ज्ञान का उपयोग किए बिना एक अच्छा निदर्शन प्राप्त नहीं कर सकता। तार्किक दृष्टिकोण का मुख्य अभिप्राय यह है कि एक ओर अनुसंधानकर्ता इकाइयों का इस प्रकार चयन करें जो संपूर्ण समग्र का प्रतिनिधित्व करती हों और दूसरी ओर विषय की प्रकृति के अनुसार ही निदर्शन के आकार तथा उसकी चुनाव विधि का निर्धारण किया जाना चाहिए। निदर्शन के अंतर्गत यदि कोई विशेष इकाई पूर्णतया अव्यावहारिक और निरर्थक प्रतीत होती हो तो निदर्शन में से उसे निकाल देना अच्छा रहता है।

(7) व्यावहारिक अनुभव पर आधारित :

एक उत्तम निदर्शन केवल तर्क पर ही आधारित नहीं होता बल्कि इसमें अध्ययनकर्ता के व्यावहारिक अनुभवों का समावेश होना भी आवश्यक होता है। निदर्शन के चुनाव में अक्सर ऐसी समस्याएं उत्पन्न होती हैं जिनका समाधान व्यावहारिक अनुभव की सहायता से ही किया जा सकता है। केवल नियमों पर आधारित रहने से अक्सर एक श्रेष्ठ और उपयोगी निदर्शन को प्राप्त कर सकना बहुत कठिन हो जाता है।

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि श्रेष्ठ निदर्शन एक अत्यधिक तुलनात्मक शब्द है। किसी निदर्शन में उपयुक्त तत्वों का समावेश जितना अधिक होता है, बहुत सीमा तक उपयोगी अथवा उत्तम बन जाता है।

4.4.3. निदर्शन के प्रकार (Types of Sampling):

अध्ययन से संबंधित विभिन्न समूह एक-दूसरे से इतने भिन्न प्रकृति के होते हैं कि केवल किसी एक विधि के द्वारा ही सभी प्रकार के समग्रों में से एक प्रतिनिधि निदर्शन को प्राप्त नहीं किया जा सकता। अध्ययन-क्षेत्र तथा इकाइयों की प्रकृति को देखते हुए निदर्शन की अनेक विधियों में से किसी भी उपयुक्त विधि के द्वारा निदर्शन प्राप्त करना आवश्यक होता है। निदर्शन की विभिन्न प्रविधियों की सहायता से जिन अनेक प्रकार के निदर्शनों को प्राप्त किया जा सकता है, उन्हीं को हम निदर्शन के विभिन्न प्रकार कहते हैं। इन सभी प्रकारों को निम्नलिखित दो प्रमुख श्रेणियों में विभाजित कर समझा जा सकता है।

(1.) सम्भावित या दैव निदर्शन ;

(2.) असम्भावित निदर्शन ;

सम्भावित निदर्शन में इकाइयों का चयन समान सम्भावना के आधार पर किया जाता है। सामाजिक अनुसंधान में मुख्य रूप से इसी प्रकार के निदर्शन को प्रयोग में लाया जाता है। दैव निदर्शन इस प्रकार के निदर्शन का प्रमुख उदाहरण है। सम्भावित निदर्शन सांख्यिकीय निरंतरता एवं सामान्य वितरण के सिद्धांत पर आधारित होने के कारण अधिक वैज्ञानिक होता है। दूसरे प्रकार के निदर्शन अर्थात

असम्भावित निदर्शन में समान सम्भावना या संयोग को महत्त्व नहीं दिया जाता अपितु शोधकर्ता अपनी सुविधानुसार इकाइयों का चयन करता है। उद्देश्यपूर्ण एवं सुविधापूर्ण निदर्शन इसके प्रमुख उदाहरण हैं। इस प्रकार की निदर्शन पद्धतियों में वैज्ञानिकता का अंश कम होता है।

- **सम्भावित या दैव निदर्शन**

(अ) सरल दैव निदर्शन
- (1) लाटरी पद्धति
- (2) कार्ड या टिकट पद्धति
- (3) ग्रिड पद्धति
- (4) टिपेट सारणी पद्धति

(ब) सिमित दैव निदर्शन
- (1) नियमित अंकन पद्धति
- (2) अनियमित अंकन पद्धति
- (3) स्तरीकृत या वर्गीकृत पद्धति

(स) बहुस्तरीय निदर्शन

(द) क्षेत्रीय या गुच्छ निदर्शन

(य) पुनरावृति निदर्शन

- **असम्भावित निदर्शन**

(अ) कोटा निदर्शन

(ब) उद्देश्यपूर्ण निदर्शन

(स) स्व-चयनित या आकस्मिक निदर्शन

(द) खण्ड निदर्शन

(य) हिमगेंद (स्नोबाल) निदर्शन

(र) स्वैच्छिक निदर्शन

- **सम्भावित या दैव निदर्शन :**

निदर्शन में चयन किए जाने के 'संयोग' को संभाव्यता कहा जाता है। इस प्रकार के प्रतिचयन की यह विशेषता है कि इसमें समग्र के प्रत्येक इकाई को चुने जाने की संभावना बराबर की रहती है। निदर्शन के सभी प्रकारों में दैव निदर्शन सबसे अधिक महत्वपूर्ण तथा सर्वाधिक प्रचलित प्रविधि है। इसके अंतर्गत अध्ययनकर्ता को समूह में से कुछ व्यक्तियों अथवा इकाइयों को चयन करने की कोई व्यक्तिगत स्वतंत्रता नहीं होती बल्कि इकाइयों के चयन का कार्य कुछ विशेष प्रविधियों की सहायता से पूर्णतया संयोग पर छोड़ दिया जाता है। इसका तात्पर्य यह है कि दैव निदर्शन के अंतर्गत एक प्रतिनिधिपूर्ण चुनाव के लिए समग्र की सभी इकाइयों को चुने जाने का समान अवसर प्रदान किया जाता है। ऐसे निदर्शन में इकाइयों

का चयन बहुत कुछ संयोग अथवा दैव पर आधारित होता है, इसलिए ऐसे निदर्शन को दैव निदर्शन कहा जाता है। इस निदर्शन की प्रकृति को स्पष्ट करते हुए **फ्रैंकयेट्स** का कथन है कि, "दैव निदर्शन वह है जिसमें समग्र अथवा जनसंख्या की प्रत्येक इकाई को निदर्शन में सम्मिलित होने का अवसर प्राप्त होता है।" **गुडे तथा हॉट** के अनुसार, "दैव निदर्शन के लिए समग्र की सभी इकाइयों को इस प्रकार क्रमबद्ध किया जाता है कि चयन प्रक्रिया समग्र की प्रत्येक इकाई को चुनाव की समान संभावना प्रदान कर सके।" संभावित या दैव निदर्शन का तात्पर्य यह नहीं है कि अध्ययनकर्ता किन्ही भी इकाइयों का मनमाने रूप से चुनाव कर ले। निदर्शन की इस विधि का उद्देश्य सभी इकाइयों को चुने जाने का समान अवसर देना है। इस दृष्टिकोण से संभावित निदर्शन प्राप्त करने के लिए अनेक प्रविधियों अथवा प्रणालियों का उपयोग किया जाता है।

(अ) सरल दैव निदर्शन :

प्रतिदर्श (इकाई) चयन की एक ऐसी प्रक्रिया जिसमें समग्र की प्रत्येक इकाई को प्रतिदर्श में सम्मिलित किए जाने का समान अवसर प्राप्त होता है, सरल दैव निदर्शन विधि कहलाती है। इस विधि में इकाइयों का चयन पूर्णत: संयोग पर निर्भर करता है। वास्तव में, रेंडम प्रतिचयन या निदर्शन संभाव्य चयन की एक प्रक्रिया है। **पाटेन** के अनुसार, "दैव प्रतिचयन यह ऐसी विधि है जिसका प्रयोग तब किया जाता है जब समग्र में से प्रत्येक व्यक्ति या इकाई को चुने जाने के समान अवसर प्राप्त होते हैं।" संभावनामूलक विधियों में 'दैवयोग' या 'संयोग' का विचार विशेष महत्व रखता है। इसे हम एक उदाहरण द्वारा समझ सकते हैं। यदि हम सिक्के को केवल एक बार उछलते हैं तब हम यह नहीं कह सकते कि सिक्का उल्टा या सीधा गिरेगा, किंतु यदि हम उसी सिक्के को कई बार उछाले तो हम निश्चित रूप से यह कह सकते हैं कि वह कितनी बार उल्टा और कितनी बार सीधा गिरेगा, उसके उल्टे और सीधे गिरने की बराबर-बराबर की संभावना रहती हैं।

(1) लॉटरी पद्धति : दैव निदर्शन की सर्वाधिक प्रचलित विधि लाटरी पद्धति है जिसका प्रयोग हम रोजमर्रा में भी किसी न किसी रूप में करते हैं। दैनिक जीवन में लॉटरी विधि के प्रयोग किए जाने वाले इसके अपरिष्कृत रूप में आवश्यक सुधार कर इसे वैज्ञानिक क्षेत्र में अपनाया गया है। एक वैज्ञानिक प्रणाली के रूप में लाटरी पद्धति के अंतर्गत समग्र की समस्त इकाइयों अथवा व्यक्तियों की क्रम संख्या अथवा नाम, कागज की बहुत सी पर्चियों पर लिखकर उन्हें किसी बड़े बर्तन अथवा बॉक्स में डाल कर अच्छी तरह हिला लिया जाता है। इसके पश्चात निदर्शन के अंतर्गत जितनी इकाइयों का चयन करना होता है, उतने ही कागज के टुकड़े बिना देखे निकाल लिए जाते हैं। इन पर्चियों पर जिन इकाइयों की संख्या अथवा नाम लिखा होता है, उन्हीं को अध्ययन के लिए चुन लिया जाता है। दैव निदर्शन के लिए यद्यपि इस प्रणाली का उपयोग बहुत अधिक किया जाता है लेकिन यदि समग्र की इकाइयों की संख्या बहुत बड़ी हो तो प्रणाली का उपयोग करना अधिक उपयुक्त नहीं होता।

(2) कार्ड या टिकट पद्धति : यह पद्धति लॉटरी पद्धति का ही संशोधित रूप है जिसे ड्रम पद्धति अथवा टिकट पद्धति भी कहा जाता है। किसके अंतर्गत समान आकार और रंग के बहुत से कार्डों पर समग्र की सभी इकाइयों के नाम लिखकर एक बड़े ड्रम में डालकर उन्हें जोर से हिलाया जाता है। इसके पश्चात ड्रम

में से किसी एक कार्ड को उठा लिया जाता है। निदर्शन के अंतर्गत जितनी इकाईयों का समावेश करना होता है, उतनी ही बार ड्रम को हिलाकर प्रत्येक बार एक-एक कार्ड निकाला जाता है। कार्ड उठाने का कार्य भी अध्ययनकर्ता द्वारा न करके किसी अन्य व्यक्ति द्वारा किया जाता है।

(3) ग्रिड पद्धति : निदर्शन के लिए केवल अधिक इकाइयों में से कुछ सीमित इकाइयों का चयन करना ही आवश्यक नहीं होता बल्कि अनेक अध्ययन इस प्रकार के होते हैं जिनके लिए एक बहुत बड़े भौगोलिक क्षेत्र में से एक छोटे क्षेत्र का भी चुनाव करना आवश्यक होता है। ग्रिड प्रणाली वह तरीका है जिसके द्वारा यह निर्धारित किया जाता है कि कोई विशेष अध्ययन किस क्षेत्र अथवा किन क्षेत्रों के अंतर्गत किया जाएगा। इस प्रणाली के उपयोग के लिए सर्वप्रथम यह तय कर लिया जाता है कि समग्र के संपूर्ण क्षेत्र में से अध्ययन कार्य कितने उप-क्षेत्रों में करना है। उदाहरण के लिए, यदि संपूर्ण उत्तर प्रदेश में केवल 50 गाँवों का अध्ययन करना हो तो उत्तर प्रदेश के मानचित्र के आकार का एक ग्रिड अथवा किसी पारदर्शी धातु जैसे कांच आदि का सांचा तैयार कर लिया जाता है। इसमें समान दूरी का ध्यान रखते हुए 1 से 50 तक संख्याएं अंकित कर दी जाती हैं। इसके पश्चात यह सांचा पुन: मानचित्र पर रखा जाता है। साँचे पर अंकित संख्याएं मानचित्र में जिस स्थान पर आती हैं, उन्हीं स्थानों को अध्ययन के लिए चुन लिया जाता है।

(4) टिपेट सारणी पद्धति : यह विधि प्रो. टिपेट द्वारा प्रस्तुत चार-चार अंको वाली 10,400 संख्याओं की एक लंबी और अव्यवस्थित सूची से संबंधित है। संख्याओं की यह सूची यद्यपि बहुत लंबी है लेकिन टिपेट द्वारा प्रस्तुत एक पृष्ठ पर दी गई कुछ संख्याओं से इसकी प्रकृति को समझा जा सकता है :

2952 6641 3992 9792 7979 5911 3170 5624 4167 9224 1545 1396 7203

5356 1300 2693 2370 7483 3408 2762 3563 1089 6913 7691 0560 5246

1112 6107 6008 8126 4433 8776 2754 9443 1405 9025 7002 6111 8816

दैव निदर्शन के लिए टिपेट पद्धति का उपयोग करने के लिए सर्वप्रथम समग्री की सभी इकाइयों को क्रम संख्या के अनुसार व्यवस्थित कर लिया जाता है। इसके पश्चात निदर्शन के लिए जितनी इकाइयों का चयन करना हो, उनका निर्धारण करने के लिए टिपेट द्वारा प्रस्तुत सूची के किसी भी एक पृष्ठ को खोलकर उसमें अंकित संख्याओं की सहायता से इनका चयन कर लिया जाता है। उदाहरण के लिए, यदि समग्र में कुल इकाइयां 100 हों तथा उनमें से 25 इकाइयों का चयन करना हो, तो उपर्युक्त पृष्ठ की संख्याओं में से निम्नांकित क्रम संख्या पर आने वाली प्रत्येक इकाई का निदर्शन के लिए चुनाव किया जाएगा :

29 66 39 97 79 59 31 56 41 92 15 13 72

53 26 23 74 34 27 35 10 69 76 05 52

इस प्रणाली का उपयोग करने के लिए तीन प्रमुख सावधानियों को ध्यान में रखना आवश्यक है पहला, यदि कोई संख्या पुन: आ जाती है तो उसे छोड़ दिया जाता है, जैसे उपयुक्त उदाहरण में 13 संख्या की पुनरावृति होने के कारण उसे पुन: सम्मिलित नहीं किया गया। दूसरा, निदर्शन में 99 तक इकाइयों का चयन करने के लिए सूची में दी गई संख्याओं के प्रथम 2 अंकों को आधार माना जाता है, जबकि 3 अंकों वाली संख्या (जैसे, 100 से 999 तक) में इकाइयों का चयन करने के लिए प्रथम तीन अंको को आधार माना जाता है। तीसरा, निदर्शन के लिए इकाइयों का चयन किसी भी एक क्रम से संबंधित संख्याओं के आधार पर ही किया जाना चाहिए। दैव निदर्शन के लिए टिपेट पद्धति को आज इसलिए अधिक वैज्ञानिक माना जाता है क्योंकि इसके द्वारा इकाइयों के चुनाव में अध्ययनकर्ता के पक्षपात की कोई संभावना नहीं रह जाती। इसके अतिरिक्त, सामग्र का आकार बहुत बड़ा होने पर भी टिपेट पद्धति के द्वारा एक सीमित निदर्शन प्राप्त किया जा सकता है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि दैव निदर्शन को प्राप्त करने की अनेक पद्धतियां हैं तथा इन सभी का उद्देश्य अध्ययन के लिए इकाइयों के चुनाव में वैयक्तिक पक्षपात की संभावना को कम से कम करना होता है। इन सभी पद्धतियों के प्रयोग के लिए कुछ विशेष सावधानियां रखना आवश्यक है। सर्वप्रथम, जिस समग्र में से निदर्शन का चुनाव करना हो तो अध्ययनकर्ता को उसका समुचित ज्ञान करके इकाइयों की एक सूची का निर्माण करना आवश्यक होता है। इसके अतिरिक्त, समग्र की प्रत्येक इकाई को निदर्शन के लिए चुने जाने की पूरी स्वतंत्रता होनी चाहिए। अंत में, एक विशेष प्रणाली से जिन इकाइयों का चयन हो जाए, अध्ययनकर्ता को उनमें किसी भी प्रकार का परिवर्तन नहीं करना चाहिए, अन्यथा इन प्रविधियां का मूल उद्देश्य ही समाप्त हो जाता है।

दैव निदर्शन पद्धति के प्रमुख **गुण** या **लाभ** निम्नांकित है :

- इस विधि में प्रत्येक इकाई के चुने जाने के समान अवसर होते हैं। अतः यह विधि प्रतिनिधित्वपूर्ण है तथा इसमें समग्र की अधिकाधिक विशेषताएं विद्यमान होती हैं।
- यह विधि एक वैज्ञानिक विधि है जैसा कि **एकॉफ** कहते हैं, "दैव निदर्शन एक प्रकार से समस्त वैज्ञानिक निदर्शन का आधार है।"
- यह निदर्शन की सबसे सरल विधि है, इसमें जटिल अथवा गूढ़ सिद्धांतों का पालन नहीं करना पड़ता है।
- इस विधि में निष्पक्षता का गुण मौजूद है और निदर्शन के चुनाव में किसी को भी प्राथमिकता नहीं दी जाती है। अतः इसमें पक्षपात आने की संभावना नहीं रहती है।
- इस विधि में समय, धन और श्रम की भी पर्याप्त बचत होती है। अतः यह विधि मितव्ययितापूर्ण है।
- इस विधि में इकाइयों के चयन में यदि किसी प्रकार की कोई त्रुटि या अशुद्धता रहा गई हो तो उसका पता लगाना सरल है।

दैव निदर्शन पद्धति के निम्नांकित **दोष** या **सीमाएं** हैं :

- इस विधि में समग्र की सूची होना आवश्यक है, किंतु कई बार यह सूची उपलब्ध नहीं हो पाती तब इस विधि द्वारा निदर्शन ग्रहण करना संभव नहीं होता है।
- यदि समग्र बहुत छोटा हो अथवा कुछ इकाइयां इतनी महत्वपूर्ण हों कि उनका निदर्शन में समावेश अनिवार्य हो तो ऐसी स्थिति में दैव निदर्शन उपयुक्त नहीं होता।
- जब समग्र में बहुत अधिक विविधताएं हों और सजातीयता का अभाव हो तब भी यह विधि उपयुक्त नहीं होती।
- जब समग्र का विस्तार बहुत अधिक हो और इकाइयां दूर-दूर तक फैली हों तब भी उनसे संपर्क करना कठिन होता है।
- दैव निदर्शन में विकल्प की संभावना नहीं होती, विकल्प के लिए इकाइयों में परिवर्तन करना होता है। ऐसी स्थिति में दैव निदर्शन अवैज्ञानिक और पक्षपातपूर्ण हो जाता है।

(ब) सिमित दैव निदर्शन :

सीमित दैव निदर्शन में इकाइयों का चुनाव स्वतंत्र या अनियमित रूप से नहीं होता है जैसा सरल दैव निदर्शन में होता है। इस विधि द्वारा निदर्शन लेने से पूर्व समग्र कि सभी इकाइयों को पहले क्रमबद्ध किया जाता है, फिर उन्हें कुछ वर्गों या श्रेणियों में बांट दिया जाता है। उसके बाद उसमें से निदर्शन का चुनाव किया जाता है। सीमित दैव निदर्शन को निम्न तीन भागों में बांटा गया है :

(1) नियमित अंकन पद्धति : इस विधि में पहले समग्र की सभी इकाइयों को किसी विशेष ढंग, काल अथवा स्थान, आदि के अनुसार व्यवस्थित कर लिया जाता है। इसके बाद यह निश्चित कर लिया जाता है कि समग्र में से हमें कितनी इकाइयों का चयन निदर्शन हेतु करना है। साथ ही एक इकाई से दूसरी इकाई के बीच की संख्यात्मक दूरी को भी तय कर लिया जाता है। उदाहरण के लिए, अपने कैरियर के प्रति कॉलेज के अंतिम वर्ष के छात्र कितने सजग हैं। यह जानना है तो इस अध्ययन के लिए हमें 100 छात्रों में से 10 छात्रों का चयन करना होगा पहला, दसवां, बीसवां, तीसवां और इसी क्रम में 10 छात्रों का चयन किया जाएगा। इसी प्रकार से काल, स्थान एवं परिस्थिति के अनुसार भी समग्र की इकाइयों को व्यवस्थित करके उनमें से निदर्शन का चुनाव कर लिया जाता है। इस प्रणाली में पक्षपात की कोई संभावना नहीं होती।

(2) अनियमित अंकन पद्धति : इस विधि से निदर्शन का चुनाव करने के लिए भी पहले समग्र की समस्त इकाइयों की सूची बना ली जाती है तथा प्रथम और अंतिम अंको को छोड़कर शेष इकाइयों की सूची में से निर्धारित मात्रा में अनियमित ढंग से इकाइयों पर निशान लगा दिया जाता है। उदाहरण के लिए, 100 छात्रों में से 10 छात्रों का निदर्शन लेने के लिए पहले हम इन सभी के नामों की एक सूची तैयार करेंगे। तत्पश्चात 1 से 10, 10 से 20, 20 से 30 और इसी प्रकार से अन्य वर्गों में से भी प्रत्येक वर्ग में से किसी भी एक इकाई पर सही का निशान लगा देंगे और इस प्रकार कुल 10 इकाइयों का चयन कर लिया जाएगा। इस विधि में पक्षपात आने की संभावना रहती है।

(3) स्तरीकृत या वर्गीकृत पद्धति : यह विधि दैव निदर्शन और सभी सविचार निदर्शन का मिश्रित रूप है। अतः इसे मिश्रित निदर्शन भी कहते हैं। इसमें पहले समग्र को विचारपूर्वक कई सजातीय वर्गों में विभाजित कर दिया जाता है और उसके बाद प्रत्येक वर्ग में से निश्चित संख्या में दैव निदर्शन विधि से इकाइयों का चुनाव किया जाता है। उदाहरण के लिए, यदि हमें लखनऊ या मुरादाबाद में जाति व्यवस्था का अध्ययन करना है तो पहले हम संपूर्ण नगर को विभिन्न जातियों में बांट देंगे और उसके पश्चात प्रत्येक जाति या समूह में से दैव निदर्शन विधि से निश्चित मात्रा में इकाइयों का चयन करेंगे।

(स) बहुस्तरीय निदर्शन :

यह निदर्शन कुछ सीमा तक स्तरित निदर्शन के ही समान होता है लेकिन इसकी प्रमुख विशेषता यह है कि इसका प्रयोग किसी बहुत बड़े अध्ययन क्षेत्र में से एक निदर्शन चुनने के लिए किया जाता है। जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है, बहुस्तरीय निदर्शन के अंतर्गत इकाइयों के चुनाव की प्रक्रिया अनेक स्तरों में से होकर गुजरती है। परंतु प्रत्येक स्तर पर इकाइयों के चुनाव का कार्य दैव निदर्शन की प्रणाली के द्वारा ही किया जाता है। उदाहरण के लिए, भारत में छात्रों की समस्याएं जैसा विषय इतने बड़े समग्र से संबंधित है कि इसका अध्ययन करने के लिए अनेक स्तरों पर निदर्शन का चुनाव करना आवश्यक होगा। इसका तात्पर्य है कि पहले स्तर पर राज्यों का चुनाव, दूसरे स्तर पर चुने गए राज्यों में विभिन्न जिलों का चुनाव, तीसरे स्तर पर विश्वविद्यालयों तथा महाविद्यालयों का चुनाव, चौथे स्तर पर संकायों का चुनाव, पांचवें स्तर पर विभागों का चुनाव और अंतिम स्तर पर छात्रों का चुनाव करने से ही एक प्रतिनिधि निदर्शन प्राप्त किया जा सकता है। ऐसे निदर्शन में इकाइयों का चुनाव क्योंकि अनेक स्तरों के द्वारा किया जाता है, इसलिए ऐसे निदर्शन को बहुस्तरीय निदर्शन कहा जाता है। वे अध्ययन विषय जो एक छोटे भौगोलिक क्षेत्र से संबंधित होते हैं अथवा जिनसे संबंधित विभिन्न वर्गों के बीच कोई स्पष्ट विभाजन नहीं होता, वहां इस प्रकार के निदर्शन की कोई आवश्यकता नहीं होती। वर्तमान समय में वृहद अध्ययनों के लिए बहुस्तरीय निदर्शन की प्रविधि का प्रयोग करने का प्रचलन निरंतर बढ़ता जा रहा है।

(द) क्षेत्रीय या गुच्छ निदर्शन :

इस विधि में समग्र को पहले छोटे-छोटे क्षेत्र में विभाजित करते हैं। तत्पश्चात संपूर्ण क्षेत्र का ही अध्ययन किया जाता है। चुंकी इसमें इकाइयों के एक समूह का अध्ययन किया जाता है। इसलिए इसे संभाग या गुच्छ (cluster) निदर्शन भी कहते हैं। इसे स्पष्ट करते हुए **मोजर एवं कालटन** लिखते हैं, "जब इकाइयों के संपूर्ण समूह को ही निदर्शन के रूप में चुन लिया जाता है, तब यह चयन प्रक्रिया संभाग निदर्शन कहलाती है।" क्षेत्रीय निदर्शन का उपयोग कृषि क्षेत्रों के अध्ययन के लिए विशेष रूप से किया जाता है। अपराधी क्षेत्र एवं जनसंख्या अध्ययनों के लिए भी इस विधि का प्रयोग किया जाता है।

(य) पुनरावृति निदर्शन :

कई बार ऐसा भी होता है कि पहली बार में चयनित निदर्शन से वांछित एवं आवश्यक परिणाम प्राप्त नहीं होते हैं। ऐसी स्थिति में निदर्शन कार्य एक से अधिक बार किया जाता है। इसलिए इसे पुनरावृति निदर्शन कहते हैं। अनेक निदर्शन होने के कारण इसे बहु निदर्शन भी कहते हैं। इस विधि का प्रयोग करने का प्रमुख कारण संभावित त्रुटियों को दूर करना है।

- **असम्भावित निदर्शन :**

सामाजिक शोध के कई ऐसे विषय हैं जैसे बीमारी से ग्रस्त व्यक्ति, धूम्रपान करने वाले व्यक्ति, शराबी व्यक्ति, विधवाएं, प्रवासी व्यक्ति इत्यादि, जिनमें संभाव्य विधि का प्रयोग दुष्कर और अनुपयुक्त रहता है। ऐसे विषयों के अध्ययन के लिए उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए जानबूझ कर बीमारी से ग्रसित प्रतिदर्श इकाइयों का चयन किया जाता है। असंभावित निदर्शन संभावित निदर्शन के विपरीत होते हैं। इसमें संभावना एवं संयोग का कोई महत्व नहीं होता है। इसलिए ही इसे असंभावित निदर्शन कहते हैं। इसमें निदर्शन की इकाइयों का चयन अनुसंधानकर्ता की इच्छा पर निर्भर करता है। इसमें न तो प्रत्येक इकाई के निदर्शन में सम्मिलित होने के और न उसके चुने जाने की ही संभावना होती है। इसमें तो अध्ययनकर्ता उन इकाइयों का चुनाव करता है जो अध्ययनकर्ता के विषय या समस्या के उद्देश्यों एवं सुविधा के अनुरूप हों। इसमें किसी भी स्तर पर संभाव्य सिद्धांत का प्रयोग नहीं किया जाता है, अतः इन विधियों से निकाले गए निष्कर्षों की विश्वसनीयता संदिग्ध रहती है, इसके साथ ही इनमें प्रतिदर्श त्रुटि का अनुमान लगाना भी कठिन होता है।

(अ) कोटा निदर्शन :

कोटा निदर्शन स्तरित तथा उद्देश्यपूर्ण निदर्शन का एक मिश्रित स्वरूप है। इस प्रविधि के अंतर्गत सर्वप्रथम समग्र कि सभी इकाइयों को इन श्रेणियों में विभाजित कर लिया जाता है जैसे- उम्र, लिंग, शिक्षा, भौगोलिक आधार पर घर की बनावट, सामाजिक-आर्थिक प्रस्थिति, नृजातीय पृष्ठभूमि आदि। यह सभी समान रूप में नहीं होते हैं। इसके पश्चात विभिन्न वर्गों अथवा श्रेणियों के तुलनात्मक महत्व को देखते हुए प्रत्येक वर्ग में से चुने जाने वाली इकाइयों की संख्या निर्धारित की जाती है। विभिन्न वर्गों में से चुने जाने वाली इकाइयों की संख्या निर्धारित करते समय अनुसंधानकर्ता के लिए यह आवश्यक नहीं होता कि उनका निर्धारण विभिन्न श्रेणियों की संख्या के अनुपात में ही किया जाए। किसी वर्ग में इकाइयों की संख्या अधिक होने पर भी यदि उसका कार्यात्मक महत्व तुलनात्मक रूप से कम होता है तो उसमें से कम इकाइयों का चुनाव किया जा सकता है। इसका तात्पर्य है कि अध्ययनकर्ता को प्रत्येक वर्ग अथवा श्रेणी में से उद्देश्यपूर्ण रूप से इकाइयों को चुनने की स्वतंत्रता होती है। इसके पश्चात भी प्रत्येक वर्ग में से इच्छित संख्या में इकाइयों का चयन करने के लिए सदैव निदर्शन की विभिन्न प्रणालियों में से ही किसी एक का उपयोग किया जाता है। ऐसे निदर्शन का चुनाव करने में अनुसंधानकर्ता की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण होती है। विभिन्न श्रेणियों में से इकाइयों की संख्या का निर्धारण अनुसंधानकर्ता द्वारा करने के कारण ऐसे निदर्शन में वैयक्तिक पक्षपात की संभावना भी बनी रहती है। यही कारण है कि कोटा निदर्शन के आधार पर कोई अध्ययन करना केवल तभी उपयोगी समझा जाता है जब स्तरित निदर्शन के द्वारा प्रतिनिधि इकाइयों का चयन करना संभव न होता हो।

(ब) उद्देश्यपूर्ण निदर्शन :

जब शोधकर्ता किसी विशेष उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए प्रतिदर्श इकाइयों का सचेतन रूप से चयन करता है, तब इसे उद्देश्यपूर्ण निदर्शन कहते हैं। इस प्रकार की विधि में प्रतिदर्श इकाइयों के चुनाव में शोधकर्ता का उद्देश्य, निर्णय या इच्छा ही सर्वोपरि होती है और संयोग के तत्व की अवहेलना की जाती है। यह विधि इस मान्यता पर आधारित है कि एक अच्छे निर्णय के द्वारा एक शोधकर्ता ऐसी प्रतिदर्श इकाइयों का चयन कर सकता है, जो उसके अध्ययन की आवश्यकताओं के अनुसार संतोषजनक हों। उदाहरण के लिए, किसी महाविद्यालय या विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों में नशीली दवाओं और तंबाकू के सेवन करने वालों, शराब या धूम्रपान करने वाले विद्यार्थियों की आदतों, प्रवृत्तियों एवं इसके कारणों का अध्ययन करने में उद्देश्यात्मक निदर्शन का प्रयोग इसलिए लाभकारी सिद्ध हो सकता है कि इसमें शोध के उद्देश्यानुसार उन्हीं विद्यार्थियों में से चयन किया जाएगा जो उपरोक्त नशीले पदार्थों का प्रयोग करते हैं। यदि इस प्रकार के अध्ययन में हम किसी रेंडम प्रतिचयन विधि का प्रयोग करते हैं तब संभव है कि हमारे प्रतिदर्श में उचित मात्रा में ऐसी इकाइयों का चयन नहीं हो पाए जो नशीले पदार्थों का प्रयोग करते हों। यही नहीं, रेंडम विधि से प्रतिदर्श में सभी इकाइयां किसी एक वर्ग, जाति या धर्म की सम्मिलित होने की संभावना हो सकती है। ऐसे प्रतिदर्श में अध्ययन की दृष्टि से प्रतिनिधित्वता की कमी आ सकती है। इस प्रकार, यदि हम तलाक या अंतर्जातीय विवाह की समस्याओं का अध्ययन करना चाहते हैं, तब हमें उन्हीं व्यक्तियों में से जानबूझकर चुनाव करना होगा जिनमें तलाक हुआ है या जिन्होंने अंतर्जातीय विवाह किया है। अति संक्षेप में, उद्देश्यात्मक प्रतिचयन में समग्र में से उन्ही इकाइयों का चुनाव किया जाता है जो शोध के उद्देश्यों को पूरा करती हों या शोध की दृष्टि से विशेष महत्व रखती हों। यह विधि व्यक्तिपरक अवश्य है, किंतु इसमें शोधकर्ता से यह आशा की जाती है कि वह इकाइयों का चुनाव करते समय सभी प्रकार की इकाइयों का चयन कर प्रतिदर्श को अधिकाधिक प्रतिनिधिक बनाने का प्रयत्न करे ताकि यथार्थ निष्कर्ष प्राप्त किए जा सकें। इस विधि में सामान्य रूप से एक ऐसी व्यूह रचना अपनाई जाती है ताकि उन्ही इकाइयों का चुनाव किया जा सके जो कुछ विशिष्टता रखती हैं और जिनमें शोधकर्ता की रुचि है। इसमें यह माना जाता है कि चयन में निर्णय की त्रुटियां एक-दूसरे को प्रति संतुलित कर देती हैं।

(स) स्व-चयनित या आकस्मिक निदर्शन :

कभी-कभी अनुसंधानकर्ता को निदर्शन का चुनाव करने की आवश्यकता नहीं होती बल्कि कुछ व्यक्ति स्वयं अपनी रुचि अथवा जागरूकता के आधार पर निदर्शन का अंग बन जाते हैं। ऐसा निदर्शन साधारणतया संचार के विभिन्न साधनों द्वारा प्राप्त किया जाता है। उदाहरण के लिए, रेडियो, दूरदर्शन, समाचार पत्रों तथा विभिन्न पत्रिकाओं के माध्यम से अक्सर ऐसी सूचनाएं प्रसारित अथवा प्रकाशित की जाती हैं जिनमें एक विशेष विषय पर लोगों की प्रतिक्रियाओं और विचारों को समझा जा सके। इस स्थिति में जो व्यक्ति अपने विचार अध्ययनकर्ता के पास लिख कर भेज देते हैं, उन्हीं व्यक्तियों को निदर्शन की इकाइयां मान लिया जाता है। स्पष्ट है कि ऐसे निदर्शन का न तो किसी व्यवस्थित प्रणाली के द्वारा चुनाव किया जाता है और न ही यह निदर्शन विभिन्न वर्गों का वास्तविक प्रतिनिधित्व कर पाता है। वास्तव में, स्वयं चयनित प्रतिदर्श अथवा निदर्शन एक अत्यधिक सामान्य प्रकृति का निदर्शन है तथा इसका उपयोग

बहुत सामान्य प्रकार के अध्ययनों के लिए किया जाता है। ऐसे निदर्शन का उद्देश्य बहुत कम समय में कुछ व्यक्तियों के विचारों को समझकर किसी विषय से संबंधित सामान्य प्रवृत्ति को स्पष्ट करना होता है, कोई वैज्ञानिक निष्कर्ष प्रस्तुत करना नहीं।

(द) खण्ड निदर्शन :

इस प्रकार के निदर्शन में संपूर्ण समग्र का अध्ययन न करके किसी एक खंड को सुविधानुसार अध्ययन हेतु चुन लिया जाता है। उदाहरणार्थ, यदि कोई अनुसंधानकर्ता भोपाल के मतदाताओं का अध्ययन कर रहा है और वह केवल अपने मोहल्ले को निदर्शन की एक खंड के रूप में चुन लेता है तो इसे खंड निदर्शन कहा जाएगा। उसने अपने मोहल्ले का चयन अपनी सुविधानुसार किया है क्योंकि मोहल्ले वाले उसके परिचित हैं तथा मतदाता के रूप में जो भी जानकारी उसे चाहिए वह उसे उनसे मिल सकती है।

(य) हिमगेंद (स्नोबॉल) निदर्शन :

असंभावित प्रतिचयन या निदर्शन की यह एक ऐसी तकनीक या विधि है जिसमें शोधकर्ता अपना अध्ययन उन लोगों से शुरू करता है, जिनके बारे में उसे थोड़ी बहुत यह जानकारी है कि ये लोग वे विशिष्ट विशेषताएं रखते हैं, जिनका अध्ययन वह करने जा रहा है। ऐसे लोगों से अध्ययन शुरुआत कर वह इन्हीं व्यक्तियों से यह जानकारी जुटाता है कि ऐसे अन्य लोग कौन हैं जिनमें यह विशेषता पाई जाती है। इस विधि में, एक से दूसरे के बारे में, दूसरे से तीसरे तथा अन्य के बारे में जानकारी जुटाई जाती है और यह क्रम आगे चलता रहता है। इस प्रकार प्रतिदर्श की मात्रा में तब तक बढ़ोतरी की जाती रहती है जब तक पर्याप्त मात्रा में प्रतिदर्श की प्राप्ति नहीं हो जाती या आगे अन्य कोई ऐसा सूचनादाता नहीं मिलता जो उक्त विशेषता रखता हो और उसके पास शोध विषय के बारे में पर्याप्त जानकारी हो। इसे हिमगेंद प्रतिचयन इसलिए कहा जाता है क्योंकि बर्फ की गेंद बनाने की प्रक्रिया की शुरुआत पहले थोड़ी सी बर्फ से की जाती है। बाद में उसमें धीरे-धीरे और बर्फ जोड़ते जाते हैं और इस प्रकार यह बर्फ एक गेंद का आकार ले लेती है। इसी प्रकार इस प्रतिचयन विधि में ऐसे दो-चार या कुछ अधिक व्यक्तियों से साक्षात्कार की शुरुआत की जाती है, जो शोध विषय की दृष्टि से उपयुक्त होते हैं। इन्हीं व्यक्तियों से अन्य ऐसे व्यक्तियों के बारे में पूछा जाता है जो उक्त जानकारी रखते हैं। इस प्रकार बर्फ की गेंद के आकार में वृद्धि की भांति प्रतिदर्श का आकार बढ़ता जाता है। इस विधि का सबसे बड़ा लाभ प्रतिदर्श का छोटा आकार और कम लागत खर्च का होना है, किंतु पूर्वाग्रह इस विधि का सबसे बड़ा दोष है। इस विधि में पूर्वाग्रह तब आ जाती है जब एक व्यक्ति उसे कोई अन्य व्यक्ति (जो प्रतिदर्श की इकाई है) भी जानता है उसमें पहले व्यक्ति के समान ही गुण होने की अधिक संभावना होती है।

(र) स्वैच्छिक निदर्शन :

कई बार कुछ व्यक्ति स्वैच्छिक रूप में किसी विषय के बारे में जानकारी देने के लिए तैयार हो जाते हैं। जब ऐसे व्यक्तियों को प्रतिचयन की इकाई बनाया जाता है, तब इसे स्वैच्छिक निदर्शन कहते हैं। कभी-कभी संयोग से ऐसे व्यक्ति से अचानक मुलाकात हो जाती है जो हमारे अध्ययन विषय के बारे में जानकारी रखता है और वह हमें उक्त जानकारी देना चाहता है। इस प्रकार का व्यक्ति हमारे प्रतिदर्श की

एक इकाई बन सकता है। संयोगिक प्रतिचयन भी कहा जाता है। सड़क पर चलते हुए किसी राहगीर से अपने अध्ययन से संबंधित सूचनाएं एकत्रित करना इसी प्रकार की प्रतिचयन विधि का एक उदाहरण है।

4.4.4. निदर्शन के लाभ एवं सीमाएं (Benefits and Limitations of Sampling):

सामाजिक अध्ययनों में निदर्शन की उपयोगिता का उल्लेख करते हुए **रोजजेंडर** ने लिखा है कि "निदर्शन को यदि सावधानी से प्राप्त किया जाए तो निदर्शन न केवल बहुत सस्ता रहता है बल्कि ऐसे परिणाम भी प्रस्तुत कर सकता है जो अत्यधिक यथार्थ होते हैं तथा कभी-कभी संगणना की तुलना में भी अधिक परीशुद्ध होते हैं। इस प्रकार लापरवाही से आयोजित कार्य में लाई जाने वाली संगणना विधि की तुलना में सावधानीपूर्वक चुना गया निदर्शन अधिक श्रेष्ठ होता है।" इस कथन के संदर्भ में निदर्शन की उपयोगिता अथवा इसके **गुण-लाभों** को अनेक क्षेत्रों में देखा जा सकता है :

(1) समय की बचत :

निदर्शन के अंतर्गत आने वाले कुछ इकाइयां संपूर्ण समग्र का प्रतिनिधित्व करती हैं। इसके फलस्वरूप किसी भी दूसरी विधि की तुलना में निदर्शन द्वारा अपेक्षाकृत कम समय में ही एक क्षेत्र अथवा समूह की समस्त विशेषताओं को समझना संभव हो जाता है। **गुडे तथा हॉट** के अनुसार, "निदर्शन का उपयोग एक वैज्ञानिक कार्यकर्ता के समय की बचत करके अध्ययन को अधिक वैज्ञानिक रूप प्रदान करता है।" वर्तमान परिवर्तनशील समाजों में निदर्शन द्वारा समय की बचत का कार्य और भी अधिक महत्वपूर्ण समझा जाने लगा है। सामाजिक घटनाओं का अध्ययन करने के लिए यदि निदर्शन के आधार पर कुछ इकाइयों का चयन करके अध्ययन को संक्षिप्त न बनाया जाए तो अध्ययन से संबंधित निष्कर्ष प्राप्त करने से पहले ही सामाजिक घटनाएं इस सीमा तक बदल सकती हैं कि प्राप्त निष्कर्ष बिल्कुल ही अनुपयोगी प्रतीत होने लगे। इस प्रकार निदर्शन केवल समय की बचत ही नहीं करता बल्कि अध्ययन से संबंधित निष्कर्षों की सामयिक उपयोगिता को बनाए रखने में भी सहायता देता है।

(2) धन की बचत :

अध्ययन चाहे सरकारी क्षेत्र में किया जाना हो अथवा गैर सरकारी क्षेत्र में, प्रत्येक स्थिति में सीमित साधन अध्ययनकर्ता के मार्ग में एक बड़ी बाधा होते हैं। निदर्शन एक ऐसी विधि है जिसके द्वारा कम इकाइयों का अध्ययन करने के लिए कम अध्ययनकर्ताओं और कम साधनों की आवश्यकता होती है। इस स्थिति में अध्ययनकर्ता जो अतिरिक्त समय बचा लेता है, उसका कहीं अच्छा उपयोग अध्ययन से संबंधित इकाइयों का गहन अध्ययन करने तथा तथ्यों का विश्लेषण करने में किया जा सकता है। यही कारण है कि आज अधिकांश अध्ययन निदर्शन पर किए जाते हैं।

(3) गहन एवं सूक्ष्म अध्ययन :

किसी अध्ययन के लिए जब छोटे निदर्शन का उपयोग किया जाता है तो प्रत्येक इकाई का अत्यधिक गहन और सूक्ष्म अध्ययन करने के साथ ही प्राप्त सूचनाओं के यथार्थता की जांच करना भी संभव हो जाता है। अध्ययन से संबंधित इकाइयों की संख्या कम होने के कारण अध्ययनकर्ता प्रत्येक

इकाई के विभिन्न पक्षों को देखकर कहीं अधिक व्यापक सूचनाएं प्रदान कर सकता है। यह लाभ संगणना विधि के अंतर्गत प्राप्त नहीं किया जा सकता।

(4) निष्कर्षों में यथार्थता :

कोई अध्ययन जब समग्र की सभी इकाइयों को लेकर किया जाता है तो अध्ययन में यथार्थता की संभावना उतनी ही कम हो जाती है। इसका कारण यह है कि न तो प्रत्येक क्षेत्र और प्रत्येक इकाई का सावधानी के साथ अध्ययन किया जा सकता है और न ही वैयक्तिक पक्षपात को पूर्णतया समाप्त किया जा सकता है। निदर्शन के अंतर्गत अध्ययन एक या कुछ अध्ययनकर्ताओं द्वारा ही किया जा सकता है तथा इकाइयों की संख्या कम होने के कारण अध्ययन के प्रति उदासीनता भी उत्पन्न नहीं हो पाती। इसके फलस्वरूप सूचनाओं के संकलन में त्रुटियां होने की संभावना बहुत कम रह जाती हैं। स्वाभाविक है कि ऐसे अध्ययन कहीं अधिक वस्तुनिष्ठ अथवा यथार्थ होते हैं।

(5) प्रशासकीय सुविधा :

निदर्शन पद्धति द्वारा किया जाने वाला अध्ययन प्रशासकीय दृष्टिकोण से अधिक सुविधाजनक होता है। वास्तविकता यह है कि प्रशासकीय तंत्र चाहे कितना भी बड़ा क्यों ना हो, उसके द्वारा संपूर्ण जनसंख्या का अध्ययन कर सकना अत्यधिक कठिन होता है। जनगणना विधि के द्वारा यद्यपि संपूर्ण जनसंख्या का अध्ययन करने का दावा किया जाता है लेकिन ऐसा अध्ययन कितना अधिक अकुशल और अपूर्ण होता है, यह सर्वविदित है। निदर्शन के द्वारा अध्ययन का कार्य कम कार्यकर्ताओं द्वारा संभव हो जाने के कारण उनके प्रशिक्षण और निरीक्षण से संबंधित कोई जटिल समस्या उत्पन्न नहीं होती। यही कारण है कि अक्सर सरकारी स्तर पर किए जाने वाले अध्ययनों में भी अब निदर्शन पद्धति को ही अधिक उपयोगी समझा जाने लगा है।

(6) विशेष दशाओं में उपयुक्त :

अनेक अध्ययन विषय ऐसे क्षेत्र अथवा व्यक्तियों से संबंधित होते हैं जिनमें निदर्शन का उपयोग किए बिना उपयोगी तथ्यों को प्राप्त नहीं किया जा सकता। उदाहरण के लिए, यदि अध्ययन क्षेत्र बहुत विशाल होता है अथवा भौगोलिक रूप से विषय से संबंधित व्यक्ति बहुत दूर-दूर तक बिखरे हुए होते हैं तो निदर्शन के द्वारा ही कुछ इकाइयों से संपर्क स्थापित करना संभव हो पाता है। इसके अतिरिक्त, यदि अध्ययन विषय से संबंधित विभिन्न दिशाओं में तेजी से परिवर्तन होता रहता हो तो भी निदर्शन के द्वारा ही कम समय में उनका अध्ययन करके उपयोगी निष्कर्ष दिए जा सकते हैं।

(7) लोच का गुण :

निदर्शन विधि में लोच का गुण होना इसकी एक महत्वपूर्ण विशेषता है। निदर्शन के अंतर्गत अध्ययन की इकाइयों की संख्या कम हो जाने के कारण यह संभव हो जाता है कि आवश्यकतानुसार उनमें कमी अथवा वृद्धि की जा सके। यदि निदर्शन से संबंधित कोई इकाई बिल्कुल अनुपयुक्त अथवा अव्यावहारिक प्रतीत होती है तो उसके स्थान पर दूसरी इकाई का चयन किया जा सकता है। इस आधार पर भी निदर्शन को सामाजिक अध्ययनों के लिए एक उपयोगी विधि के रूप में देखा जाता है।

सामाजिक अध्ययनों के लिए निदर्शन का उपयोग एक औषधि के समान है जिसके लाभ इसके अत्यधिक सावधानीपूर्वक उपयोग के द्वारा ही प्राप्त किए जा सकते हैं। जिस प्रकार औषधि का दोषपूर्ण उपयोग कभी-कभी अत्यधिक घातक सिद्ध होता है उसी प्रकार निदर्शन के उपयोग में की जाने वाली और असावधानी संपूर्ण अध्ययन को दोषपूर्ण बना सकती है। इस दृष्टिकोण से निदर्शन से संबंधित उन **दोषों तथा सीमाओं** को समझना आवश्यक है जो अक्सर अध्ययन में वैयक्तिक पक्षपात तथा अपूर्णता की समस्या उत्पन्न कर देते हैं।

(1) प्रतिनिधि निदर्शन में कठिनाई :

निदर्शन के आधार पर केवल तभी यथार्थ निष्कर्ष प्राप्त किए जा सकते हैं, जबकि निदर्शन समय का वास्तविक प्रतिनिधित्व करता हो। इसके विपरीत, अध्ययन विषय से संबंधित सामाजिक इकाइयों में इतनी अधिक विविधता होती है कि सभी विशेषताओं वाली इकाइयों का निदर्शन में समावेश हो सकना कभी-कभी बहुत कठिन हो जाता है। ऐसा निदर्शन किसी भी प्रकार विश्वसनीय निष्कर्ष देने में सफल नहीं हो पाता।

(2) अभिनति की संभावना :

निदर्शन के चुनाव में अध्ययनकर्ता का सदैव तटस्थ होना तथा स्वीकृत नियमों का पालन करना आवश्यक नहीं होता। अध्ययनकर्ता साधारणतया अपनी सुविधा के अनुसार ही निदर्शन में आने वाली इकाइयों का चुनाव कर लेता है। कभी-कभी वह इकाइयों का चयन इस प्रकार करने का प्रयत्न करता है जिससे उसके व्यक्तिगत विचारों में अथवा धारणाओं को ही प्रमाणित किया जा सके। ऐसी सभी दशाओं में निदर्शन दोषपूर्ण अध्ययन का स्रोत बन जाता है।

(3) पर्याप्त ज्ञान का अभाव :

एक प्रतिनिधि निदर्शन चुनाव के लिए अध्ययन विषय के गहरे ज्ञान और वैयक्तिक सूझ-बूझ की आवश्यकता होती है। प्राय: यह देखने को मिलता है कि निदर्शन का चुनाव करने वाले अध्ययनकर्ता में विषय का इतना ज्ञान और अंतदृष्टि नहीं होती कि वह एक प्रतिनिधि निदर्शन प्राप्त कर सके। इस संबंध में एक प्रमुख कठिनाई यह है कि व्यावहारिक रूप से निदर्शन का चुनाव अध्ययन के आरंभिक स्तर पर ही कर लिया जाता है। जिस स्तर पर अध्ययनकर्ता स्वयं विषय के अनेक पक्षों से परिचित नहीं होता। बाद में जब उसे निदर्शन की कमियों का अनुभव होता है, तब तक वह इसमें कोई परिवर्तन कर सकने में स्वयं को पूर्णतया असहाय पाता है।

(4) निदर्शन पर स्थिर रहना कठिन :

निदर्शन के आधार पर किए जाने वाले अध्ययन में यह आवश्यक होता है कि संपूर्ण अध्ययन केवल निदर्शन से संबंधित इकाइयों तक ही सीमित हो। परंतु व्यवहार में यह एक कठिन कार्य है। इसका कारण यह है कि निदर्शन में अक्सर ऐसे व्यक्तियों का समावेश हो जाता है जिनके स्थानांतरण, बीमारी, असहयोग अथवा भौगोलिक पृथकता आदि के कारण उनसे संपर्क स्थापित करना कठिन हो जाता है। इस स्थिति में अध्ययनकर्ता के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि वह निदर्शन से संबंधित इकाइयों की संख्या को बनाए रखने के लिए कुछ नए व्यक्तियों का चुनाव कर ले। निदर्शन के उपयोग से संबंधित

नियमों में भी अध्ययनकर्ता को यह सुझाव दिया जाता है कि यदि किन्ही कारणों से कोई व्यक्ति संपर्क के लिए सुलभ न हो तो एक पूरक सूची में से किसी अन्य व्यक्ति का चुनाव कर लिया जाए। वास्तव में, ऐसी किसी भी व्यवस्था से वैयक्तिक पक्ष की संभावना को पूर्णतया दूर कर सकना संभव नहीं हो पाता। यह स्थिति स्वयं निदर्शन विधि की प्रक्रिया से संबंधित एक महत्वपूर्ण दोष स्पष्ट करती है।

(5) निदर्शन सार्वभौमिक विधि नहीं है :

जिस प्रकार कुछ विशेष परिस्थितियों में संगणना विधि उपयुक्त नहीं होती, उसी प्रकार कुछ परिस्थितियां ऐसी भी होती हैं जिनमें निदर्शन विधि अनुपयुक्त और अपर्याप्त हो जाती है। उदाहरण के लिए, यदि अध्ययन क्षेत्र की जनसंख्या बहुत सीमित हो अथवा एक-दूसरे से बिल्कुल भिन्न अनेक प्रकार की विशेषताओं को प्रदर्शित करती हो, तो एक प्रतिनिधिपूर्ण निदर्शन का चुनाव बहुत कठिन हो जाता है। इसका तात्पर्य यह है कि सभी प्रकार के अध्ययन विषय तथा क्षेत्रों में निदर्शन का उपयोग एक सार्वभौमिक विधि के रूप में नहीं किया जा सकता।

(6) निदर्शन संबंधी जटिलताएं :

निदर्शन का चुनाव एक अत्यधिक जटिल प्रक्रिया है। यह निर्धारित करना बहुत कठिन कार्य है कि निदर्शन का आकार क्या हो, निदर्शन के अंतर्गत किन-किन विशेषताओं वाली इकाइयों का समावेश किया जाए तथा प्रत्येक श्रेणी की इकाइयों का चयन किस नियम के आधार पर किया जाए। अध्ययन से संबंधित इकाइयां भिन्न-भिन्न विशेषताओं से युक्त होने की स्थिति में अक्सर दो या तीन स्तरों पर पृथक-पृथक निदर्शनों का चयन करना आवश्यक हो जाता है। ऐसी सभी निदर्शनों द्वारा प्राप्त सूचनाओं का समन्वय करना और उनके आधार पर वस्तुनिष्ठ निष्कर्ष दे सकना एक कठिन कार्य है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि निदर्शन की प्रक्रिया में कुछ दोष अवश्य हैं जिनके कारण इसके प्रयोग में बहुत सावधानी की आवश्यकता होती है। एक अध्ययनकर्ता जितना अधिक प्रशिक्षित, अनुभवी तथा कुशल होता है, वह इन दोनों के प्रभाव को उतना ही कम करके निदर्शन के द्वारा यथार्थ तथ्यों के संकलन में सफलता प्राप्त कर लेता है।

4.4.5. सारांश (Summary)

अध्ययन के संपूर्ण क्षेत्र (जिसे हम 'समग्र' कहते हैं) में से जब हम कुछ प्रतिनिधि इकाइयों का किसी वैज्ञानिक विधि से चयन करते हैं, तब चयन की इसी प्रणाली को निदर्शन, प्रतिचयन अथवा प्रतिदर्श कहा जाता है। सामान्य रूप से यह समझा जाता है कि निदर्शन का तात्पर्य समस्त इकाइयों में से कुछ इकाइयों का चयन करना है। ऐसी धारणा बहुत सामान्यीकृत और अपूर्ण है। वास्तव में, निदर्शन एक ऐसी पद्धति है जिसके द्वारा हम समस्त इकाइयों में से कुछ इकाइयों का चयन अनेक स्वीकृत कार्यविधियों की सहायता से इस प्रकार करते हैं जिससे चुनी गई इकाइयां संपूर्ण समग्र की विशेषताओं का प्रतिनिधित्व कर सकें। इसका तात्पर्य यह है कि हम संपूर्ण समग्र को कितने भागों में विभाजित करेंगे, प्रत्येक भाग में से कितने इकाइयों का चयन करेंगे तथा चयन का यह कार्य किस प्रणाली के द्वारा किया जाएगा, क्या सब कुछ अध्ययनकर्ता की इच्छा पर आधारित नहीं होता बल्कि प्रत्येक स्तर पर किए जाने वाले कार्य के

संबंध में कुछ निश्चित और पूर्व निर्धारित नियम होते हैं। निदर्शन का चयन, विभिन्न प्रविधियों की सहायता यथा दो प्रकार के निदर्शनों पहला, सम्भावित या दैव निदर्शन और दूसरा, असम्भावित निदर्शन से प्राप्त किया जा सकता है। सम्भावित निदर्शन में इकाइयों का चयन समान सम्भावना के आधार पर किया जाता है। सम्भावित निदर्शन सांख्यिकीय निरंतरता एवं सामान्य वितरण के सिद्धांत पर आधारित होने के कारण अधिक वैज्ञानिक होता है। दूसरे प्रकार के निदर्शन अर्थात असम्भावित निदर्शन में समान सम्भावना या संयोग को महत्त्व नहीं दिया जाता अपितु शोधकर्ता अपनी सुविधानुसार इकाइयों का चयन करता है। इस प्रकार की निदर्शन पद्धतियों में वैज्ञानिकता का अंश कम होता है।

4.4.6. बोध प्रश्न (Perception Questions)

प्रश्न 1 : निदर्शन क्या है? एक अच्छे निदर्शन की आवश्यक विशेषताएँ क्या है?

प्रश्न 2 : निदर्शन के विभिन्न प्रकारों की व्याख्या कीजिए।

प्रश्न 3 : संभावित या दैव निदर्शन की विभिन्न निदर्शन पद्धतियों की व्याख्या कीजिए।

प्रश्न 4 : निदर्शन के लाभ एवं सीमाओं की व्याख्या कीजिए।

प्रश्न 5 : असम्भावित निदर्शन की विभिन्न निदर्शन पद्धतियों की व्याख्या कीजिए।

4.4.7. संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ (References and Useful Texts)

- आहूजा, राम. (2015). *सामाजिक अनुसंधान*. जयपुर : रावत पब्लिकेशन.
- पाण्डेय, गणेश., एवं पाण्डेय, अरुणा. (2009). *शोध प्रविधि*. नई दिल्ली : राधा पब्लिकेशन.
- मुकर्जी, आर.एन. (2016). *सामाजिक शोध व सांखियकी*. दिल्ली : विवेक प्रकाशन.
- यादव, आर.जी. (2014). *सामाजिक अनुसन्धान पद्धतियां*. नई दिल्ली : ओरिएंट ब्लैकस्वान.
- रावत, हरिकृष्ण. (2015). *सामाजिक शोध की विधियां*. जयपुर : रावत पब्लिकेशन.
- वोहरा, वंदना. (2009). *रिसर्च मैथ्डोलाजी*. नई दिल्ली : ओमेगा पब्लिकेशन.
- शर्मा, एम. (2012). सामाजिक सर्वेक्षण तथा अनुसंधान. जयपुर : वाईकिंग बुक्स.

नोट – इस कृति का कोई भी अंश विश्वविद्यालय से लिखित अनुमति लिए बिना पुन: प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

पाठ्यपुस्तक को यथासम्भव त्रुटिहीन रूप से प्रकाशित करने का प्रयास किया गया है। संयोगवश यदि इसमें कोई भी कमी या त्रुटि रह गई हो तो इसके लिए संपादक, संयोजक, प्रकाशक एवं मुद्रक का कोई दायित्व नहीं होगा। अवगत कराए जाने पर सुधार करने का प्रयास किया जाएगा।